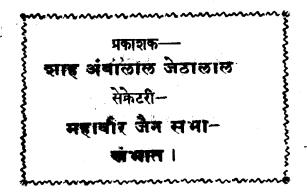
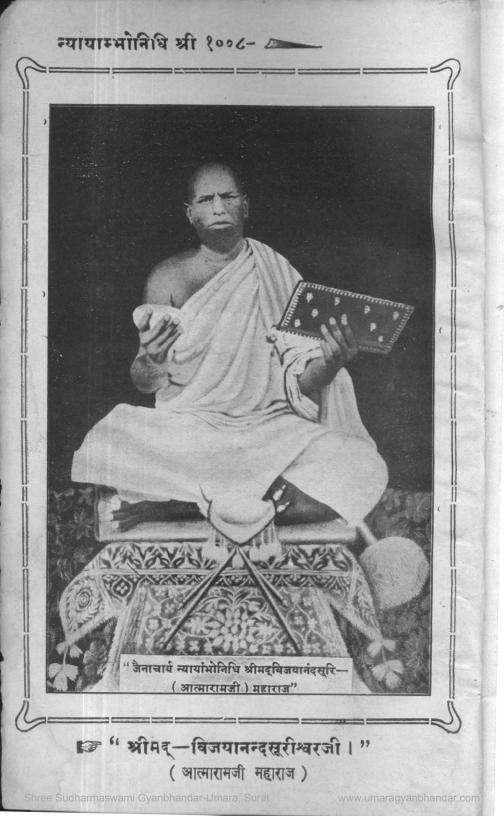
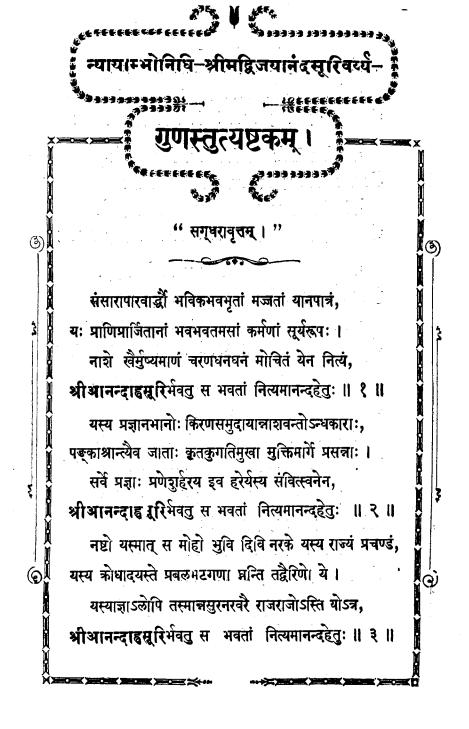
********************** -जैन-ग्रंथमाला-पुष्प-११ 🔻 आत्मकमल्ल-"मत-मीमांसा अ (प्रथम-भाग) संग्राहक-गुद्धधर्मप्ररूपक−जैनाचार्य्य श्री १००2 ****** श्रीमर्−विजयकमऌस्रीश्वरजी महाराज । संयोजक-जैनरत्न-व्याल्यानवाचस्पति-श्रीमान् लब्धिविजयजी महाराज। প্ৰকাহাক-श्री महाबीर जैन सभा-खंभात । -9000 प्रथमावृत्ति वीर संवत् २४४७ विक्रम संवत् १९७७ Ì सवा रुपया



मुद्रकं----くくくくくくくくいくいいい पटेल मणिभाई मधुरभाई गुप्ता आर्यसुचारक-प्रेस । रावपुरा-**बडोदरा ।** (ता. २४-१०-१९२१)





<u>Kerren X. Kerren X</u>

" सुरिश्रीकमलाख्यस्य, चरगोपासनया मया। बालेन लब्धिविजयेन, राचितामिदमष्टकम् ॥ ९ ॥

शस्यं यस्यास्यमासीद्रविरिवविमलं बोधयत् सत्सरोजं, चित्रं तापाद्धि रिक्तं नृदिविजशरणं प्राणिनां पङ्कहारि । सस्यं कल्याणरूपं निजकिरणगणैर्वर्द्धते स प्रवेगात् , श्रीआनन्दाह्यसुरिर्भवतु स भवतां नित्यमानन्दहेतुः ॥ ८ ॥

यस्यार्त्तत्राणकार्यात् सुरनरविभुभिः कीर्त्तिरुद्गीयतेऽत्र, दीनानां प्रार्थनायाममरतरुसमः पार्श्ववर्त्यज्ञभाजाम् । धर्मध्यानस्य कर्त्ता विशदगुणधरो मुक्तिमार्गेनिषण्णः, श्रीआनन्दाहृमूरिर्भवतु स भवतां नित्यमानन्दहेतुः ॥ ७ ॥

मसादुद्धारभाजो महदवटभवात् प्राणभाजो बभूवुः, पुंसो रज्जूपमाद्वे विदल्तितदुरिता देवदैनेश्च पूज्याः । चेर्छर्मक्त्याख्यमार्गे चरणपदघरा मुक्तिरामाप्तुकामाः, श्रीआनन्दाहसूरिर्भवतु स् भवतां नित्यमानन्दहेतुः ॥ ६ ॥

रुष्ट वास विधत्त धृतकरकमला सवादग्वासयन्ता । देवी श्रीशारदा सा सुजनसुखकरा नित्यमानन्दपूर्णा, श्रीआनन्दाहसूरिर्भवतु स**ुभवतां नित्यमानन्दहेतुः ॥ ५** ॥

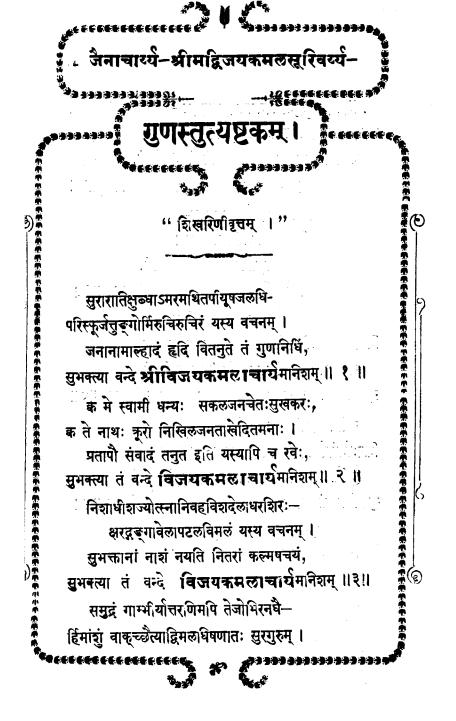
यस्यास्योछासिपद्मे पारीभवितकजे वेष्टिते सद्द्रिरेफै-रुष्टे वासं विधत्ते धृतकरकमछा सर्वदिग्वासयन्ती ।

परिवा वाणीं यदीयां परिभवितसुधां कर्णतो भव्यजीवाः, नैर्मेल्यं प्राप्य जग्मुः परमपदपथं वासनावासितान्ताः । यास्यंत्यग्रेऽपि केचिात्तिमिरभरहरान् यस्य प्रन्थान् पठित्वा, श्रीआनन्दाहरिर्भवद्य स भवतां नित्यमानन्दहेत्युः ॥ ४ ॥



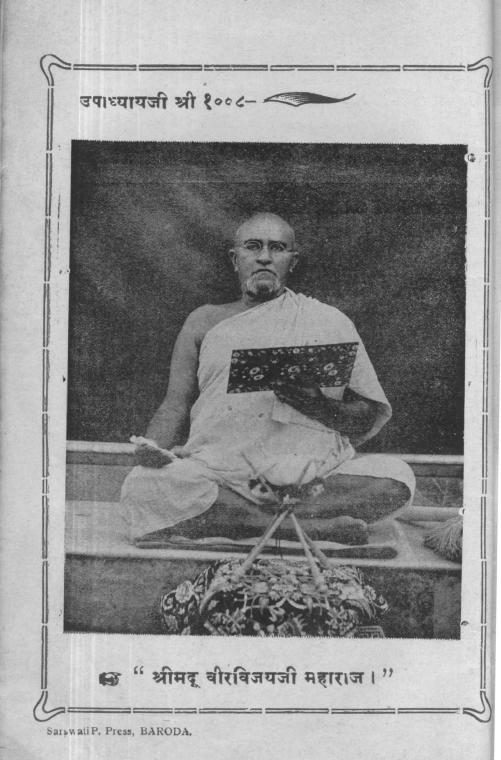
www.umaragyanbhandar.com

www.umaragyanbhandar.com



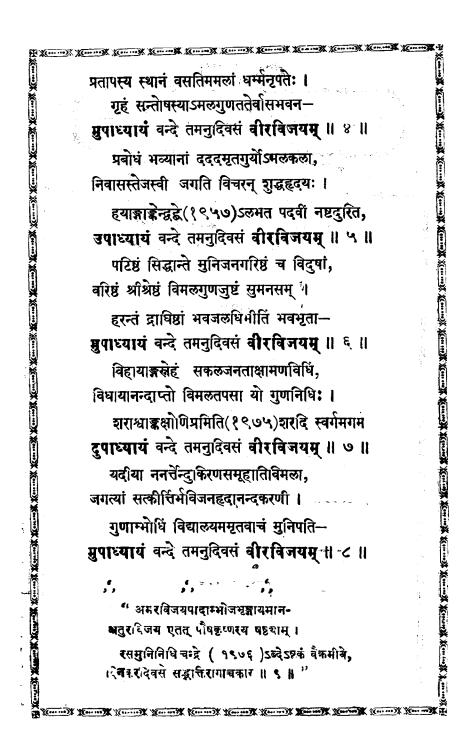
ses fre fer fer tretter tertter tertter tertter tertter terter terter terter terter tertter tertter terter tert

यशोभिदिङ्नागान् व्यजयत मराहं च गतिना, तं बन्दे विजयकमलाचार्यमानिशम् ॥४॥ सुभक्त्या . हिमक्ष्माभृत्पुत्रीचरणनतभूतेशमुकुट— पतद्ग**ङ्**गाधाराभरधवल्रवालेन्दुकररुक् यशो विश्वे यस्य स्फुरति सततं तं श्रुतनिधिं, सुभक्त्या वन्दे **श्रीविजयकमलाचार्य**मनिशम् ॥५॥ सुराळीसंकल्पंस्फुरदमरधेनुस्तनयुग— क्षरत्क्षीरश्रेणीरुचिरुचिरमाभाति वचनम् । यदीयं विश्वेऽस्मिन् सकल्सुखसन्तानजननं, सुभक्त्या तं वन्दे विजयकमलाचार्यमनिशम् ાદ્યા शिवास्वामिस्फूर्जन्मुकुटरजनीनाथकिरण— वितानोद्योतिश्रीस्फाटिकशिखरस्पर्द्धि सुतराम् । यशो यस्यात्यन्तं धवलयति दिङ्नागानिकरं, वन्दे विजयकमलाचार्यमनिशम् ॥७॥ सुभक्त्या तं नवीनादित्यांशुस्फुटबरुभिदाशाक्षितिधर-जगति । शिरःस्मेराशोकाङ्कुरानिकरविश्राजि पुनीते भव्यान् यच्चरणकमलद्वन्द्वममलं, सुभक्त्या तं वन्दे **विजयकमलाचार्य**मनिशम् ॥८॥ Æ 0 '' गुणश्रीपाथोधेरमरविजयस्याऽमरुमतेः, कमाम्भोरुट्सेवाकरणचतुरो हृष्टहृदयः । हयाश्वाङ्गेन्द्रद्वे (१९७७)चतुरविजयः पावनहृदो-ऽकृताऽऽचार्यस्य श्रीविजयकमलस्याऽष्टकमिदम् ॥ ९ ॥ "



Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

डपाध्याय-श्रीमद्-वीरविजयमुनिपुंगव **गुणस्तुत्यष्टकम्**। " शिखरिणीवृत्तम् ٢) G भवोदन्वन्मज्जद्वाविजनतते रक्षणकृते, श्रियोपेतं जन्माश्रयत विबुधासेव्यचरणः । गजाआङ्केन्द्रहे (१९०८)हरि रिव मुनिर्यः क्षितितल, उपाध्य। यं वन्दे तमनुदिवसं वीरविजयम् ॥ १ ॥ यदीयं सौभाग्यं राभमकथनीयं च वचसा. यदीयं वैराग्यं त्रिभुवनजनाश्चर्यजनकम् । यदीयं संद्वाग्यं भवजलधिनिस्तारचतुर-मुपाध्यायं वन्दे तमनुदिवसं वीरविजयम् ॥ २ ॥ गृहं कारागारं मनसि युवतिं बन्धनमिव, विभाव्याशुं त्यक्त्वा कनकनिकरं छोष्ठमिव यः । वतं लेमेऽङ्गाऽग्न्यङ्कराशि(१९३५)शरदि पोज्ज्वलतपा, ତା उपाध्य।यं वन्दे तमनुदिवसं वीरविजयम् ॥ ३ ॥ कलाकोलिस्थानं सुमाति।निल्यं क्षान्तिसदनं,





Sh Sarswati am Bressm BARODAndar-Umara, Surat

www.umaragyanbhandar.com



છ शार्दूलविकाडितम् । जज्ञे यस्य हि बालशासन इति आमे प्रसिद्धे जनिः, मोती यज्जननी च यस्य जनकः पीताम्बरः श्रेष्ठिराद् । तं जैनागमतत्त्वद्शिंनमहो वैराग्यरङ्गाञ्चितं, भो भव्याः! प्रणमन्तु ल्रब्धिविजयं व्याख्यानवाचरपतिम्। १ नन्देष्वङ्कधराप्रमे स्थितवति श्रीविकमाद्वत्सरे, दीक्षां संसतिनाशिनीं तु कमरुाचार्यस्य पार्श्वेऽमहीत् । संयम्याक्षकदंबकं प्रतिदिनं धत्ते च यः सन्मति, तं भव्याः ! प्रणमन्तु लब्धिविजयं व्याख्यानवाचस्पतिम् ।२। व्याख्यारझितचित्तवृत्तिरखिलः संघोऽनघश्चेडरो, व्याख्यागिष्पतिरित्यदात् पदमलं यस्मै यथार्थं किल । रात्रीनायकसप्तनन्दवसुधावर्षे शुमे वैक्रमे, तं भव्याः ! प्रणमन्तु ऌब्धिविजयं व्याख्यानवाचस्पतिम् ।३। दुर्वार्यार्यसमाजयुक्तिपटलीविम्रान्तचेतःस्थिति, जित्वा वादिसमूहमाप भुवने यः कीर्तिमिन्द्ज्ज्वलाम् ।

गुणस्तुत्यष्टकम्।

व्याख्यानवाचस्पति-श्रीलाव्धिविजय

,在在午午中的时候,这个时候,这个个人的事实,有不能有多多的,我们们,我们们的一个,我们有一个的,我们有一个的,这个,我们的一个的,我们的一个,我们们的一个,我们 नानाशास्त्रसमुत्थयुक्तिनिवहैः अज्ञाजुषां संसदि, तं भव्याः ! प्रणमन्तु ल्लब्धिविजयं व्याख्यानवाचस्पतिम् । ४। भक्ष्याभक्ष्यविचारशून्यमनसो धर्मेऽपि नास्थाजुषः, वीयूषोदरसोदरं श्रुतिपुटेर्यस्योपदेशं जनाः । पीत्वानन्दममन्दमाप्य बह्वो धर्मे स्थिरा जज्ञिरे, तं भव्याः ! प्रणमन्तु स्रव्धिविजयं व्याख्यानवाचस्पतिम् ।५। यो दूरं विषयान् जहाति तनुते धर्मोपदेशं नृणां, सम्यक् पञ्चमहाव्रतानि वहते धत्ते सदा सन्मतिम् । भक्त्या सङ्गरुसेवनां च कुरुतेऽधीते श्रुतं चाऽनिशं, तं भव्याः ! प्रणमन्तु **ऌव्धितिजयं व्याख्यानवाचस्पतिम् ।**६। ·अन्तःस्फूर्जदनल्पवारिविभवभ्राजिष्णुपाथोधर-निर्घोषं विफलीकरोति वचसां घोषो महान् यस्य वै । नित्यं तं तपगच्छनाथकमलाचार्यस्य शिष्यं सुनिं, भो भव्याः ! प्रणमन्तु लब्धिविजयं व्याख्यानवाचस्पतिम् ।७। धीमाँस्तत्पदपद्मयुग्ममधुलिड् वादीमकण्ठीरवो, नानाशास्त्रसमुद्रमन्थनहरिविंज्ञानिचूडामाणिः । विख्यातो मुलताननामनगरे मांसाशिनो बोधकः, भो भव्याः ! प्रणमन्तु स्रब्धिविजयं व्याख्यानवाचस्पतिम्।८। शिवसद्मनः कृतकर्मविनाशाय वासाय चतुरविजयेनैत-दकृताऽमलमष्टकम् ॥ ९ ॥ "



प्रिय पाठको ! मुझे पूर्ण विश्वास है कि, इस पुस्तकको पद इस मध्यस्थ मनके जैनतर मनुष्य जरूर लाभ उठावेंगे. मगर पक्षपातसे पादित पाठक खेदातुर बनेंगे यह बात भी विर्विवाद है. इससे इस पुस्तक बना-नेमें छाभ हानि दोनों भासते हैं. फिर इस रचनासे क्या फायदा ?, यह मक्ष जिज्ञासुके हृदयमें अवश्य स्थान हेगा. परन्तु प्रथमसे ही इस विषयका मैं खुलासा कर देता हूं कि, जिससे निर्श्वक प्रश्न पाठकोंके 🕵 यको रोक कर उन्हें नाहक उल्झनमें ना डाले यद्यपि पक्षपातको इससे सेद होगा परन्तु इसकी अपेक्षां मध्यस्थोंके लाभ पर ध्यान दिया जावे तो कई गुण ज्यादा है. जैसे सूर्यसे कितनेक रात्रिचर प्राणियोंको हरकत होती है, परन्तु उस (सूर्य) से लाभ उठाने वालोंकी अपेक्षा के आगे इरकत तुच्छ है; सो ही हीसाब यहां समझ लेनेका है. क्यों कि, प्रस्तुत पुस्तकसे लाभ मुक्तिपर्यंत उठा सकते हैं. अतः हानिका हीसाब बहुत उुच्छ है. इस पुस्तक रचनेमें मुख्य हेतु यह है कि, ' ठक्कर---नारायण विसनजी ' आदि अनेक अन्य धर्मावलंबियोंके बनाये हुए पुस्तकोंके देखनेसे माल्रम हुआ कि, ये लोग सचे जैन धर्मपर नाहक कलंक चढ़ाते हैं और अपने मन्तव्यमें कितनी गड़बड़ है सो देखते ही नहीं. उनकी आंखें खोल देना यह भी हमारा फर्ज़ है. जैसे ठक्कुरने लिखा है कि,---

'' જૈન સાધુઓએ તાંત્રિક ક્રિયાઓને સ્વીકારી ને મલીન જપ જપ તથા માંસ ખલિદાન આદિથી દેવી પિશાચ તથા વૈતાલ આદિની જરણ મારણ અને વશીકરણ આદિ સિદ્ધિ માટે સાધના કરવા માંડી, ''

देखिये ? कितने अन्यायकी बात है?. जैनशास्त्रमें कहीं ऐसा बिकर ही नहीं कि, जैनी तांत्रिकवादी बन गए थे. इस विषयमें ऐसा असत्य लिखना और वैदिकधर्म जो तांत्रिक मत जैसे कर्मसे पूर्ण भरा हुआ है; जैसे कि, इसी पुस्तकके अंतभागमें गोभिल-गृधसुत्र आदिके पाठसे साफ सिद्ध हो जायगा कि, जहां पर अमुक मंत्र पढ़ कर मांसकी बलि देना, अमुक मंत्र पढ़ कर गौको काट डालना, इस प्रकार चमडा उघेडना ऐसे ऐसे अनर्थ सूचक लेख जिन वेद धर्मियोंके शास्त्रोमें होवे उस वेदधर्ममें तंत्रवादकी असर नहीं लिख कर दयापूर्ण न्यायदर्शक कल्याणकारी जैनज्ञास्त्र माननेवाले जैनधर्मियोंमें तांत्रिक मतका असर लिखना क्या यह घोर पक्षपात नहीं है ?. इससे ज्यादा और अन्यायी किसे कह सकते है. ऐसें अन्यायको देख कर उन लोगोंकी बुद्धि ठिकाने पर आवे, और मध्यस्थ वर्ग सत्यमार्गको स्वीकार करे इस भावनाके अलावा रंच मात्र भी किसी मतसे हमारा द्वेष नहीं है. अगर परमतवालों को थोड़ा भी स्वपर शास्त्रोंका ज्ञान होवे और स्वयं निष्यक्ष हो तो जैन-मतके शास्त्रोंका बड़ा उपकार मानें. जैसे तारीख-३० नबेम्बर सन् १९०४ श्री जैन श्वेताम्बर कोन्फरंस-के तिसरे अधिवेशन पर बडौदेमें ' लोकभान्य पण्डित बालगंगाधर तिलक 'ने जेनधर्मको उपकारक माना है. देखिये ! माननीय पहाशयका यह उद्गार है--'' जैन-धर्मअनादि है ''

" ब्राह्मणधर्म पर जैनधर्मकी छाप "

" श्रीमान् महाराज गायकवाडने पहले दिन कोन्फरेंस में जिस अकार कहाथा उसी प्रकार अहिंसा परमो धर्म, इस उदार सिद्धांतने बाह्यण धर्मपर चिर स्मरणीय छाप (मोहर) मारी है. यज्ञ यागादिकोंमें पशुओंका वध होकर जो ' यज्ञार्थ पशुहिंसा ' आजकल नहीं होती है जैनधर्मने यही एक बडी भारी छाप बाह्मणधर्मपर मारी है. पूर्वकाल्में यज्ञके लिये असंख्य पशुहिंसा होतीथी. इसके प्रमाण ' मेघदूत काव्य ' तथा और भी अनेक ग्रंन्थोंसे मिलते हैं. रतिवेद (रतिदेव) नामक राजाने यज्ञ कियाथा उसमें इतना प्रचुर पवशुघ हुआ था कि, नदीका जरू खूनसे रक्तवर्ण हो गया था. उसी समयसे उस नदीका नाम 'चर्मवती ' प्रसिद्ध है. पशुवध से स्वर्ग मिलता है. इस विषयमें उक्त कथा साक्षी है. परन्तु इस घोर हिंसाका ब्राह्मणधर्मसे बिदाई लेजानेका श्रेय (पुण्य) जैन के हिस्समें है. '' परन्तु ब्राझणधर्मपर जे। जैनधर्मने अक्षुण्ण छाप मारी है उसका यश जैनधर्मके ही योग्य है. अहिंसाका सिद्धान्त जैन धर्ममें पारंगसे है और इस तत्त्वको समझनेकी त्रुटिके कारण बौद्धधर्म अपने **अनुयायि** चीनियोंके रुपमें सर्वभक्षी हो गया है. बाह्मण और हिंदु धर्ममें मांस भक्षण और मंदिरापान बन्द होगया यह भी जैनधर्मका प्रताप है. " " दया और आहिंसाकी ऐसी ही स्तुत्य प्रीतिने जैनधर्मको उत्पन्न किया है. स्थिर रक्ला है और इसीसे चिरकाल स्थिर रहेगा. **ब्राह्म**णधर्मपर और अहिंसा धर्मकी छाप जब पडी इस हिंदुओंको अहिंसा पालन करनेकी आवश्यकता हुई तब यज्ञर्मे पिष्ट पशुका विधान किया गया. सो महावीरस्वामीका उपदेश किया हुआ धर्मतत्त्व सर्वमान्य हेागया और अहिंसा जैनधर्ममें तथा बाद्यणधर्ममें मान्य हो गई. '' इत्यादि अनेक बातें भाषणमें कहीथी देखिये ! जैन धर्मके विषयमें एक तरफ महानुभाव तिलकके उद्गार और एक तरक नवलराम, घनस्याम, ठक्कुरके उद्गार. जो इस भागमें मीमांसा करनेके लिये लिखे गये हैं माखम होंगा कि, मध्यस्थ और ममत्वस्थके हृदयमें कितना तकावत **होता** है. एक तरफ अमृत है तेा एक तरफ हलाहल ज़हर है. सैर. मध्यस्थ मनुष्य हमारी इस महिनतसे फल उठावें यही अभिलाषा है.

मडकोंको विदित रहे कि पठन पाठनके विकेष टाईम रक जानेके इस पुस्तकको संयोजनामें बहुत अल्प टाईम मिरू है. जिससे कलवार शिकार प्रकरण, मांस प्रकरण, स्वार्थ प्रकरण, देव प्रकरण, आदि छुव्यव स्थि त रचना नहीं हो सकी है. इस बातका मुझे अफसोंस है. आगेके भागींमें कमवार रचनासे विभूषित इस पुस्तकको बनानी ' यह मेस सास विचार है बीह इस बिचारको अगर बनातो जरूद अपरूमें रसनेकी कोशीश करूंगा.

बबतक इस पुस्तकके चारों भाग पाठकोंकी नज़र मुवारिकसे न गुज़रे बहा तक किसी एक तरफी ख्याकसे अपने मचको मजबूर मत करना सर. वही आसिरी अलाबन है.

संयोजन.



" परमगुरु-न्यायांभ निधि-श्रीमद्विजयानंदसूरीशेभ्यो नमः । "

"मत--मीमांसा, "



तःकालका परमशांत समय है, योगीजनो शांत यो-गोसे आत्मज्योतिमें मुग्ध हो रहे हैं, ज्ञानीजनो

विश्वेष ज्ञानाभ्यासकी धूनमें लगे हुए हैं, रोगी-योंको भी कुछ एक शांतिका अनुभव हो रहा है, पक्षियोंकी मीठी मीठी गीत ध्वनि कर्णको आकुष्ट कर रही है, भोगीयोके भोगश्रमने उन्हें ऐसे पवित्र समयमें भी अचेतन सा बना रक्खा है, पनिद्वारिए द्रव्यजीवनके लिए शिरपर मटका उठाकर कूँ-ओंकी तरफ जा रही हैं और कितनीक आरही हैं, श्रद्धाछ कियामग्र श्रावक श्राविकाए पायः प्रतिक्रमण पूरा कर मंदि-रोंमें दर्शनको जा रही हैं, जिनभवनोंमें ग्रुनि आदि वर्ग मधुर स्वरसे चैत्यवंदन कर रहा है कितनेक ज्ञानाभ्यासके शोंखी महाशय व्याकरण न्यायालकार साहित्य सिद्धांतोंका अवलो-कन कर रहे हैं, जमानेकी धूनमें फंसे हुए कितनेक दैनिक सप्ताहिक तथा मासिक पत्रोंके वर्के (पाने) उथला रहे हैं, श्रीत शीत पत्रनका प्रचार हरएक कार्योंके करनेवाले मनुष्योंको मदद दे रहा है, वनस्पति जलसे तर हो रही है, ऐसे समयमें एक अद्धाळ आवक विश्वविख्यात जगदुद्धारक द्युद्धघर्म प्ररूपक निस्प्रहिशिरोरत्न न्यायां मोनिधि युगप्रधानक लग आमिद्रिजयानंदस् रश्विर पट्टपूर्वाचल सूर्यसमान शासन प्रभावक आमद्-विजयकमलस् रश्विरजी महाराजके दर्शनार्थ आया हुआ है, सूरिजी अपने पवित्र करकमलसे लेखिनीरूपनली द्वारा आत्मविचारामृतको पुस्तकरूप कुंडमें बहा रहे हैं, इस अपूर्व परोपकारी कार्यमें दत्तचित्त सूरिजी महाराजसे वंदन स्तवन करके अद्धालु आवक प्रश्न करने लगा.

आवक--भगवन् ! आप यह क्या पुस्तक लिख रहे हैं?

सूरीश्वर—यह इह लौकिक मान प्रतिष्ठाके पाने के लिये और अपनी सुखसे आजीविका चलाने के लिये भव्यजीवोंको मिथ्यात्वकूपमें उतारकर उनके सर्वस्वका हरण करनेवाले प्र-पंची जनों के रचे हुए पपंचशास्त्रोंकी नोघ ले रहा हूं कि जि-सके पठनसे कितनेक निष्पक्ष भव्यजीव उस अंधकूपसे बहार निकले.

आवक स्वामिन ! तव तो इसे पुस्तक ही नहीं बल्के उन जीवोंको वहार निकलनेमें असाधारण कारण नोंधरूप प्रंथीवाला रज्जु-गांठोवाला दोरडा भी कह सकते हैं, अच्छा आप महेरबानी करके इसका कुछ हाल मुझे सुना सकते हैं ?.

सूरीश्वरजी—तुम पुण्योदयसे शुद्ध शासनके अनुयायि-योंमें जन्मे हुए हों इस लिये कुलीन सैस्कारसे ही तुम्हारी श्रद्धा शुद्ध तत्त्वोंकी ओर झूकी हुई है, इस लिये तुमको इन बातोंसे इतना विशेष फायदा नहीं जितना सरल मध्यस्थ जिज्ञासु अन्यधर्मावलंबीको हो सके, मगर शुद्धधर्ममें स्थिरताकी विशेषतारूप फायदा तुमको भी मिल सकता है, कारण-अन्य धर्मके स्वरूपको विशेष जाननेसे हि उसकी बेहुदा बातें देख-नेसे वीरशासनका विशेष गौरव मनःपथमें आता है, देखिये दिालांकाचार्य महाराज श्रीआचारांगसूत्रकी टीकामें इसी बातका साधक एक श्लोक फरमाते हैं,—

" शिवमस्तु कुशास्त्राणां, वैशेषिकषष्ठतिन्त्रगौद्धानाम् । येषां दुर्विहितत्वाद्-भगवत्यनुरज्यते चेतः ॥१॥ "

भावार्थ—वैशेषिक सांख्य और बौद्धके कुशास्त्रोंक। क-ल्याण हो कि जिनके अंदर लिखे हुए अयौक्तिक वचनोंको देखकर भगवन तीर्थकर देवमें चित्त अनुरक्त होता है.

इससे यही साबित हुआ कि अन्य लोकोकी कुकल्पनाको देखकर सर्वज्ञ की वानीमें स्थिरता होती ह, वास्ते इस पुस्तक को सुननेसे तुमको भी अवश्य लाभ हो सकता है.

देवानुप्रिय ! प्राणीमात्रको प्रथम परमात्मस्वरूपका बि-चार करना चाहिये, क्यों कि स्वरूप समझकर ऐसे प्रधुको भावसे एक भी किया हुआ नमस्कार कोटिजन्मोंके पापका नाज्ञ करता है-

श्रावक-पूञ्यपाद सूरि महाराजा ! ऋपया परमात्मापद आदिका विचार करके इस सेवकको उपकृत करें, मै आपका कृतइ होउंगा.

स्तूरिसज-आवकवर्य ! इस्में कृतज्ञ होनेकी क्या बात है ?, हमारा तो जीवन ही इसी लिये है कि किसी भी

आत्माका धर्मोपदेश द्वारा सुधारा किया जावे, चाहे किसी जाति या कुलका हो, मैं तुमको जो कुछ सुनाउं मेरी फरज अदा करता हूं; कोई मेरा कृतज्ञ बनो ऐसी अभिलापा मेरे दिऌमें अद्यावधि किसी वख्त नहीं हुई तो इस वख्त कैसे हो सकती है ?, हाँ सिरफ इतनी तो सूचना अवध्य कर सकता हूं कि किसी योग्य पात्रको देखकर मेरी सुनाइ हुई वातें सुनानी और उसको सत्य मार्गकी तरफ झुकाना, एक भी जीवको धर्मकी प्राप्ति करानेवाला संख्यातीत पुण्य उपार्जन करता है और निष्काम भावसे निर्जरा भी कर सकता है, लो सुनो परमात्मपदका विचार, परमात्मपद अनादि है, कोईभी दिन ऐसा नहीं था जिस दिन परमात्मपद नहीं था, जैसे कोईभी ऐसा समय नहीं होता कि जिस समय यह दुनिया ^न हो, बस इसी तरह यह परमात्मपद अनादि है, अनजानपनेसे कितनेक दुनियादार ऐसा मान बैठते हैं कि– एक अनादि परमात्मा है, जो अनादि कालसे परमञ्जुद्ध है–और वह कभी भी जीवदशामें थाही नहीं, मगर यह बात विचारके बहार है, इस बातका पता परमात्मपदकी व्युत्पत्ति पर विचारकरनेसे निकलता है,-'' परमआसी आत्मा च परमातना "-मतलब परमरूप आत्मा इसमें ' परम ' विशेषण है और ' आत्मा ' उस विशेषणको धारण करने-वाला है, अब विचार करो कि किसी आदमीका नाम ' बिहारीलाल' है, पिछेसे वह, ' वकील ' हुआ तो उसके नाम े के आगे ' वकील ं शब्द लगानेसे ' वकील बिहारीलाल ' ऐसा नाम बना, ऐसे ही 'केदारनाथ ' नाम के मनुष्यने ' जजकी पदवी ' पासकी इससे उसके नामके आगे जज

विश्लेषण लगनेसे ' जज केदारनाथ ' ऐसा नाम प्रसिद्ध हुआ, यहां पर ' वकील 'या ' जज ' विशेषणों के लगनेसे ' बिहासी-लाल 'या ' केदारनाथ ' प्रथमसे सर्वथा भिन्न है ऐसा नहीं कहा जा सकता, इसी तरह अनादिकी अज्ञानताको छोडकर कर्मजंजीरके तोडनेसे ज्वाजल्यमान कैवल्यज्योतिका प्रकाश जिसके अंदर प्रकाशित हो गया है और अनतशक्ति सम्पन परम सुख निधान बनकर जो परमनिर्मल आत्मा हो गया है, ऐसे पवित्र आत्माको परम विशेषण लगानेसे वह परमात्मा कहा जाता है, ऐसे जितने आत्मा वनेंगे वे सब ही परमात्मा कहा जाता है, ऐसे जितने आत्मा वनेंगे वे सब ही परमात्मा कहा जाता है, ऐसे जितने आत्मा वनेंगे वे सब ही परमात्मा कहो जायेंगे, एकही परमात्मा होवे और दुसरे न हो सके ऐसा कभी नहीं हो सकता; और आत्मासे सर्वथा भिन्न ही परमात्मा है ऐसा भी परमसे आगे रहा हुआ आत्मपद साबित नहीं होने देता.

श्राचक-साहिब ! आपका कहना युक्तियुक्त है और हो भी ऐसे ही सकता है जैसे दुनियामें पुण्यसे अनेक महाराजा होते हैं, ऐसे अनेक परमात्मा भी पनित्रतासे हो सकते हैं एककोही पवित्रताका हक होवे और अन्यको नहीं यह दछीछ बिबकूछ वजुद वगरकी है, कारण के दुनियामें जैसे एकके त्रिवाय दुसरा अग्रुक दरजा नहीं पासकता है, ऐसे कहने वाल्लेका वचन कोई नहीं मान सकता, कारण-जैसे एकने दरजा पाया ऐसेही साधनको पाकर दूसरे भी ऐसा दरजा पा सकते हैं, हाँ इतना जरूर हो सकता है कि कितनेक शक्ति आदि सामग्रीके अभावसे ऐसे नहीं भी बन सकते हैं, परंतु एक ही होवे यह बात ठीक नहीं, कितनेक हो सकते हैं और कितनेक नहीं भी हो सकते, जैसे भव्य और अभव्य के वर्ग्रमें भव्यवर्गके जोव म्राक्त पासकतेहैं, अभव्य वर्गके जीवोमेंसे एक भी जीव म्रुक्ति नहीं पासकता है, परंतु जैसे कोइ कहे कि दुनियामें एकही घट बन सकता है तो यह बात जूठी है, कारण के संख्यातीत घट बन सकते हैं मगर शरत यहकि चिकनी मिट्टी होनी चाहिये, रेतीका नहीं बन सकता, इसी तरह संसारमें भव्यात्मा निमित्त मिल्लेसे अगर उद्यम करें तो परमात्मा बन सकते हैं, मगर रेतीकी तरह जो अभव्य होवे कदापि उस पदको प्राप्त नहीं कर सकते हैं, ऐसा होनेपर भी वे लोग एक ही ईश्वरको माननेमें क्या कारण कल्पते हैं, और जब ईश्वर जीवकी शुद्धदशासे हुआ माने तो फिर ईश्वरपद अना-दिका है यह कैसे सिद्ध हो सकेगा ?.

सूरिकेश्वर—दूसरे लोग कर्मका स्वरूप नहीं समझनेसे जगत्का कत्ती इत्तीका तमाम झगडा ईश्वरके गलेमें डालते हैं, उन बिचारोंको यह खबर नहीं है कि जगतका कत्ती ईश्वरको माननेसे सब ईश्वर ही करता है ऐसा हुआ और इससे हजारों गायों जो कसाईके हाथसे मारी जा रही हैं, इनका मारने-वाला ईश्वर ही सिद्ध होगा, क्योंकि कसाईको बनानेवाल इश्वर है, ऐसे ही बिल्ली चित्ता सिंह रींच्छ आदि जानवरोंको भी उनके हिसाबसे परमात्माने ही बनाये ऐसा साबित होता है, अब विचार करना चाहिये कि—उनके खुरपेसे नाखुन बनाकर हजारों चूंहे और हीरण हाथी और गा बगाह-कभी कभी मनुष्योंके नाजका कारण ईश्वर सिद्ध होता है, यह एक वडा भारी दोष ईश्वरपर आरूढ होता है, और कर्महीसे सब इछ बन सकता है तो फिर इस विषयमें नाहक ईश्वर परमात्माको छपेटनेसे क्या फायदा ई उलटी उसकी भक्तिके बदले आशातना करते हैं, इस विषयका विचार आगे स्वतंत्र विस्तारसे सुनाया जायगा, यहाँ तो मात्र प्रसंगवन्न इतना कहना पढा, मतलब **बे छोग ईश्वरको जगतका कर्त्ता मानते हैं, इस** लिये उनको यह डर घूस गया है कि-अनेक ईश्वर माने जावे तो जगत्की स्थितिमें फेरफार हो जावे, जैसे कोई ईश्वर कहेगा, मनुष्यको दो पांव देने हैं तो कोई कहेगा चार देने हैं, ऐसे पशुमें एक कहता है चार पांव बनाने हैं तो दूसरा दो कहता हैं, इस तरहसे ब्रघडा हो जायगा, वास्ते एक ईश्वरका होना ठीक है परंतु उनका यह विचार बुद्धिपूर्वक नहीं है, क्योंकि इजारो अज्ञान मक्खिएं मिलकर एक संदर छत्ता ब-नाती हैं तो क्या ईश्वर इनसेभी गयेत्रीते हैं, दूसरा जो सर्वज्ञ होवे उनमें कभीभी वैमत्य-विरूद्ध मत नहीं होता तो फिर सर्वज्ञ ईश्वरमें वैमत्य केंसे हो सकता है ? अरे ! मैं भूछतांहू " मूलं नास्ति कुतः काखा " जब जगत् कत्ती ही ईश्वर नहीं तो फिर बात ही क्या रही ?, बस यही कारन है जन-लोगोंने एक ईश्वरकी कल्पना करी है.

अब दूसरे प्रश्नका जवाब सुनिये—जो कि एक ईश्वर परमात्मा अनादि सिद्ध नहीं हो सकता तोभी ईश्वरपद अनादि बन सकता है, जैसे किसीने पूछा-सोना दुनियामें कबसे है ?, तो जवाब्में कह सकते हैं कि अनादिसे है, कोइ दिन ऐसा नहीं था के सोना न हो, मगर जो सोना हुआ है सो खाणसे ही निकला हुआ है अमुक विशेष सोनेका प्रश्न हो कि यह कब्मे है ? तो इसके उत्तरमें 'अनादिसे' ऐसा नहीं कह सकते किंतु आदिसे ही कहना पडेगा, ऐसे ही सामान्य परमात्मपद आन त्रित प्रश्नके जवाबमें अनादि मगर एक खासको लेकर प्रश्न होती आदि कहना उचित होगा, मतलब-इस दुनियामें कोई भी ऐसा दिन नहीं होता के सिद्धपद खाली हो या कोइ न कोइ तीर्थकर प्रश्न न हो, इससे इश्वरपदकी अनादिता सिद्ध हुई, इस पदके पुण्यापुण्यकृत भेद होनेसे दो प्रकार होते हैं, एक तीर्थकर और दूसरे सामान्य केवली, वे दोनों ही देह छोडकर त्रिवस्थानमें गये बाद 'सिद्ध' नामसे कहे जाते हैं, प्रथम तीर्थ-कर भगवन रूप परमात्माका भेद जनरदस्त पुण्योदयसे मिल्ल-नेसे ऐसे परमात्मपदधारी इस भरतभूमिमें वीश कोडाकोडी सागरोपम काल प्रमाण उत्सपिंणी अवसर्पिणी रुप दो कालोमें चोइस २ होते है, सबब यह है कि-इससे अधिक जीव इतने जनरदस्त पुण्यवाले नहीं हो सकते हैं.

आवक— स्वामिन ! इससे अधिक न हो सके इसमें तो ऐसा समाधान मान सकते हैं कि जैसे कठीन परीक्षाके पसार करनेवाले लडके बहुत थोडे होते हैं, और ऐसी डीग्रीए मौ-जुद हैं कि जिस डीग्रीको वर्षमें अमुक देश आश्रित एक ही पांस करता है, परंतु किसी वर्षमें एकभी पास नहीं होता ऐसा भी हो जाता है, इसीतरह कभी चोवीससे कम क्यों न हो सके ?

सूरीश्वर—महानुभाव ! जैसे रात्रि दिवसके कालको एकत्र कर उसके घंटे-कलाक गिने जावे तो चोइस ही होते हैं कमोबेश नहीं होते, इसीतरह यह भी एक ज्ञानिदृष्ट ऐसा ही अनादिकालसे स्वाभाविक प्रचलित नियम है, कि एक अवसार्पणीकालमें चोइस ही तीर्थंकर हो सकते हैं, इसस अधिक मा कम नहीं, ऐसे ही उत्साँपॅणीके लिये समझ लेना, तीर्थकर मञ्चकी पदवीको पानेवाले जीव कितनेक जन्म पहिले जबर-इस्त त्यागके धारी होते हैं, विकारोंको पुनः पुनः जलांजलि देते हैं, वीज्ञस्थानकोंकी या उनमेंसे एकाद स्थानककी आरा-धना करते हैं, बुरे करनेवालों पर भी द्वेष नहीं करते, उलटा इनकी क्या गति होगी १ इत्यादि भावदया विचारते हैं, ऐसे अनेक भवोंके ग्रुद्धसंस्कारसे तीर्थंकरपद प्राप्त होता है, और तीर्थकरके जीवोंकी करणी भी ' त्रिषष्टिवालाकाएरुष चरित्र ' देखो कैसी अद्भूत होती है?, इसतरह राग द्वेषसे रहित परमपवित्र जगत् विकार छत्य होनेसे केवलज्ञानकी डयोतिः जिसमें प्रकाशित हुइ है ऐसे परमात्मा ही पूजन करनेके लायक होते हैं, दूसरे सामान्यकेवलीपभु वे तीर्थकरप्रभुसे पुण्याइमें कम होते हैं, मगर ज्ञानमें फरक नहीं होता है, जभयका ज्ञान सामान है परंत तीर्थंकर भगवानकी मधुर मालकोश रागमें देशना योजनतक सुनाइ देती है, और जघन्यसें भी कोटि देवता निरंतर जिनके चरणोंकी सेवा करते हैं, और रूप ऐसा अद्भुत होता है कि इन्द्रकारुग भी इनके आगे तुछ माऌम पडता है, हमेशह अशोक हक्ष, देवोंकी तर्फसे फ़ुलांकी वर्षा, देवोंकी जयनादरूप ध्वनि, चामरोंका विझाना, रत्न स्वर्ण रजतके तीन कोट सहित सिंहासनपर विराजमान होकर देशना देना, इत्यादि आठ महापातिहार्थेंका होना इत्यादि अनेक पुण्याइको नतीजे तीर्थकर प्रभुमें होते हैं, सो सामान्य केवलीमें नहीं होते, झासनके प्रस्थापक तीर्थंकरप्रधु होते हैं, अतः वे पथम नंबरमें डपकारक माने जाते हैं, और सामान्यकेवलीमें वे पूण्यके 2

चिह्न नहीं होतें, ज्ञानमें कम नहीं, ऐसे सामान्यकेवल्ली एक कालमें इतने ही होवे ऐसा नियम नहीं है, इस प्रकार अतीत-गयेहुए कालमें अनंत तीर्थकर हो चूके हैं, और अगामी-आनेवाले कालमें अनंत होंगे, इस तरह ईश्वर जीवसे बनते हैं मगर एक अनादि नहीं होता, पद आनादि हैं, इनमेंसे चाहें जिसका भजन करो बेडा पार होजायगा.

श्राव क—महाराजश्री ! आप का फुरमान सत्य है परंतु एक ईश्वरवादिओंके मनमें ऐसे समाया हुआ है कि अनेक परमात्मा जगतका आधिपत्य कैसे कर सकते हैं?, एकके हाथमें दुनियाकी लगाम रहे तो ठीक नहीं तो काम नहीं चल सकता, सब मिलकर गरबड कर देगें और सबसे बडा तो एकहोका होना ठीक है.

मूरी श्वर — भाई ! प्रथम तो उन लोगोंको जगत्की मायाका काचू परमात्माके हाथमें है, ऐसा विपरीतज्ञान हुआ है, जगत्के किसी भी जंजालमें परमात्माका हाथ नहीं है, जीव अपने कमेंसि सुख दुःख स्वयं भोग सकते हैं, अगर ऐसा कोई कहे कि जडकर्म सुख दुःख कैसे दे सकेंगे ?, तो उनको विचारना चाहिये कि जैसे अफीम जड है मगर जो खाता है उसे स्वयं मारता है, तीसरेकी जरुरत नहीं. ऐसे ही जो पुष्टि कारक औषध लेता हैं, वह स्वयं पुष्ट बनाता है, जैसे उपरोक्त जड पदार्थ सुख दुःख स्वयं दे सकते है, ऐसे सव बातें किये हुए कर्मसे बन सकती है, तो फिर ईश्वरको विचमें डालनेसे क्या मतलव?, और जब ईश्वर विचमें होवे तो कर्म कुरते ही क्यों न रोके ?, जब रोकनेकी शक्ति होवे और न रोके और पिछेसे दंड देवें तो वह अन्यायी क्यों न कहा जावे ⁹.

श्रावक—स्वामिन् ! आपका कथन ठीक है कि कर्म करते वरूत समर्थ होकर न रोके और पीछेसे दंड देवें वह न्यायी नहीं हो सकता है, परंतु एक यहभी युक्ति उन लोगोंकी तरफसे पेश होती है कि कोई चोर चोरी करता है, तो वो स्वयं जेल्लमें नहीं जाता या खुनकरनेवाला अपने आप फांसी नहीं चढता मगर राजा देता है, इसीतरह तरह परमात्मा दंड देनेवाला होना चाहिये, क्यों कि कर्म जड है और चेतन दु:खी होना नहीं चाहता, तो फिर दु:ख कैसे होगा?, और कर्म कैसे भोगे जायेंगे?, तथा वह नरकादिगति-ओमें अपने आप कैसे जायगा?.

सूरश्विर — जीव स्वयं दुःखी होना नहीं चाइता यह बात ठीक है, मगर कर्म दुःख दियें वंगेर नहीं रहता, जैसे खाया हुआ अफीम दुसरेकी वंगेर अपेक्षा रक्खे, जीवकी इंच्छा विरुद्ध इसका प्राण छेता है, ऐसे जीव के किये हुए अछुभ कर्म किसीकी अपेक्षा वंगेर आत्माको दुःख दे सकता है, जैसे पापके उदयसे कसाईके हाथमें फसा, और वहां मारा गया, और दब कर मर गया, मकान गिर गया, धाडमारुओंने वैरसे काट डाला, बतलावो ? यहां पर परमात्मा कहाँ दंड देने आता है, ऐसे ही लडका मर गया, धन चोरा गया, इत्यादि अनेक कष्ट अशुभ कर्मोंसे संसारिक निभित्तोद्दारा ही जीव भोग सकता है, अगर उन कसाई छटारें धाडमारु आदिसे जो दुख होता है बहां ईश्वरकी प्रेरणा है ऐसा माने तो कसाईद्वारा जो गायें काटी जाती है उस पापकर्मका करा-नेवाला परमात्मा ठहरे, और कसाई निर्दोष हो जावें, तथा जिसकी दुर्गति न होनी चाहिये परंतु ऐसे होता नहीं है.

एक वैरीने एक शत्रुको काटा उस वरूत मरनेवालेको महावेदना हुई यह अग्रुमकर्मका दंड है, बतलाईये? यह ईश्वरने दिया या वैरीने दिया ?, अगर ईश्वरने दिया ऐसे मानें तो फिर वह मारनेवाला सरकारसे फांसी चढाया जाता है, सो ऐसा न होना चाहिये और ईश्वरको बचा लेना चाहिये, परंतु श्रत्रुको मारनेवाले अत्रुकी फाँसी आंखोसे देखी जाती है, बस साबित हुआ कि दुनियाई निमित्तोंसे ही कर्मोद्यके समय फल भ्रुगतनेमें आता है, अगर ईश्वर दंड देवें तो फिर कर्म करते ही क्यों न रोके ?, वास्ते ईश्वर इन मामलोमें नहीं पडता, अब बात रही दुर्गतिमें जानेकी सो तो जीव जिस गतिका आयुष्कर्म बांध लेता है वे आयुष्कर्मके पुर्गल और जिस गतिमें जाना ँहे उस गतिके पुद्गलोंमें लोइचुंबक−मकनातीझक और लोह जैसा संबंध होनेसे उसगविका आखुष्य पूरा होते ही उस गतिके पुद्गलोंसे जीव लोहेकी तरह खींचाता है, और एकदम ईच्छा हो चाहे न हो उस गतिमें दाखिल होना पडता है, बस, इत्यादि वातोंसे ईश्वरमें जगतका व्यवहार चलानेरूप आधिपत्य सावित नहीं हो सकता है, हाँ, परमपवित्र ईश्वरपद भोगनेवाले अतिनि-र्मेल अनंज्ञान अनंतदर्शन अनंतसुख अनंतवीर्य आदि **गुणके** धारक लोकाग्रपदके निवासी होनेसे वे जगतके पार होनेमें संपूर्ण निमित्त बनते हैं, इससे वे दुनियाके सर्वजीवींके उपासना करनेलायक होनेसे मालिक हैं, और जन्म मरणके चक्रसे छ्टे

हुए होनेसे स्वतंत्र स्वामी वेही कहे जा सकते हैं, उनकी उपासनासे आत्मामें पवित्र भावना उठती है, और वह पवित्र भावना कर्ममलको धोकर आत्माको मुक्तिपर पहुंचाती है, इस लिये वें उपासना करनेलायक है, उनके निमित्तकारणके विना मिल्ले जीव कदापि मुक्तिको हांसल नहीं कर सकता है, इ**सलिवे** ईश्वरपरमात्माकी खास आवश्यकता है, परंतु दुनियाके मघडोंमें ईश्वरका हाथ माननेवाले बडी भारी भूल करते हैं, और ईश्वरको इन झघडोंसे जुदा माननेवाले जैनियोंसे द्वेष करते हुए पवित्र परमात्माके स्वरूपको माननेवाले जैनियोंको अनी-श्वर वादी आदि विशेषण देकर अनेक जन्मोंमें अज्ञान भावकी बृद्धि ही दृद्धि होती रहे और सत्यमार्गसे दर ही होते जावे ऐसे पापकर्म उपार्जन करते हैं, अस्तु,-" विचित्रा गतिः कर्म-णाम् " यानी कर्मोंकी गति विचित्र है, मिथ्यात्वकी स्थिति जहां तक जोरो कोरसे चल्ल रही है वहां तक ये सच्चे तस्व भी उंटको पाक्षाकी तरह पसंद नहीं आतें, इन बातोंसे साबित हुआ कि परमात्मामें जगत्का व्यवहार चलाने रुप आधिपत्य नहीं है तो फिर अनेकपरमात्मा होनेमें उनको हरकत ही क्या रही १, नाहकमें एक है एक है ऐसा पूकार करनेसे क्या फायटा ?.

श्रावक- भगवन् ! अनेक तीर्थंकर प्रश्वोंमें खास एकका ध्यान करनेसे कल्याण हो सकता है या सर्वके ध्यानसे ?.

सूरीश्वर—महाज्ञय ! चाहे एक परमात्माका अवछंषन छे चाहे विश्वेषोंका, कल्याण चित्तकी स्थिरता और उनके गुणोंकी अपनेमें पाप्तिके होनेसे हैं, जैसे अस्थिरचित्तसे अनेक

चैत्यालयांके दर्शन करनेसे भी उतना फल नहीं हो सकता है जितना ज्ञांतस्वभावसे और स्थिरचित्तसे एक मंदिरमें रही हुई मूर्तियोंके दर्शनसे हो सकता है, परंतु इसका यह अर्थ नहीं लेना कि एक ही मंदिरसे यात्रा समाप्त हो गई, क्यों कि जूदे जूदे मंदिरकी अंदर जानेसे उन मंदिरोंके दृश्यसे जूदे जूदे कत्त्तीओंके इस पुण्यकार्यका अनुमोदन होगा इतना एक मंदि-रमें नहीं हो सकता तथा जूदे जूदे अभिवादन और स्तुतिका लाभ, कालिक डुाभ भावनाकी विशेषता और इस धर्मनिमित्तमें शरीरके न्यायामसे होता हुआ पुण्य या निर्जरा आदि लाभोंसे विशेष पर्यटनसे विशेष लाभ होता है, ऐसे एक परमात्माके अंतिम चरित्रावली तथा प्राग्भवोंके स्तुत्यकार्योंको स्मरण करके उन कार्योंकी अपनेमें पाप्ति करते हुए पूजन वंदनसे भी निर्वाण हो सकता है, और अनेक परमात्माके स्वरूपका विचार कर अपनेमें उस पवित्र स्वरूपका प्रवेश कराता हुआ पूजन स्तवनसे भी निर्वाण पा सकता है, मतलब परमात्माकी पूजा मोक्ष फलको देनेवाली है,परंतु एक अनादि सिद्ध ईश्वर है वो कभी जीव था ही नही, कदीमीसे-सदैवसे ईश्वर ही चला आता है ऐसे बाह्यात् विचारों को ज्ञानीयोंसें ज्ञान लेकर हृदयसे दूर करके जो संसारमें पूर्वके डुाद्धसंस्कारोंसे जन्मका अंत करके तीर्थकर भगवान् अंतिम जन्ममें तीर्थ पवर्ताते हैं, उन्हें प्रभु मानंकर सेवनेसे ही मुक्ति शोघ मील जाती है, मगर शरत यह है कि इनके वचनोंको सत्य मानकर मुक्तिके जो जो उपाय उनोने बतायें है उन उपायों पर सम्यक प्रकारसे आरुढ होजाना चाहिये.

श्रावक—भगवन् ! अगर अनादिके एक ईश्वरकी मान्यताका त्याग करके वे लोग अपने उत्पन्न हुए अवतारोंको माने तो इससे तो वे ठीक ईश्वरोपासक बन सकते हैं न १, कारण जैसे अपने यहाँ तीर्थकर प्रधुओंको उत्पन्न हुए प्रधु मानते हैं ऐसे वे लोग ऋष्णादि अवतारोंको उप्तन्न हुए मातते हैं.

सूरीश्वर—श्रावकजी ! अपनी मान्गतामें और उनकी मान्यतामें जमीन आस्मान सा अंतर है, अपने मानते हैं कि तीर्थकरदेव संसारमें निवास करनेवाले एक जीव यें मगर कई जन्मोंके त्याग तप जपादि पवित्र संस्कारोंसे घाती कर्मका क्षय करके आत्मामें कैवल्यज्योतिःका प्रकाश किया है जिससे जगत्की कोई भी वस्तु उनके ज्ञानसे छूपी नहीं रहती और वे अनंतशक्ति संपन्न सुरासुर नरेश करके सेव्य होते हैं और घाती कर्मका क्षय करके उसी जन्ममें मुक्त होनेवाले हैं, और वे लोग मानते हैं कि दैत्यादिका नाश करनेके लिये परमात्मा स्वयं रामादि अवतार लेता है, यहां जरा भी विचार करते हैं तो यह बात बिलकूल ठीक नहीं माल्यम होती, कारण कि ऐसे माननेमें अनेक विरोध खढे हो जाते हैं.

१-प्रथम विरोध तो यह है कि उनकी मान्यता मूजव सर्वव्यापक ईश्वर है अब बताल्लाईये ? सर्वव्यापक अवतार कैसे ले सकेगा?, क्या सागर गागरमें कंध हो सकता है?, कहनाही पडेगा कि नहीं, सम्रुद्र लोटेमें समा सके तो परमात्मा अवतार ले सके.

२-दूसरा विरोध यह है कि पवित्र परमात्मा भोगकर्ममें

कोन कैसे हो सकेगा?, अगर हुआ तो वह परमात्मा कैसे सिद्ध हो सकता है?, (यथपि जैनावतार भी विवाहित होते हैं मगर वे तो संसारमेंसे हुए हैं तो जिसका भोगावल्ली कर्म (संस्कार) वाकी हो तो लप्न करते हैं, क्यों कि उस कियासे भोग कर्म क्षय होता है, देखो-मछिनाथप्र तथा नेमिनाथस्वामीको भोगावली कर्म नहीं था तो विवाहित भी नहीं हुओ.)

३-तीसरा विरोध, उन लोगोंका मानना है कि जब जगत्में धर्मकी म्लानि होती है और अधर्मका उत्थान होता है तब परमात्मा अवतार लेता है, देखो-गीताजीका श्लोक-

" यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत! । "

अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहं ॥ १ ॥

तनिक सोचो तो माऌम होगा कि यह बात भो ठीक नहीं है, क्योंकि धर्मकी म्लानि जिन साधनोंसे उत्पन्न हुइ वे साधन भी तो उनके हिसाबसे परमात्माने ही बनायें हैं. भला यह क्या बात हुई ?, मथम ज़हरका दरस्त लगाया और बादमें उसके काटनेकी महिनत उठाइ, क्या ऐसी सर्वज्ञ परमात्माकी करनी हो सकती है?, अगर दुष्ट साधन बना भी लिये तो क्या अवतार बगैर लिये बिगडे हुए यंत्रको साफ करनेमें परमात्मा असमर्थ हैं ?, जो इसको गर्भावासमें आना पडा और देह भारण करना पडा ?.

8-चोथा-देह और योनिका धारण करना कर्मसे होता है, जब परमात्मा सर्वकर्मोंसे रहित है तो फिर नह देह और जीनिको केसे धारण कर सकेगा ?.

१-पांचमां विरोध-किसीका भी प्राण लेनेवाला; हिंसक पाणी कहा जाता है, परमात्माका अवतार हजारों दैत्योंका विना-अक हिंसक क्यों न कहा जावे ? और हिंसकोंकी नरक गति होती है तो वो भी ऐसा पाप करनेवाला नरकगतिमें क्यों न जावे ?, अगर कहा जावे कि अतिपापी जीव होते हैं जिनको परमात्मा मारता है तो फिर कसाईके हाथसे जो जीव मरते हैं उन जीवोंने भी तो ऐसा ही पाप किया है, अन्यथा ऐसे दुःख कभी नहीं सहन करने पडते, क्यों कि जगतमात्र के जीव जिस वरूत दुःख भोगते हैं उस वरूत अवझ्य उनके पाप कर्मका उदय होता है यह अटल नियम है, इससे तो कसाईकी भी दुर्गति न होनी चाहिये, अगर जीवोंको दुःख देनेसे उसकी दुर्गति होती है इसमें संदेह नहीं है तो दुःख देनेवाले परमा-त्माकी भी इसोतरह स्थिति होनी चाहिये, परंतु वस्तुतः यह स्थिति नहीं है, नाही परपात्मा अवतार लेता है और नहीं दुष्टोंको बनाता है, सिरफ अपने अपने कर्मानुसार सज्जन दुर्जन उत्पन्न होते ही रहते हैं, और जब दुनिया विशेष दुःखी हो जाती है तब पूर्वके डुद्संस्कारोंसे डुद्ध होते होते कोतनी एक पूर्ण धर्मात्मा उसी जन्ममें मुक्तिगामी तीथकराँदि पवित्र व्यक्तिऐं उप्तन होकर उपदेशद्वारा पापीओंको भी पवित्र बनाकर जग-तको सुखास्वादका अनुभव कराते हैं अथव। थोडे जन्मोंमें मक्तिगामी कितनीक पवित्र व्यक्तिओंके उपदेशसे भी कितना ही सुधारा हो जाता है. ईश्वरको सत्यानाज्ञीका व्यापार करनेकी कुछ जरुरत नहीं रहती है, मतलव वे लोग जिस प्रकारसे अवतार मानते हैं वे सिद्ध नहीं हो सकते हैं, अब इतने विचा-3

रके बाद परमात्माकी खास पहिचानके छिये कुछ विचार किया जाता है, ध्यानसे सुनो—

'' दूषणेभ्यो विनिर्म्रक्तो-ऽष्टादशेभ्यो भवोद्धि यः ।

मातिहार्याष्ट्रकैर्युक्तः परमात्मा स उच्यते ॥ १ ॥ "

जो अष्टादश दूषणसे रहित और अष्टमातिहार्य सहित हो सो परमात्मा कहा जाता है, यह लक्षण प्रथम नंबरके तीर्थकर प्रश्चमें सामिल होसकता है परंतु असल्प्रे तो अष्टादश दूषणसे रहित इतना कहे तो भी कार्य चल जाता है और सामान्यकेवलीका भी इस लक्षणसे ग्रहण हो जाता है, तथा सिद्ध पद भी लिया जा सकता है परंतु तीर्थंकरप्रश्च सबके विशेष उपकारी होनेसे उनके आाश्रेत परमात्माका लक्षण बताया गया.

अ।वक-गुरुदेव ! वे अष्टादश दूषण कोनसे हैं, इस विषयमें जरा विस्तारसे विवेचन सुनाकर उपकृत करें.

सूरीश्वर—महाशय ! सुनिये ! इसके बारेमें दो श्लोक इस तरह आते हैं—

" अन्तराया दानलाभ-वीर्यभोगोपभोगगाः । हासो रत्यरती भीति-ईगुप्सा शोक एव च ॥ १ ॥ कामो मिथ्यात्वमज्ञानं, निद्रा चाधिरतिस्तथा । रागो द्वेषश्व नो दोषा-स्तेषामष्टादशाप्यमी ॥ २ ॥ "

१-दानांतराय नामका दूषण जिनमें न हो अथार्त् दान चाहे इतना दे सके परंतु जैसे कोई कोई आदमीके दिलमें दान देनेका इरादा होता है परंतु अंगराय कर्रके उदयसे नहीं दे सकता, इस अंतरायका नाम दानांतराय है, सो भगवान्में न होना चाहिये

२--दूसरा लाभांतराय जिसमें न हो अर्थात् किसी पदा-थेको चाहे और न मिले, इसको लाभांतराय कहते हैं, जैसे रामचंद्रजी सीताजीको चाहते थे, दरख्तोंसे भी पूछते रहे, हाय ! मेरी सीता कहां ?, उस वख्त उनमें लाभांतराय था, वस, जिसमें यह दूषण हो वह परमात्मा नहीं हो सकता है, ऐसे ही जिसमें----

३-तीसरा वार्यांतराय नामका दूषण हो वह प्रभु नहीं, क्यों कि वह अनंतशक्तिवाला होना चाहिये, कोई कार्य उसकी शक्तिके बहार नहीं होता मगर कदापि अनुचित मार्गमें शक्तिको नहीं लगा सकते, ऐसे ही---

४-चोथा दूषण भोगका अंतराय और---

५-पांचवा उपभोगका अंतराय भी जिनमें न होवे, जो कि वे परमात्मा भोगोपभोगकी विशेष सामग्रीसे दूर रहते हैं मगर इनको किसी भी भोग (एकवार भोगमें लेने लायक वस्तु खाद्य पदार्थ और पुष्प वगेरा) का अंतराय नहीं होता, जिस वस्तुकी इच्छा हो मिल सकती है, ऐसे ही कोई भी उपभोग (वारंवार भोगने लायक चीजें, जैसे आभूषण वस्त्र मकानादि एक रोजके भोगसे नहीं विगडते मगर वारंवार भोगे जाते हैं) का अंतराय भी नहीं होता है.

आवक—साहिब ! प्रभु सर्व पदार्थोंका त्यागी है, मात्र अचित्त पदार्थ, सो भी क्षुधा वेदनीय समानेके लिये ही जब- तक देह रहे ग्रहण करते हैं, तो फिर उनका अंतराय टूटा हे ऐसा कैस कह सकते हैं ?

सूरीश्वर--भाई ! ऐसी बात है कि प्रभु चाहे सर्व वस्तुका त्याग कर देवे, इससे उनको अंतराय है ऐसा नहीं कहा जा सकता. जैसे किसी धनाढ्यके वहां सब वस्तुएं तैय्यार हैं मगर वैराग्यसे उसने घरकी बहुतसी वस्तुओंका तैय्यार हैं मगर वैराग्यसे उसने घरकी बहुतसी वस्तुओंका त्याग कीया हैं तो क्या धनाढ्यको उन वस्तुओंका भोगांतराय है ऐसा कह सकते हैं ?, कदापि नहीं, ऐसे ही तीर्थकर प्रभु के विषयमें समझनेका है

६-छट्ठा हास्य नामका दूषण जिस्में हो वह परमात्मा नहीं हो सकता है, कारण कि हाँसी किसी अपूर्व वस्तुके देखनेसे या सुननेसे होती है, सो तो परमात्मा त्रिकाल्जज्ञ होनेसे किसी भी नवीन वस्तुका अनुभव नहीं करते, तो फिर हाँसी कैसे हो सकती है ?, और प्रभुमें हास्य मोहनीयके क्षय होनेसे भी छट्ठा दूषण नहीं हो सकता है, जिसमें यह छट्ठा दूषण हो, उसे परमात्मा नहीं जानना.

७-सातवा दूषण रति [खुशी] है, किसी पदार्थके लाभसे जैसे गृहस्थोंको होती है सो परमात्मामें नही होती हैं, और---

८-अरति नाम दिलगीरीका है, जैसे नुकसान होजानेसे लोगोंको होती है सो भी परमात्मामें न होना चाहिये, क्यों कि यह भी एक बडा दूषण है, परमात्माके ध्यान करनेवाले योगियोंको भी सुखदुखमें समान रहते हुए देखते हैं तो फिर परमात्मा किसी वस्तुके नुकसानसे दिलगोर कैसे हो सकता है १, और जिसने अपनी स्त्रीके वियोगमें या किसीके मरणमें हृदय स्फौट रुदन किया हो; उसे उस समय परमात्मा कहनेवालोंको बुद्धिमान कैसे कह सकते हैं ?

९- नैॉवा दूषण भय नामका है सो भी परमात्मामें न होना चाहिये, जो किसीसे भी भयभ्रांत होकर भागता है वो किसी तरहसे परमात्मा नहीं हो सकता, जैसे टकासुरसे महादेवजी भागे थें, जो स्वयं भयसे दौड भाग करता है वह हमें किस तरह छूडा सकता है ?, अगर मान लिया जाय कि यत किंचित दुनियाँई सहारा दे भी सके तो भी वह परमात्मा तो होही नहीं सकता, जो दूसरेसे डरता हुआ भागा फिरे.

१० जुगुप्सा नाम घूणा-नफरतका है सो भी प्रश्रमें नहीं होता, नफरत किसी गंदी चोज के देखनेसे होती है, सो वस्तु स्वरूपके अखिल पर्यायोंको जाननेवालेमें नहीं होती और जो होना मान लिया जाय तो वो महादुःखी हो जावे, कारण कि जैसे अपनेको किसी वस्तुको देखकर नफरत होतो है तो अपन ग्रुँह फिरा लेते हैं और ठीक हो जाता है, मगर परमात्मा सर्वज्ञ होनेसे सर्वकाल सर्ववस्तुओंको देखते हैं, वो कहां ग्रुह फिरायेंगे ? मतलब, कहीं भी नही फिरा सकते, बतालाइये ?, फिर नफरत हो तो कितने दुःखी हो जावे वास्ते उनमें यह भी दूषण नहीं होता.

११-वा दूषण झोक, सोभी परमात्मामें नही होता, मगर किसी शास्त्रमें अवनारमें शोक होना साबित हो तो समझ लेना कि वह प्रश्च स्वरुप अवतार नहीं, सामान्य जीव है.

१२--काम यानि विषय वासना, यह भी प्रभु दशामें नहीं होता अगर हैं तो वह सामान्यजीव है, ऐसे मानना चाहिये १३-वा मिथ्यात्व (उल्रटी श्रद्धान) भी वडा जबरदस्त दूषण है सो भी प्रभुमें नहीं होता.

१४-अज्ञान नामक दोष भी नहीं होता हैं, तथा---

१५--निद्राका होना भी उनमें नहीं है अगर हो तो वह मुख नहीं, कारणके सोते हुए जीव बिलकूल अचेतनसी दशा भोगते हैं और प्रभु तो सर्वदा सर्वज्ञ है उन्हें निद्रा होही कैसे सकती है, दूसरा कारण दर्शनावरणीयकर्मसे निद्रा आती है और वह कर्मक्षय करे बाद ही केवली भगवान् बनते हैं तो फिर उनमें कारणके अभावसे कार्य कैसे हो सकता है ?

१६-वा दूषण अविरति यानि किसी भी वस्तुका परि-त्याग न हो उसका नाम अविरति है सो भी परमात्मामें नहीं होता.

१७-वा दूषण राग है और---

१८-वा दूषण द्वेष, ए दोनों भी परमात्मामें न होने चाहियें.जिसमें यें अठारह दूषण न होवे वह परभात्मा हो सकतः है, मुख्यतय^I जिसमें राग और द्वेष न होवे उनमें ये अठार हमेंसे एक भी दूषण नहीं होता यह अटल सिद्धांत है, मात्र लोगोंको स्पष्टतया समजानेके लिये अठारह खोले गये, इससे हरएक भाविक मनुष्यकों परिक्षा पूर्वक जिस मञ्जका स्वरूप राग और द्वेष रहित हो उसका भजन करना चाहिये, क्यों कि ऐसे वीतरागी मञ्जके ध्यानसे आत्मा वीतराग हो सकता है, न कि राग द्वेषसे भरे हुए के ध्यानसे, दरिंद्रकी सेवासे ईश्वर नहीं बन सकते हैं, ईश्वरकी सेवासे ही ईश्वर होते हैं ऐसे हो झगडेखोर हिंसक मांसाहारि दुराचारो कामी कोधी को ईश्वर मान कर भजन करनेसे कभी कल्याण नहीं हो सकता है और अष्टादश दूषण रहित परमात्माके ध्यानसे तुरत ही मुक्ति मिछ सकती है, इस छिये छुद्ध परमात्माका ही ध्यान करना चाहिये, अब निष्पक्ष विचारक के दिछमें यह स्वाभाविक ही विचार आ सकता है कि जगत्भी माया मोहसे तप्त हुए हमको उस परम पवित्र राग द्वेष रहित परमात्माका ध्यानरूप अमृत हो परम शीतल बना सकता है, परंतु इसकी पहचान हम कैसे कर सकते है कि हींदु अवतार वीतरागी है या जैनावतार ?, तो उनको नीचेके श्लोक और उसके अर्थकी तरफ ध्यान देनेसे स्पष्टतया माॡम हो जायगा कि कौनसे अवतार राग सहित हैं और कौन कौन राग रहित हैं,---

" प्रत्यक्षतो न भगवान् ऋषभो न विष्णु----राल्लोक्यते न च हरो न हिरण्यगर्भः ।

तेषां स्वरूपगुणमागमसम्प्रभावात् । ज्ञात्वा विचारयत कोऽत्र परापवादः? ॥ १ ॥ "

भावार्थ—प्रत्यक्षसे जैनियोंके देव श्रीऋषभदेवस्वामी अब मनुष्य लोकमें मौजूद नहीं होनेसे नहीं देखे जाते, ऐसे ही वैष्णवोंके इष्टदेव विष्णुजी भी दष्टिगोचर नहीं होते, जैवके इष्ट शिवजी तथा ब्रह्माजी भी प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आते तो कैसे जाना जावे कि कौन राग द्वेषवाले हुए और कौन राग द्वेषसे रहित हुए?, तो इसके उत्तरमें समझना कि उन उपर कहे हुए नामवालोंकी मूर्तियोंसे माऌ्यम कर सकते हों कि कौन कौन रागद्वेष रहित हैं औ कौन कौन सहित हैं ? जिसको मूर्ति स्त्री सहित हो तो साफ जाहिर हो सकता है' कि ये मूर्त्तिवाले देव पूरे रागी थे और काम विकारोंसे दुःखी थे, नहीं तो स्त्रीकी क्या जरुरत ?, जो जैसा हो उसकी मूर्ति भी वैसी ही होती है, इस नियमसे वे जीते स्त्री सहित ही जीवन गुजारनेवाले थे, मगर जीवनमें स्त्रीका संग छोडा नहीं था, यही कारण है कि उनकी मूर्ति भी स्ती सहित बनाइ गइ है, ऐसे हो जिस देवकी मृतिंके हाथमें शस्त्र हो वह द्वेषो है, अन्यथा शस्त्र पकडनेकी क्या जरूरत?, अगर दुष्टोंको मारनेके लिये शस्त्र पकडे हैं तो क्या उनके मारे विगेरे उनका सुधारा नहीं हो सकता है ?, शस्त्रसे कार्य करना असमर्थ निर्दय और लोभीका काम है, परमात्मामें ये बातें होही नहीं सकती तो फिर इस्त्रकी क्या जरुरत?, और उन छोगोंके हिसाबसे तो वह बुद्धिको ही बदछ देवे तो क्या उपदा कि ऐसे कहेरके काम ही न करने पडें, बस, सिद्ध हुआ कि जिसदेवकी मूर्तिएं स्त्री या शस्त्र सहित हो वे रागी द्वेषी देव हैं अपना कल्याण नहीं कर सकते, जिस देवकी शांत परम वीतरागस्वरूप मूर्ति हो वही देव राग द्वेष मुक्त है, ऐसा मानकर उनहीकें चरणोंकी सेवा करनेसे भवोदधि पार हो सकते हैं, परंतु जहां पर प्रथमसे ही द्वेषीयोंने ऐसी वासना विठादी हो कि—-'' इस्तिना ताड्यमानोऽपि, न गच्छेज्जैन-मन्दि्रम् , ''—भन्ने हाथी जानसे मार डाल्ने तो मर जाना मगर बचनेके लिये जैनमंदिरमें नहीं घूसना, वहां शांत वीतरागै-प्रभुकी मृर्ति कैसे आसनसे विराजमान होकर परमशांत स्वरू-पसे भक्तोंको कैसी अपूर्व शांति दे रही है यह देखनेकाही समय कैसे मिल सके १, अस्तु, अब वो कटाकटीका समय

नहीं रहा है, चारोंवर्ण प्रायः समझने लगो हैं कि जिसका युक्ति युक्त वचन हो उसीका वचन ग्रहण करना चाहिये, ऐसे समयमें यह विषय उपकारक हो सकता है, जैसे प्रभुकी मूर्ति-ओंसे कौनसे देव वीतराग हैं?, इस विषयका खयाल हो सकता है, ऐसे ही शास्त्रोके तपास करनेसे भी जिनके जीवनचरित्र अति स्वच्छ, कामादि चेष्ठा शून्य, वैर विरोधसे रहित, और आत्मध्यानमय हों वेही शुद्धदेव हो सकते हैं और जिन्होंने काम चेष्टाको ही सार माना क्रेशमय जीवन बनाया, और कोई किसीकी स्त्रीके पिछे दोडा, किसीका किसीको देखकर वीर्य स्खलित हो गया, ऐसे अपवित्र वर्त्तन जिस देवके विषयमें शास्रोंमें प्रत्यक्ष लिखे हों वे कुदेव हैं, जहाँ ऐसा स्वतः विचार हो सकता है त्यहाँ निंदाकी क्या बात हुई ?, ऐसे निष्पक्ष तत्त्वका विचार करेगा वह कल्याण के रास्तेको हाँसिल कर सकता है, परंतु इतना थाग्य होना चाहिये, देखो जिनेश्वर देवके चरित्र वर्णनके वास्ते, ' क.ल्पसूत्र ' ' त्रिषष्टि इालाक) पुरुषचरित्र ' कैसे परम पवित्र जीवन चरित्र हैं ? इनकी जीवन घटनामें वेदिक अवतार की तरह कहीं भी राग और द्वेषकी चेष्टा या कामीपनेका वर्त्ताव नहीं नजर आता अगर निष्पक्ष भावसे विचार करते हैं तो देवत्व इनमें ही सिद्ध होता है और इनमें ही सर्वज्ञता साबित होती है, इस लिये इनका कथन किया हुआ धर्म ही प्राणीको ग्रदण करने लायक है, इस धर्मकी प्राप्तिके लिये सतत प्रयत्न करना चाहिये, क्यों कि इस चारगतिरूप संसारमें महापुण्यके उदयसे यह मनुष्यजन्म प्राप्त हुआ है तो इसे हाँसल कर धर्मकी प्राप्तिसे सफल करना चाहिये, दुनियामें अनेक प्रवर्धी जनोंने धर्मका

स्वरूप ऐसा बिगाड दिया है कि जिसका हदो हिसाब नहीं, मनुष्यको उचित है किधर्भकी खूब परीक्षा करके ग्रहण करें, जिस मतमें देव गुरु और धर्म ये तीनों तत्त्व ऐसे पवित्र हों कि जिनमें किसी तरहका दूषण न हो, उसी मतको ग्रहण करना चाहिये, प्रथम देवतत्त्व है इस पर विचार किया गया और बताया गया कि परमशुद्ध तीर्थकर प्रश्च है, और नहीं है, इस बातको जतलानेके लिये अन्यधर्मांग्लंबियोंको जैनावतारोंके जीवन चरित्र पढनेको देने चाहिये वे उन चरित्रोंको पढ कर और अपने देवोंका स्वरूपसें मुकाबला कर अगर पक्षपात रहित होंगे तो तुरत मार्ग पर आ जायेंगे और शुद्ध अईन जिनदेवकेही उपासक बन जायेंगे.

श्रावक— क्या अईन देवके सिवाय दूसरे देव राग द्वेष शहित नहीं है?, ाजिससे आप एक जिनदेवका ही सेवन करना फरमाते हैं.

सूरीश्वरजी-हाँ ऐसा ही है, देखो प्रथम तुम पौराणिक देवताओंकी लीला, अगर मध्यस्थ भावसे कोई भी विचारेगा तो साफ तौर पर कबूल करना पडेगा कि वे वैदिक अवतार उनके पुराणोंसेही कैसे राग द्वेषसे भरे हुए सिद्ध होते हैं, यह लेख किसीके दिल दु:खानेके लिये नहीं लिखा जाता, सिरफ इसी गरजसे यह लेख लिखा जाता है कि कोइ भी जीव कुदेवके स्वरूपको समझकर सुदेवके स्वरूपको समझ ले तो फिर इसको इस असार संसारमें भटकना ना पडे और सम्यक्त्वरत्न भी पाप्ति द्वारा उसका अनादि मिथ्यात्व दारिद्रच दूर हो जावे, मनुष्य होकर भी मिथ्यात्वसेवनसे

अनंतकालतक नरक निगोदमें रुलते हैं सो उनका यह दुःख मिट जावें, मनुष्योंको विचार करना चाहिये कि दो पैसाका मटका लेना होता है तोभी कैसा ठकोर ठकोर कर लेते हैं, तो धर्मका विचार क्यों न करना चाहिये ?, बजारमें जाकर वस्तुकी खरीद करनी होती है तो अनेक दुकानोंकी मुलाकात लेकर जिस दुकानपर अच्छामाल होता है, उसीसे खरीद की जाती है, इसीतरह बुद्धिमानोंको जचित है कि जिसमतमें शुद्धगुरु और शुद्धधर्मकी प्राप्ति हो उसी मतम <u>शुद्धदे</u>ब दाखिल होकर शुद्ध तीन तत्त्वरूप सुंदर माल ग्रहण करनाँ चाहिये कि जिसकी पाप्तिसे अनंतसुख मिलते हैं, याद रखना चाहिये कि "--तातस्य क्र्पोऽयमितिब्रुवाणाः क्षारं जलं का-पुरुषाः पिबन्ति ''---अर्थात्---कायर पुरुषों यह मेरे बापका कूंआ है ऐसे कहते हुए उसका खारा पानी भी पीलेते हैं, मगर पाडोशमें रहा हुआ मीठा पानीके कुंएका उपयोग नहीं करते,'' जब तक यह बात पकडी हुइ है तब तक आदमी कभी सचे तत्त्व प्राप्त नहीं कर सकता मगर 'जो अच्छा सो मेरा'की नीतिको स्वीकार करके मेरा सो सचेके स्वभावको जलांजली देदेता है वोही परमसत्यमार्गके पासकता है, देखिय प्रथम हिंदु∽वैदिक अवतारोंकी मूर्त्तियां ही उन अवतारोंकी राग द्वेषमय प्रदृत्तिको साबित करती हैं किसीके पास स्त्री खडीं है तो किसीने धनुष्यबाण लिया हुआ है तो किसीने गदा उठाइ है, क्या इससे राग द्वेषकी पद्यत्तिवाला जीवन सिद्ध नहीं होता है?, कहना हो होगा कि अवश्य, क्योंकि स्त्रीको पास रखना कामीका काम है और कामी महारागी होता है, ऐसे हि शस्त्रोंको द्वेषी ही धारण कर सकता है क्यों कि

द्वेप सिवाय किसीपर शस्त नहीं चलाया जाता, जिन देवोकी मूर्तिएं ऐसी हों देव भी ऐसे ही हुए हैं, वरना देखो जिनेश्वर प्रभु परम शांत राग द्वेष रहित हुए हैं, तो उनकी मूर्तिएं भी ऐसी ही शांत बनाइ गई हैं, ऐसे ही दृसरा तत्त्व गुरु है, सो गुरु पूर्ण त्यागी महावतधारीको कबुलना चाहिये नकि घरवारी घोडागाडी मोटर और रेलवेमें सेर करनेवाले, पैसे रखने तथा स्त्रीके संगकरनेवाले और लोभसे भरे हुए गुरु कदापि कल्याण नहीं कर सकते हैं, देखी गुरुके विषयमें क्या लिखा हुआ है ?,---

" अवद्यम्रक्ते पथि यः प्रवर्त्तते,

निवर्त्तयत्यन्यजनं यः निस्वृहः ।

स एव सेव्यः स्वहितैषिणा गुरुः,

स्वयं तरँस्तारयितुं क्षमः परम् ॥ १ ॥ "

मतलब कि— जो निस्पृह गुरु अवद्य-पापमुक्त मार्गमें चल्ठता है और अन्यजनोंको पापमार्गसे हटाता है, अपने हितकी चाहनावाले पुरुषको ऐसे ही गुरुकी सेवा करनी चाहिये जो स्वयं तरता हुआ औरोंको तारता है.

इस श्लोकसे यह वात अवश्य ध्यानमें लेनेकी है कि जो गुरु परिग्रह विपय विकार और कोधादिसे भरे हुए हैं, वे अपना कल्याण कभी नहीं कर सकते हैं, जब गुरु भी घरवारी और चेला भी घरबारी तो गुरु और चेलेमें फरक क्या हुआ?, देखो- जैन गुरु जमीन पर सोते हैं, पैदल चलते हैं, फल फूल आदि सब वनस्पतिके जीवोंको भी अभयदान दिया है, किसीका उपयोग नहीं करते, अतर आदि पदार्थका लेश भी उपयोग नहीं लेते, पैसा और स्त्रीसे हरदम परहेज करते हैं, और कहीं एक जगह पर डेरा बांधकर नहीं रहते, किसी भी जीवकी हिंसान हो इस वास्ते स्वयं रसोइ भी नहीं बनाते, भिक्षाद्यत्तिसे ऐसा भोजन लेते हैं कि जिसमें उनका निमित्त न हो, ऐसे गुरुको गुरुबुद्धिसे माननेवाला त्यागके अनुमोदनसे अपना भला कर सकते हैं न कि भोगीओंका उपासक, ऐसे विचारोंसे त्यागी गुरुओंकी सेवा करनी चाहिये, ऐसे ही दयामय धर्मका परीक्षा पूर्वक स्वीकार करना चाहिये, द्यामय जैन धर्म ही है, अन्य धर्मोंमें कितनेक कुरवानी द्वारा महाहिसाका करना इसे धर्म कहते हैं, तो कितनेक यझसे हिंसक कार्य करनेकों धर्ममानते हैं, ऐसे हिंसात्मक धर्मोंको छोडकर दय।मय जेन धर्मका स्वीकार करना चाहिये कि जिससे यह आत्मा जन्म मरणके चक्रसे छुट जावे, देवगुरू धर्मका स्वरूप वैदिक संप्रदाय वालोमें कैसा बिगडा हुआ है और उनके धर्मशास्त्र किस तरहके कल्पित विचारोंसे भरे पडे हैं, इस विषयका स्वरूप उनके ही शास्रोंके उछेखसे दिखाया जाता है, गौरसे देखो, मगर यह खयाल जरुर करना कि मेरेको जरा भी उनसे या उनके शास्त्रसे द्वेष नहीं है, मात्र उनमेंसे मध्यस्थ प्रकृतिवाले कितनेक पाणी मेरे इस लेखसे कुमार्गको छोड़कर सुमार्गपर आरूढ़ हो या अनुमोदनसे अपने लिये जन्मांतरमें बोधिबीजकी सुलभता करे और तुम्हारे लोगोंकी अद्धा सत्य धर्मपर है इसंसे विशेष उद्दिप्त हो बस यही कारण है, लो अब वख्त बहुत हो गया है इस **ल्रिये आज इस विषयको यहांही रखता हूं,** ज्ञानीदृष्ट भाव होगा तो पुराणोंका उद्देश कलरोज सुनाया जायगा.

.

दितीय--दिवस.

-0:0:0-



सरे दिन सुरीश्वरजी महाराज पतिक्रमणादि अपने धार्मिक कार्योंसे फारिग होकर जिनेश्वर प्रश्चके दर्शन कर अपने आसन पर विराजमान हो चूके हैं, उस वख्त वह भव्य श्रावक हाथ

जोडकर मधुर स्वरसे इच्छामिके पाठसे वन्दन कर सूरीश्वरजी महाराजसे साडेतीन हाथ दूर बैठ गया, और सूरीश्वरजी महा-राजने अपनी मधुरध्वनिसे पुस्तक सुनाना शुरु किया.

आजका बयान पुराणोंके विषयमें शुरु होनेवाला है इस विषयका जिकर तो सूरीश्वरजीने प्रथम दिवसके व्याख्यानमें ही कर दियाथा, सो बात तो इस लेखके पढनेवालें अच्छी तरहसे जानते ही हैं, बस अब उसी करारके मुताबिक सूरीश्वरजी महाराजने फरमाया कि----

अद्धालु आवकवर्ष ! पुराणोंको देखते हैं तो प्रथमही यह मालूम हो जाता है कि ये अल्पज्ञोंके कथन हैं कारण कि परस्पर बडे ही विरोध नजर आते हैं, ज्ञिवपुराणवाले ज्ञिव-पुराणका माहात्म्य गाते हैं तो विष्णुपुराणवाला विष्णुपुराणका, इतनेसे ही ज्ञांत नही होते हैं तो आगे बढ़कर ज्ञिवपुराण; ज्ञिवपुराण के ज्ञिवाय बाकीके तमाम पुराणोंको स्त्रमज्ञास्त्र कहता है, देखो ज्ञिवपुराण माहात्म्य प्रथम अध्यायका प्रथम पत्र--- " पुमानज्ञानतस्तावद् अमतेऽस्मिन् भवे मुने! । यावत् कर्णगतं नास्ति, पुराणं शैवमुत्तमम् ॥ ३६ ॥ किं श्रुतैर्वद्धभिक्शास्तैः, पुराणैश्च अमावहैः ? । शैवं पुराणमेकं हि, म्राक्तिदानेन गर्जाति ॥ ३७ ॥ अश्रमेधसद्दसाणि, वाजपेयशतानि च । कछां शिवपुरणस्य, नाईन्ति खलु षोडशीम् ॥ ३८ ॥ तावत् स मोच्यते पापी, पापक्ठन्म्रुनिसत्तम ! । यावच्छिवपुराणं हि, न शृणोति सुभक्तितः ॥ ४० ॥ गंगाद्याः पुण्यनद्यश्च, सप्तपुर्येा गया तथा । एतच्छिवपुराणस्य, समतां यान्ति न क्वचित् ॥ ४१ ॥ वेदेतिहासशास्त्रेषु, परं श्रेयस्करं महत् । श्रेवं पुराणं विक्रेयं, सर्वथा हि म्रुम्नक्षुभिः ॥ ४९ ॥ "

देखिये, ज्ञिवपुराणकी कितनी तारिफ की है %, अगर आद्योपांत ज्ञिवपुराणका मनन ध्यानपूर्वक मध्यस्थ भावसे किया जाय तो साफ माऌम हो जायगा कि इसमें ऐसी तारीफ को कोई बात नहीं है, देखिये शिवपुराण माहात्म्य अध्याय दितीयके दूसरे पत्रमें—देवराज नामका महापापी ष्राह्मणका बयान है, जिसने चारों ही जातिके अनेक मनुष्योंको मार कर उनका धन हर लिया और अपने माता पिता तथा स्त्रीको भी जानसे मार कर उनसे भी धन छीन लिया, अभक्ष्य भक्षण तथा मदिरापान करने लगा, वेक्याके साथ एक पात्रमें भोजन करनेसे भी परहेज नहीं करनाथा, वह पापी देवराज दैवयोगसे मतिष्टानपुरमें गया, वहांपर साधु पुरुषोंकर सहित एक शिवा-लय देखा, उसमें कयाम— मुकाम किया, वहांपर शिवकथा इमेशह सुनता रहा, एक दिन जन्नरदस्त ज्वरने उसे सताया, और वह मर गया, बादमें यमदूत बांध कर यमपुरीमें ले गये, उसी वख्त शिवजी का गण शिवलोकसे यमपुरीमें जाकर उसे छोडाकर शिवपुरीमें ले गये, इस विषयमें नीचे लिखे हुए श्लोक आते हैं, सुनो—

"धन्या शिवपुराणस्य, कथा परमपावनी । यस्याः अवणमात्रेण, पापीयानपि मुक्तिभाग् ॥ ३७॥ सदाशिव महास्थान—परं धाम परंपदं । यदाहुर्वेदबिद्वांसः, सर्वलोकोपरि स्थितम् ॥ ३८ ॥ बाह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः, झूद्रा अन्येऽपि प्राणिनः । हिंसिता धनलोभेन, बहवो येन पापिना ॥ ३९ ॥ मातृपितृबन्धून् हन्ता, वेश्यागामी च मद्यपः । देवराजो द्विजस्तत्र, गत्वा मुक्तोऽभवत् क्षणात् ॥ ४० ॥" इत्यादि अत्यन्त महिमा गाई है, परंतु हमारी समझमें तो यही आता है कि शिवपुराणके सुननेसे घोर पापोंसे छूट कर मुक्तिकी पाप्ति होनी सर्वथा असत्य है, कारण कि जिवपुराण तथा अन्यपुराणोंसे साफ जाहिर हो जाता है कि ज्ञिवजीमें महात्मापनेका लक्षण बिलक्रूल नहीं था, तो फिर निरतिज्ञय सामान्य जीवोंके कर्त्तव्यसे भी पतित कर्त्तव्य करनेवाले ज्ञिवकी कथा श्रवणसे क्या लाभ ?, बस साबित हुआ कि यह व्यर्थ ही महिमाका गान किया गया है.

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ३२ वा तथा ३३ वा देखो, उसमें गणेशकी उत्पात्तिके वारेमें ऐसे लिखा है कि पार्वतीजीने अपने हाथोंके मैळसे पुत्र बनाया, और दरवाजे पर पहेरदारके ठिकाने उसको बिठा कर स्नान करने ऌगी, उसी समय महादेवजी आये और भीतर जाने लगे तब उस द्वारपाल **ल्रडकेने रोका जब महादेवजी गुस्सेमें आकर वलात्कार**से भीतर घूसने लगे, तब उस लडकेने महादेवजीको मारा, बस कह ना ही क्या था, तुरत महेश्वरने अपने गणको हुकम किया कि इससे छडो, माछिकके हुकमको मानकर गण छडने लगा, मगर उस लडकेने उनके भी दत खट्टे किये, वे घबरा-कर भागे, महादेवजीने उसको सतेज करनेको, स्वयं उनका साथ किया और लडाइ शुरु की, मगर क्या ताकाद ? लडकेको हटा सके, सगण महादेवजीका बुरा हाल हो गया, तब ब्रह्मा विष्णु और इंद्र वगैरा देवता महादेवजीकी मददमें उतरें, मगर किसीकी पेश नहीं चली, ये सब देखते ही रहगये और उस लडकेने परिघ मारकर महादेवजीकी कमर तोड डाली, और पांच इ.थ भी तोड डाले, मतलब उस लडकेने सबको हरा दिया, तब विप्णु कहने लगे कि छल किये विगैर यह नहीं मारा जायगा, आखर महादेवजीने उसका शिर त्रिश्रलसे W,

· . • ·

काट डाला, इत्यादि बयान है, इस पूर्वोक्त वयानसे सिद्ध हुआ कि शिवजी अज्ञानी थे, ज्ञानी होते तो स्वयमेव जान लेते कि यह द्वारपाल बलवान है, नाहकमें क्यों मेरे गणका इसके साथ युद्ध करा कर नाश करता हूँ ?, और मैं भी इस के साथ युद्ध करके अपनी कम्मर तथा हाथ तुडवाता हूं ?, और महादेवजीने उस लडकेका शिर काट डाला इससे सिद्ध हुआ कि लडाइमें दूसरेंकी हिंसा भी करते थे, ऐसे अज्ञानी और हिंसककी कथा सुननसे पापीओंका पाप कैसे दूर हो सकता है ?.

तथा शिवपुराण ज्ञानसंहिता १३ वें तथा १४ वें अध्यायमें बयान हे कि महादेवजी कपट करके अपने रूपका गोपन करके पार्वती जहां पर तप कर रही थी वहां पर जटील वृद्धका रूप वना कर गए तव पार्वतीने उसका ऋषि महात्मा समज कर पूजन किया, बाद कपटसें जटीलरूपधारी शिवजीने पार्वतीसें प्रश्न किया, बाद कपटसें जटीलरूपधारी शिवजीने पार्वतीसें प्रश्न किया कि तुं किस प्रयोजनके लिये ऐसी तपश्वर्या करती है, तब सखीके मुखसें उत्तर दिलाया कि महादेवको पति बनानेके खातिर तपस्या करती है, फिर जटीलने कहा कि सखीने यह बात सत्य कही है या हाँसीसे कही है ? ऐसा पार्वतीसे प्रश्न किया-इत्यादि बयान है, अगर महादेवजी महात्मा होते तो कपटसे जटीलका रूप धारके प्रश्न क्यों करते ?, अगर कहा जाय कि उसकी---पार्वतीकी परीक्षा करनेके वास्ते कपटसे जटीलका रूप धारके गये थे, ऐसे कहनेसे तो संपूर्ण अज्ञानी सिद्ध हूए, क्यों कि जो संपूर्ण ज्ञानी होता है सो सबके मनकी बातें अपने स्थान पर

(३५)

बैठा हुआ ही जान लेता है, इस लिये सिद्ध हुआ कि महा-देवजी महात्मा भी नहीं थे और ज्ञानी भी नहीं थे, किंतु धूर्त्त और अल्पज्ञ थे.

शिवपुराण ज्ञान संहिता अध्याय १६-१७ और १८ वें को देखो—

महादेवजी जनेत-जान लेकर पार्वतीको व्याहनके वास्ते चले, उस वस्त अपने शरीरको ऐसा कडूप बनाया कि जिसको देखकर पार्वतीकी माताको महा दुःख हुआ और उसकी ऐसी बुरी हालत हुइ है कि जिसका हदो हिसाब नहीं, इस विषयका पुरा पता इन अध्यायोंको बांचनेवाला या छननेवाला ही लगा सकता है, भला ! ऐसा रूप धारके पार्वतीकी माताको दुःख देनेसे शिवजीके हाथमें क्या आया ?, विना प्रयोजन किसीको दुःख देनेवाला आदमी अज्ञानी तथा महा पातकी गिना जाता है तो क्या ऐसा काम करना महादेवजीको लाजिम था ?.

उसके बाद गिवजीका और पार्वतीका विवाह होने छग। उस वरूत पार्वतीके पाँवके अंगुठेका रूप देखकर ब्रह्माजी ऐसे कामके वज्ञीभूत हुए कि उनका वीर्य वहां ही निकल पडा और उस वीर्यसे अठासी इजार ऋषि पैदा हुए, इस दश्य-नज़ार(को देखकर महादेवजीको कोध उत्पन्न हुआ, इत्यादि बयानके पढनेसे बुद्धिमानोंको हाँसी आये बगैर नहीं रहती

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ४२ वा वांचो-

जिसमें बयान है कि दाख्वनमें शिवजीके भक्त बाह्मण-लोग शिवजीके ध्यानमें परायण रहते थे, एक दिन वे बाह्मण-लोग समिदादि- लंकडी आदि लेने वास्ते वनमें गये थे, पिछेसे उस दारु वनमें जहां ब्राह्मण ऋषियोंकी स्त्रीएं रहती थीं वहां महादेवजी नग्न हो कर हाथमें लिंग पकड करं अति तेजस्वी रूप बना कर कटाक्षसे उन स्त्रीयोंक मनोंको मोहित करते हुए आये, उन स्त्रीयोंमेंसे कोई स्त्री तो कामके वज्ञीभूत होकर शिवजीको आलिंगन करनी हुई, तो कोई हाथ पकडकर हसने लगी, उस समय पर बाह्मण भी वहां आ गये, और उस क्रुचेष्टाको देखकर उन्होंको वडा भाशी कोध चडा और ज्ञाप दिया कि तेरा लिंग टूट कर पृथ्वी पर पडो, उसी वख्त लिंग टूट कर जमीन पर गिर पडा इत्यादि वयान है, वांचो नीचेके श्लोक,—

" दारु नाम वनं श्रेष्ठं, तत्रासच्चषिसत्तमाः । शिवभक्ताः सदा नित्यं, शिवध्यानपरायणाः 11 & 11 त्रिकालं शिवपूजां च, कुर्वन्ति स्म निरन्तरम् । स्तोत्रैर्नानाविधेर्देवं, मन्त्रैर्वा ऋषिसत्तमाः 11 9 11 एवं सेवां प्रकुर्वन्तो, ध्यानमार्गपरायणाः । ते कदाचिद्वने याताः, समिदाहरणाय च 11 6 11 एतस्मिनन्तरे साक्षा-च्छंकरो नीललोहितः । विरूपं च समास्थाय, परीक्षार्थं समागतः 11 9 11 दिगम्बरोऽतितेजस्वी, भूतिभूषणभूषितः । चेष्टां चैव कटाक्षं च, हस्ते लिगं च धारयन् ॥ १० ॥ मनांसि मोहयन् स्त्रीणा-माजगाम हरः स्वयम् । तं दृष्ट्वा ऋषिपत्न्यस्ताः, परं त्रासम्रुपागनाः ॥ ११ ॥

विह्वल्ला विस्मिताश्चेव, समाजग्मुस्तथा पुनः । आलिलिक्रुस्तदा चान्याः, करं घृत्वा तथाऽपराः ॥ १२ ॥ परस्परं तु संहर्षाद्, गतं चैव द्विजन्मनाम् । एतस्मिन्नेव समये, ऋषिवर्याः समागमन् ॥ १३ ॥ विरुद्धं दृत्तकं दृष्ट्वा, दुःखिताः कोधमूर्च्छिताः । तदा ते दुःखसंमाप्ताः, कोऽयं कोऽयं तथाऽब्रुवन् ॥ १३ ॥ यदा च नोक्तवान् किश्चित्, तदा ते परमर्षयः । उच्चस्तं पुरुषं ते वै, विरुद्ध क्रियते त्वया ॥ १५ ॥ तदीयं चैव लिङ्गं च, पततां पृथिवीतले । इत्युक्ते तु तदा तैस्तु, लिङ्गं च पतितं क्षणात् ॥ १६ ॥"

इत्यादि उछेख पढनेसे बुद्धिमानोंको माऌ्रम होजायगा कि ज्ञिवजी कैसे महात्मा थे, और ज्ञिवपुराण के सुननेसे जीवोंका कल्याण हो सकता है या अकल्याण ?.

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ५० वे में बनारसी नगरीका अति महात्म्य लिखा है, उसमेंसे कुछ यहां लिखते हैं,

महादेवजी अपनी औरत पार्वतीजीसे कहते है कि यह वाराणसी मेरा सदा गुप्ततमक्षेत्र है, यह संपूर्ण प्राणीयोंकी मुक्तिका सदा कारण है ७।

२२ वे श्लोकर्से २५ वें श्लोक तक देखो-

पाप रहित हो या पाप सहित जो कर्म बंधनमें प्राप्त हो कैसा भी हो जो इसतीर्थमें पाणोंका त्याग करेगा वह अवश्य मुक्तिका भागी होगा॥ २२॥ खेदज अंडज उद्भिज्ज जरा-युज् क्रमि दंशादि और पक्षी सर्पादि, द्वक्ष गुल्मादि, और मनुष्यादि, इसमेंसे कोइ भी यहां वा अन्यक्षेत्रमें शरार त्याग करे तो वह विना हो तप जपादि किये मुक्तो होता है ॥२३॥ कर्म बंघनमें पडा हुआ देही- जीव यहां- काशीक्षेत्रमें प्राणका त्याग करनेसे मुक्त होजाता है, इसमें ज्ञानकी और ध्यानकी कुछ अपेक्षा नहीं ॥ २४ ॥ न मेरी न स्वजनोंकी यहां अपेक्षाकी जरुरत है जैसा कुछ भी हो किसी प्रकार प्राण त्याग करनेसे अवश्य मोक्ष हो जाती है इस्सें संदेह नहीं ॥ २५ ॥ वांचो श्लोक-

'' अपापश्च सपापो वा, कर्मबंधगतोऽथवा । अत्र चेच मृतंःस्याश्ववै, मोक्षगामो न संजयः ॥ २२ ॥ स्वेदजश्राण्डजो वापि, हुद्भिदोऽथ जरायुजः । मृतो मोक्षमवामोति, अत्रोन्यत्र तथा कचित् ॥ २३ 🗉 कर्मबन्धगतो यो वै, देही मोक्षाय कल्पते । ज्ञानापेक्षा न चात्रवै, ध्यानापेक्षा न कहिंचित् ॥ २४ ः नामापेक्षा न चात्रैव, स्वजनानां तथा पुनः । यथा तथा मृतः स्याचेन्-मोक्षमामोति निश्चितम् ॥ २२ ॥ ३९-४०-और ४१ वा श्लोक पढो-वैक्वंठपति नारायण लक्ष्मी और देवार्षिओं सहित ब्रह्मा वसु और सूर्य ॥३९॥ देवराज इंद्र तथा और भी दूसरे देवता इस स्थानमें मेरा वत धारण कर वें महात्मा मेरी उपासना करते हैं ॥ ४० ॥ ओर भी महायोगी अपना वेस छिपाये, महावत लिये, अनन्य मन होकर मेरी सदा उपासना करते हैं ।। ४१ ।। इन उपरके श्लोक-२२-२३-२४ और २५ वा को कौन बुद्धिमान सत्य मानेगा ?, क्यों कि इन

श्लोकोंमें लिखा हुना है कि विना ही तप जपके किये पापीकी भी मोक्ष यहां मरने मात्रसेंही हो जाती है, तथा डांस मच्छर कीडी मकोडा टक्ष वल्लेडी आदिका भी काशी-क्षेत्रमें माण छुटे तो मुक्ति हो जाती है इस ही अध्यायके २९ सें ४१ श्लोक तकमें मद्दादेवजी अपनेही मुखसे अपनी तारिफ करते हैं कि इस क्षेत्रमें रह कर वैकुंठपति नारायण लक्ष्मी ब्रह्मा सूर्य आदि देवता तथा और भी महायोगी जन अनन्य ध्यान होकर सदा मेरी उपाक्षना करते हैं, इस तरहसे अपने आप अपनी स्तुति करना क्या महात्माको उचित है ?, इस बात पर बुद्धिमान् स्वयं विचार करेंगे.

तथा इसी ५० वे. अध्यायका १५ वा श्लोक दखेो---" तद्दर्शनं हारं विष्णु-ब्रह्मा चापि तथा पुनः ।

कामयन्ति च तीर्थानि, पावनायात्मनस्तथा ॥ १५ ॥ "

बहुत कहनेसे क्या है ?, इस तीर्थके दर्शनकी मैं बिष्णु और ब्रह्माजी अपने पवित्र होनेके निमित्त कामना करते हैं, इस श्लोकके देखने पर साफ जाहिर होता है कि शिवजी विष्णु तथा ब्रह्माजी यह तीनों ही देव अपवित्र थे, जब यह तीनों ही देव अपवित्र हैं तब इनके पुराण सुननेसे तथा इनकी पूजा करनेसे दूसरें पाणी कैसे निर्मल होसकते. हैं ?, तथा कैसे मोक्षको प्राप्त कर सकते हैं ?, इसी ५० वें अध्यायके ४२ वे श्लोकमें लिखा है कि---

"विषयासक्तचित्तोऽपि, त्यक्तधर्मरुचिंनरः । इह क्षेत्रे मृतो यो वै, संसारं न पुनर्विश्वेत् ॥ ४२ ॥ " विषमासक्त चित्तवाले और धर्मरुचिके त्याग करने-वाले मनुष्य भी जो इस क्षेत्रमें मरते हैं वे फिर संसारमें नहीं आते ॥ ४२ ॥

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ५२ वा में गौतम-ऋषिका वर्णन है, जिसमें बहुतसी बेहुदी बातें लिखी हैं.

अध्याय ५३ वे में गौतमऋषिके साथ अन्य ऋषियोंने कपटसे दुष्ट वर्तन किया ऐसा वर्णन है,

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ५७ वे में रामचंद्रजोने शिवजीका आराधन किया ऐसा लिखा है जिसके देखनेसे भी इनकी कपोल कल्पनाका पूर्ण पता मिलता हैं, क्यों कि जब रामचंद्रजी खुद अवतार है तो रावणको जितनेके वास्ते शंकरका आराधन क्यों किया ?.

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ६१ वें में-२२ तथा २३ वा श्लोक देखो—

जहाँ नॄसिंहजी अवतारने जिस तरहसें हिरण्यकव्यपकी मारा है उस विषयका जिकर है—

'' उत्संगे च तथा धृत्वा, नखैश्व हृदयं तदा। विद्रार्थ रुधिरं तस्य, पपौ च गर्नथॅस्तदा ॥ २२॥ अन्त्राणि चापि तस्येव, कण्ठे चैव व्यधारयत्। मारितश्च तदा तेन, पश्यतां हि दिवौकसाम् ॥ २३॥ "

अर्थ-अपनो गोदमें रखकर नाखुनोंसे उसके हदयको विदीर्ण कर उसका-हिरण्यकश्यपका रुधिरका नृसिंहजीने 1 8 1

पान किया, और बडा गर्जारव किया ॥ २२ ॥ उसको आंते निकाल कर कंठमे डाल ली, इस प्रकार देवताओंके देखते देखते भगवान्ने उसे मार डाला ॥ २३ ॥ इत्यादि बर्णन है.

इस उपरके लेखको देखकर बुद्धिमान जरूर विचार करेंगे कि परमात्मा पूर्ण दयाछ होनेसे ऐसे निर्दयपनेका काम कभी नहीं कर सकता, और जो नाखुनोंसे दूसरेके हृदयोंको चीर कर उसका खून पी कर गर्जारव करता है वो परमात्मा कभी भी नहीं हो सकता.

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ६५ तथा ६६ में वर्णन हे कि----

अर्जुन वनमें तपस्या पूर्वक शिवजीका आराधन करते थे, उनके पास दुर्योधनका भेजा हुआ 'मूक' नामा राक्षस सू अरका रूप धारके आने लगा तब अर्जुनने उसकी दूरसे देखकर मनमें विचार किया कि यह कोइ मेरा शत्रु है और मुझे नुकसान करनेको यहां आता है, इसके देखनेसे मेरी संपूर्ण इंद्रियोंमें कछषता प्राप्त होती है, इस वास्ते यह शत्रु मारने योग्य है इसमें संदेह नहीं, और मेरे गुरु व्यासजीने कह भी दिया है, कि जो दुःख देनेवाला है उसको अवश्य मार डालना और शोच-विचार कुछ न करना, इसीके निमित्त मैंने आयुध भी धारण किये हैं ऐसा विचार कर अर्जुनजी बाण चैंडा कर तैय्यार हुए, उसी समय शिवजी भी अपने गण सहित भिल्लका रूप धारण कर अर्जुनकी रक्षा तथा परीक्षा निमित्त वेलडीयांकी कोपीन बांध और केशोंको बांधे शरीरमें श्वेतरेखा किये, धनुष्य बाण धारे और पीठ पर बाणोंकी तरकस धारण किये, उस स्थान पर आये और इसी प्रकार गण भी तैय्यार हो गया, एक ही समय शिवजी और अर्जुनने वाण छोडा, शिव-जीका बाण उस सूअरकी पुच्छमें और अर्जुनजीका वाण उसके मुखमें लगा, शिवजीका वाण पुच्छमें होकर मुखसे निकल गया और पृथ्वीमें प्रवेश कर गया, तथा अर्जुनजीका वाण उसके पुच्छ पर्यंत जाकर उसके नजदीक ही गिर गया और सूअर तो उसी समय मृतक होकर भूमी पर गिर गया, फिर शिवजी भिलके ही रूपमें ऐसे हो रुपवाले अपने गण सहित अर्जुनजीके साथ लडे.

इस जिकरको देखनेसे बुद्धिमानोंके दिलमें अवश्य विचार आयगा कि शिवजी यदि परमात्मा सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है तो फिर उनको भिछ रुप वनानेकी तथा अपने गणोंका भिछरूप बनवाकर जल्दीसे वहां आनेकी क्या जरूरत थी ?, और ऐसे ही उसके पुच्छमें बाण मारने रुप्र यह महा अधर्मका कार्य करनेकी उसे क्या जरूरत थी ?, क्यों कि अपने स्थानमें बैठे हुए ही अपनी शक्तिसे उस राक्ष-सको बुद्धिको ऐसी निर्मेछ कर देते कि वो मूक नामा राक्षस अर्जुनजीका भक्त वन जाता, जिससे शिवजीको ऐसा निर्दय काम नहीं करना पडता, तथा अपनी ज्ञानशक्तिसे अर्जुनकी परीक्षा कर लेते, भिछका रुप खुद धारनेसे तथा गणोंका धरा-**नेसे तथा** अर्जुनकी साथ लढाई करनेसे विशेष फल क्या **निका**ला ^९, इमको तो यही माऌम होता है कि इन पूर्वोक्त काम करनेसे शिवजी न तो परमात्मा महात्मा और सर्वज्ञ थे, और न सर्वशक्तिमान् थे, व्यास ऋषिजोने अर्जुनजीको कहा कि जो कोइ दुःख देनेवाला हो उसको शोच-विचार किये

विगैर मार डालना, ऐसे मारनेके उपदेश करनेवाले व्यासजीको क्या कहना चाहिये १ सो फैसला बुद्धिमान स्वयं कर लेंगे.

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ६९ वे में लिखा है कि-श्रीकृष्णने शिवजीका आराधन करके उनको पसज किया तथा पार्थना करी कि हे शंकर ! इस समय आपकी कृपासे मेरे पास सब कुछ है परंतु दैत्यों पीडित होकर मै आपकी शरणमें आया हूँ इत्यादि वर्णन है. वांचो नीचेके श्लोक—

" आसनैर्विविधेर्ध्यानैः, प्रसन्नः शङ्करस्तदा । उवाच कृष्णं तत्रैव, त्रियतां वरगुत्तगम् ॥ १७ ॥ ततः प्रसन्नमनसा, वासुदेवो खुवाचह । साम्प्रतं सकछं मेऽद्य, प्रभावात्तव शङ्कर ! ॥ १८ ॥ दैत्यैश्व पीडितश्चाहं;-त्वामहं शरणं गतः । पूर्वैश्व सेवितः शम्ध-त्रेह्मणा सेव्यतेऽधुना ॥ १९ ॥" इत्यादि बहुत बयान है.

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ७० वें में---

विष्णुने शिवजीका आरावन कर के पीडा देनेवाले दैत्योंको मारनेके वास्ते शिवजीसे सुदर्शनचक्र लिया, प्रेस लिखा है.

विष्णुने अनेक प्रकारसे शिवजोका पूजन किया, परंतु शिवजी पसन्न नहीं हुए तब विष्णुसहस्र नामसे स्तुति करता हुआ एक एक नामसे कमल चडाने लगे, उस समय ज्ञिवजीने उनकी परीक्षाके लिये जो किया सो सुनिये-उन सहस्र क्रम-

(88)

लौमेंसे महादेवजीने एक कमल हरण कर लिया, मगर शिव-जीकी माया विष्णुने नहीं जानी, जब एक कमल अंतमें खुट गया तब विष्णु भगवान् अपना एक नेत्र उखाड कर चढाने लगे, यह देखके भक्तोंके दुःख हत्ती शिवजी प्रसन्न हुए, और बोले कि मैं पसन्न हूँ, जो इच्छा हो सो माँगो, मेरेको कुछ भी अदेय नहीं है, तब पसन होकर विष्णुजी बोले, हे इंकर ! आप अंतर्यामी हो, हम आपके आगे क्या माँगे ?, हे भगवान ! जगत दैत्योंसे पीडित हो रहा है उनको सुख विधान किजिएे, हे देव ! दैत्योंके मारने योग्य कोई आयुध नहीं है, विना आयुधके वे कैसे मर सकते हैं ? मैं क्या करुं ?, कहाँ जाउँ?, आपकी शरणमें पाप्त हुआ हूँ, ऐसा कह कर असुरोंसे पीडित विष्णु शिवके निमित्त नमस्कार कर शिवजीके सन्मुख उपस्थित हुए, विष्णुके वचन सुनकर शिवजीने उनको सुदर्शनचक्र दिया, इत्यादि वर्णनको देखनेसे बुद्धिमान् यह बखूबी समझ सकता है कि विष्णुकी अंदर परमात्मपना तथा सर्वज्ञाक्तिमान्पना बिलकुल साबित नहीं होता है, कारण कि जो परमात्मा हो सो किसीको मारनेकी इच्छा नहीं करते, और जो सर्व शक्ति-मान् होता है उसको शस्त्रादिककी कुछ जरुरत नहीं होती, और नाही वह किसीके शरणमें जाता है तथापि कृष्णजी गये और सुदर्शनचक्रका प्रार्थना की इससे सर्वशक्तिमान सिद्ध नहीं होते, तैसे ही कमलके चूरानेका पता न लगनसे क्रुष्णजी में संपूर्ण ज्ञान भी साबित नहीं होता तथा ज्ञिव-जीने आराधनसे खुज्ञ होकर दैत्योंको मारनेके वास्ते विष्णुको **स्रु**दर्शनचक्र दिया इससे शिवजीमें भी परमात्मपना सावित नहीं होता है और ज्ञिवजी सर्वज्ञ भी नही थे, अगर होते

तों अपने ज्ञानसे ही विष्णुको जान लेते परीक्षा के निमित्त कमल इरनेकी क्या जरुरत थी?, इन बातोंका विचार बुद्धिमा-नोंको स्वयं कर लेना चाहिये.

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ७४ तथा ७५ वें को देखो—

शिवपूजा पर व्याध-शिकारीका तथा वेधनिधि वेक्यागामी ब्राह्मणका दृष्टांत है, जिसके पढनेसे यह पुराण केवल गप्प-गोलावाला माऌम होता है.

विद्येश्वरसंहिता छट्टे तथा सातर्वे अध्यायमें ब्रह्मा विष्णुका परस्पर युद्ध तथा अग्निसमान तेजस्वी और जिसका आदि अंत विष्णु और ब्रह्माजीने भी नहीं पाया ऐसा लिंग प्रगट हुआ, इत्यादि वर्णनके वांचनेसे तीनों ही देवोंकी लीला मालूम पडेगी, तथा उनके शास्त्र कैसे विभत्स शब्दोंका खजाना है सो भी मालूम हो जायगा.

ज्ञिवपुराण सनत्कुमारसंहिता अध्याय १३ वें के पत्र १४२ में बिभीषणको महादेवजी कहते हैं—-

'' तपसा मनसा चैव, दानेनैव तु यत् सदा। अभ्यासेनैव तत्त्वज्ञै-प्रंतैयोंगपरायणैः ॥ ३१॥ तत्सर्व लभते पाज्ञो, मम लिङ्गार्चने रतः। अहं कत्ती च हत्ती च, स्तष्ठा चापि युगे युगे ॥ ३२॥ प्रभवः सर्वभूतानां, महात्मा नात्र संज्ञयः। अहं ब्रह्मा च विष्णुश्र, सौमश्चाहं महाम्रुने ! ॥ ३३॥ यत् किञ्चिद् दृृ्श्यते लोके, सर्वश्चाहं बिभीषण !। कामश्चैवाथ वायुश्च, नानाऋषय एव च ॥ ३४॥ " भावार्थ-तपसे मानसे दानसे अभ्याससे व्रतयोगमें परायण तत्त्वको जाननेवाले महात्मा जो फल प्राप्त करते हैं ॥ ३१ ॥ वह सब फल मेरे लिंगकी पूजा करनेसे प्राप्त होता है, मैंही युग युगमें सृष्टिका कर्त्ता हत्ता हूं ॥ ३२ ॥ निस्संदेह युजहीसे सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, हे महायुने ! मैं ही ब्रह्मा विष्णु और सोम--महादेव हूं ॥ ३२ ॥ हे विभीषण ! जो कुछ लोकमें दिखता है वह सब कुछ मैंही हूं ॥ ३४ ॥

इस उपर लिखे हुए वर्णनको तुच्छ बुद्धिवाले लोक भल्ले ही सत्य मानें परंतु बुद्धिमान् लोक तो इन बातोंको स्वममें भी सत्य नहीं मानेंगे, कारण कि तपस्या करनेसे दान देनेसे वत पालनेसे तथा योगाभ्यासमें परायण होनेसे जो फल होता है वो शिवलिंगकी पूजा करनेसे होवे तब तपस्था वगैरह ग्रुभ कृत्य करनेकी जरुर हो क्या रहेगी?, और कुछ भी नहीं और लिंगपूजामें इतना क्या माहात्म्य आगया कि जिससे सारा सभ्य समाज परहेज करता है; तथा मैही ब्रह्मा हूं मै ही विष्णु हूं और जो कुछ लोकमें दिखता है वह सब कुछ मे ही हूं इत्यादि लेखको भी बुद्धिमान् लोग असत्य ही मानेंगे, कारण कि शिवपुराण सनत्कुमारसंहिता अध्याय आठवे में लिखा है सो देखो-

ऋषि बोले, शिवजीको किस प्रकार प्रसन्न किया जा सकता है ? सो कहो हमारे छननेकी इच्छा है ॥ १ ॥ तब ब्रह्माजी बोले, हे ब्राह्मणो ! विष्णुंने महादेवको प्रसन्न करनेके लिये एक कोड छासट हजार वर्षतक इग्रूपाणी महेश्वरका आरह्यधन किया तव शिवजीने प्रसन्न होकर अनेक वर दिये

11.२ ।। युद्धके जितने हारे महाचकधारी बल्ली और मेरी तुख्य बल्ल्वान तुम होवो और मेरी भक्ति तुमको अधिक होगी और सामवेदसे तुम गाये जाओगे ॥ ४ ॥ उन्ही जिवके प्रसा-दसे परमतेजस्वी विष्णुजी अजेय और बली होकर सब पृथ्वीकी रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥ विरुपाक्ष कमल लोचन महेख-रको बिष्णुने अनेक प्रकारकी श्रेष्ठ पूजा स्तुति और ध्यान धारणादिसे प्रसन्न किया ॥ ६ ॥ झूळपाणी हिरण्यमय महादे-वका ब्रह्माजीने महापूजन ध्यान किया था इससे प्रसन्न होकर शिवजीने चतुर्मुख ब्रह्माको अपने अंगसे उत्पन्न हुए रुद्रके द्वारा संहत्ती किया ॥ ७ ॥ वही युग युगमें दाता हत्ती रक्षा करनेवाले ' और संहार करनेहारे हैं ॥ ८ ॥ पितामहत्व देवता और असुरोंका ब्रह्माधिपत्य-वेदाधिपत्य परम अध्ययन अनागत अतीत वर्त्तमान जो कुछ संसारमें हैं, संपूर्ण लोकोमें चराचरत्व ॥ ९ ॥ षडंग सहित सब वेद परिभाषा योग है, बाह्मणो ! शिवके प्रसादसे निष्कालत्व और दिव्य ब्रह्मलोक मैने पाया है॥ १०॥

इस लेखसे सिद्ध होगया कि विष्णुने महादेब-जीको अपनेसे वडा और समर्थ जानकर उनकी आरा-धना करके उनसे वरकी पाप्ति करी, अव विचार करो कि जब महादेवजी खुद ही विष्णु तथा ब्रह्मा है तो फिर वर प्रदान क्या अपने आपको ही दिया १, तथा महादेवजी कहते है जो इछ लोकमें दिखता है वह इख सब मैही हुं, अगर यह कथन सत्य होवे तवतो गौ बकरा आदि जानवरोंको काटनेवाले कर्साई और कटनेवाले जानवर, मच्छीमार, धाड मारनेवाले धाडुती लोक आदि तथा कितनेक मार पडनेसे रोते हैं ·

और द्दाय द्दाय पुकारतें हैं वे सब देखनेमें आतें हैं, वास्ते उन सबकों महादेव ही समझना चाहिये, वाह रे ! वाह ! ! पुराणके छिखने वाले तुने तो महादेवकी स्तुति क्या करी ?, महादेवकी बूरी दज्ञा लिख मारी, ऐसी गप्य बातें जिन पुराणोंमें लिखी हुई है उन पुराणोंको सुननेसे लोकोंका कल्याण कैसे होसकता है ?, इस बातका बुद्धिमान लोक स्वयं विचार करेंगे.

तथा महादेवजी कहते हैं-निस्संदेह मुझहीसे सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, यह बात भी सत्य मानने लायक बिलकुल नहीं है, अगर तुम्हारे खयालसे सत्य मानी जावे तब तो महादेवजी महाजुल्मी गिने जायेंगे, क्यों कि इस दुनियांमें हत्या गर्भपात और चोरी आदि करने तथा करानेवाले अनेक जीव मौजुद हैं, वो सब अत्याचारी प्राणी महादेवजीसे ही उत्पन्न होनेसे उन लोकोंके किये हुए जुल्म भी महादेवजीसे ही उत्पन्न होनेसे पाबित हुए, अगर महादेवजी सर्वको उत्पन्न करतें है तो वेद-शास्त्र पुराण स्मृति आदि शास्त्रोंकी निंदा करनेवालोंको तथा गौ मांसादि भक्षण करनेवाले महाजुल्मो यवनोंको क्यों उत्पन्न किया ?.

शिवपुराण वायुसंहिता अध्याय १७ वेंसे लेकर २० वें तकमें महादेवजीने वीरभद्रादिकोंको भेज कर दक्षके यज्ञका विध्वंस करवाया और जो दिव्य अन्न वगैरह तथा अनेक मकारके मांस आदि पदार्थ वहां रक्खेंथे इन सबको वीरभद्रके अनुचर खाने और फिंकने लगे, तब विष्णु वगैरह देवता यक्षके पक्षमें होकर वीरभद्रादिसे युद्ध करने लगे, परंतु वीरभ द्रादिने विष्णु आदि देवोंका बुरा हाल किया, इत्यादि लेलके पढनेसे साफ माऌम हो जाता है कि विष्णु ब्रह्मा और महम्देव ये तीनों देव अलग अलग हैं, तथा महादेवजीका अनुचर वीरभद विष्णु आदि देवसे प्रवल है और विष्णु आदि देव निर्वल है, क्या यह शिवजीके महात्मापनेके लिये उडाइ हुई गप्प नहीं हैं ?, ऐसे गप्पगोले जिन शास्त्रोंमें चलाये गये हैं उन शास्त्रोंको माननेवालका ख़ैर-भला हो ऐसा कौन अकलमंद मान सकता है ?, तथा यज्ञमें रक्से हुए मांसके जिकरसे यज्ञोंमें अनेक जीवोंकी हत्या की जाती थी यह भी सिद्ध हुआ, और महादवजी तथा इनके अनुचर वीरभदादि बढे कोधी और मांसादि भक्षण करनेवाले थे, ऐसे देवोंके, कल्पित कथानकोंसे भरे हुए पुराणोंके सुननेसे जीवोंका कल्याण केसे हो सकता है?.

शिवपुराण सनत्कुमारसंहिता अध्याय तेरहवें में महादेवजी बिभीषणको कहते है कि मै ही ब्रह्मा विष्णु और महेश हूं, अब विचार करना चाहिये कि उपर के पाठमें तो महादेवजी ऋष्णजीको वरदान माँगनेकी प्रेरणा करते हैं और इधर—सनत्कुमारके तेरहवें अध्यायमें ब्रह्मा विष्णु और महेश मैं ही हूं ऐसा कहते हैं, अब इन परस्पर विरुद्ध दोनों पाठोंमेंसे किसको सचा कहना और किसको असत्य कहना ^१ सो बात **बु**द्धिमानोंको विचारनेकी है.

शिवपुराण धर्मसंहिता अध्याय तीसरेमें उल्लेख किया है कि—तारकाक्ष विद्युन्माली और कमलाक्ष इन दैत्योंने बडी भारी तपश्चर्या की, जिससे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने उनकों वर माँगनेको कहा तब उनोने हाथ जोडकर कहा कि हे भगवन् ! हम पराक्रमवाळोंका ऐसा स्थान कोई नहीं है जी शतुओंसे अधृष्य हो और जहां हम सुखसे निवास कर सकें, अब तारकांक्षने कहा जो देवताओंसे अभेद्य हो ऐसा विश्वकर्मा इमारे वास्ते सुवर्णका स्थान बनावें, विद्यन्मालीने महाकठीन छोह दुर्ग की और कमछाक्षने चाँदीके दुर्गकी मार्थना की, इसके बाद वे पराक्रमी दैत्य फिर कहने लगे, हे देव ! हॅम दिव्यलोकमें ही अपने स्थानकी ईच्छा करतें हैं अन्यत्र नहीं, तब ब्रह्माजीने विश्वकर्मांसे कह कर उनके वास्ते तीन पुर बना दिये, और उन तीनों पुरोंमें दैत्यलोक रहने लगे, तथा सक्नुहुंब देवतादिकोंका उन दैत्योंने बुरा हाल किया तब देवता लोक ज्ञिवजीके शरण गये और स्तुति करी, आखर शिवजीने उन तीनों नगरोंको स्त्रीओं तथा वालग्चां सहित भस्म कर दिया, इस वर्णनसे ज्ञिवजीमें अधर्म तथा निर्दयता सिद्ध होती है, क्यों कि सामान्य रीतिसें जरा भी धर्मको समजता हो उससे भी ऐसा कार्य नही हो सकता है,

अगर कहा जाय कि उन दैत्योंने देवता आदिको दुःख दिया इस वास्ते वाल वचां और स्त्रीयों सहित उनके नगरोंको जला दिया, तो यह भी बात युक्ति युक्त नहीं है, कारण कि सर्वशक्ति-वाले शिवजीको देत्योंकी बुद्धिको सुधार देना चाहिये था,अगर ऐसा करनेमें जिव असमर्थ था और उसको इस अयुक्त कर्मको जहरी करना ही था तो विचारी स्त्रीयोंको तथा निर्दीष वचोंको तो बचा लेना था अगर कहा जावे कि सर्पके बचे भी सर्प हो ते हैं इनको वचाकर क्या करनाथा तो फिर ऐसेको महादे∙ वजीने उत्पन्न ही क्यों किये ?, तथा राजालोक भी इन्साफसे जो गुनाह करतें हैं उनको ही सजा-शिक्षा देते हैं अन्यको नहीं, अतः महादेवजीका बालग्र्चा सहित त्रिप्ररका जलाना नितांत अन्याय है, और बसाजीने उन दैत्योंको वरदान दिया उस वरूत क्यों नहीं विचार किया कि मै इन दैत्योंको ऐसा वरदान देता हूं, मगर ये दैत्य मेरे इस दिये हुए वरदानसे बडे जबरदस्त होकर देवतादिकोंको बडी ही तकलीफ देंगे, और फिर पीडित हुए देवता महादेवजीसे पूकार करेंगे तब शिवजी बालबचां सहित त्रिपुरको जला देंगे इस महापापका भागी मैभी होउंगा, वास्ते ब्रह्माजी भी अल्पन्न सिद्ध हुए, ऐसे अल्पज्ञ और अन्याय करनेवालोंकी कथा सुननेसे कल्याण कैसे हो सकता है ^१. और ऐसे देवोंकी पूजा और स्तुति धर्मके लेशको भी उत्पन्न नहीं कर सकती ऐसा कोइ कहे तो इसमें द्वेषोक्ति क्या है ?.

ज्ञिवपुराण धर्मसंहिता अध्याय ४-५ और ६ वें में देखो---

उसमें अंधकदैत्यकी उत्पत्ति ऐसे लिखी है कि मंदर-पर्वत पर-बैठे हुए अत्यंत पराकमी शिवके नेत्रोंको प्रेमवज्ञ पार्वतीने बंद किया, तब इनके नेत्र मूँदते ही अंधकार छवाया, इनके हाथके स्पर्शसे पार्वतीकें हाथसे मदका जल स्खलित होने लगा, और शिवके ढके हुए नेत्रोंकी अग्निसे तप्त हो बहुत जल निकलने लगा, और वो ही जल कराग्र स्थानमें गर्भरूप हो गया, जो गर्भ गणेशको भी क्षयदायक हुआ, कोधर्मे तत्पर और शत्रुका नाश था दूसरा विरुप जटिल दाढों मूछोंसे युक्त ऋष्ण वर्ण बूरी सूरत रोमोंसे युक्त गाते हँसते और रोते जीभ काढते, तथा घनघोर शब्द करते हुए उत्पन्न हुआ, बस-अङ्गत दर्शनके उत्पत्र होते ही शिवने हंस कर पार्वतीसे कहा, नेक्व मींच कर इस कमकी करके हे भार्ये ! तूं मुजसे क्यों अयभीत होती हो ?, तब गौरीने झिवके वचन सुन कर हंस कर नेत्र खोल ।देयें, तब प∗ाश होनेमें अंधकार उत्पन्न होनेके कारण बइ अन्ध नेत्र ही हुआ, इस प्रकारसे उसको देख कर गौरीने शिव-जोसे कहा यह काँन है १ सत्य कहिए, किसने किस निमित्त, इसको उत्पन्न किया है १, किसका पुत्र हैं १, शिवाके वचन सुन कर क्विजीने कहा कि यह अङ्गत कर्मचंड उत्पन्न हुआ है, तुस्सारे नेत्र मूँदनेसे पक्षीन। उत्पन्न होनेके कारण यह उत्पन्न हुआ है, इसका नाम अंधक होगा, सो यथानुरूप मै ही इसका कर्त्ता हूं इत्यादि बहूत टत्तांत है, आखर अंधकका और ज्ञिव-जीका बडा भारी युद्ध हुआ इत्यादि बयान देखनेसे शिक्जी ं बिष्णु तथा ब्रह्माजीकी कर्तृत अच्छी तरहसे माळूम हो जायगी.

शिवपुराण धर्मसंहिता अध्याय ९ वें में वर्णन है कि

श्रीकृष्ण दैत्य और देवताओंका अस्न शस्त्रोंसे युद्ध हुआ, परस्पर एक दूसरोंको मारने लगे तब दैत्य लोक विष्णु भगवान् और देवताओंसे मारे गयें, मरणसें बचे हुए पातालमें पवेग कर गयें, विष्णु उनके पिछे हुए, उस समय विष्णुने अमृतसे उत्प न्न हुई अप्सराओंको देखा, जिनका पूर्णचंद्रमाके समान मुख था और जिससे वे दिव्यछावण्यतासे गार्वित थीं, उनको देख कर काम बाणसे विद्ध हो विष्णुने परमसुख मामा और उन दिव्यस्नीयोंके संग कोडा करने लगे, उनके महावली पराकमी पुत्र हुए जो युद्धमें बडे पंडित और पृथ्वी कंषित करने वाल्रे थे, इसी अवसरमें ब्रह्माने ज्ञिवजीको कहा कि स्वर्गको रक्षाके निमित्त विष्णुजीको लाओ तब शिवजी **बळ**-दकारूप धारके गर्जना करते महाभयंकर बब्द करते हुए उस विवरमें प्रविष्ट हुए, उनके शब्दसे पुरोंके अंतःपुर पढ गये, तब क्रोध कर अप्सराओंसे उत्पन्न हुए हरिके पुत्र संग्राम करनको तैय्यार हुए, उनको रुद्रह्पसें खूर और झूंगोंसे वि-दीर्ण किया, उनके मृत्युको पाप्त होने पर विष्णु शिवकी समीप गयें, तब केशवने शिवजीको दिव्य अस्त और बाणोंसे ताडन किया, शिवजी विष्णुके संपूर्ण अस्रोंका ग्रास कर गये, जब नारायणने जाना कि जगत्पति गौरीश आगयें हैं, तब गंभीर वाणीसे वोले, भगवान ! क्षमा करो, उनके वचन सन कर इंकर बोले तुम क्यों नहीं अपनेको जानते कि तुमही विश्वके कारन हो, तुमको इस विषयमें रति नहीं करनी चाहिये. हमारी आज्ञासे निवृत्त हो यह सुन कर लज्जित हो विष्णुने महेश्वरसे कहा, मेरा यहां चक है मैं उसको शिघ्रतासे **प्रहण**

1. 2

करता हूँ, तब विष्णुसे महादेवजीने कहा चक्र यहां स्थिर रहो, तुम दैत्योंके मुखच्छेदन करो, मैं इससे भी महाघोर चक्र तेरेको कथन करता हूं, यह कह कर शिवजीने दिव्य कालानल चक्रको विष्णुके प्रति दे दिया, घोर दस हजार सूर्यके समान कान्तिमान दुसरे खुदर्शन चक्रको भगवान विष्णु प्राप्त होकर देवताओंसे बोले, पातालमें यौवनवती स्त्री विद्यमान है, उनके साथमें जो क्रिया करतें हैं सो करो, संपूर्ण देवयोनी केशवके वचन खुन कर विष्णुके सहित पातालमें प्रवेशकी ईच्छा करके चली, उसी समय भगवान शिवजी उनकी चेष्टा जान करके यह अप्सराओंको हरण करेंगे, उन आठ योनिओंको शाप देते हुए कि शांत म्रुनि दानव और मेरे अंशसे उत्पन्न हुओंको छोड कर जो इस स्थानमें प्रवेश करेगा वह उसी समय नष्ट हो जायगा, इस मनुष्यके हित करनेवाले घोर शापको सुन कर खुसे तिरस्कृत होकर देवता अपने घरको आगयें,

इत्यादि वर्णनसे साफ सिद्ध हो गया कि विष्णु ब्रह्मादि देव कामदेवके वशीभूत थें, तथा विष्णु पातालमें जाकर उन स्त्रीओंसे भोग भोगने लगे, और पुत्र भी उत्पन्न कियें, तो भी विष्णु उन स्त्रीयोंको छोड कर अपनी इच्छासे नहीं आयें, अंतमें ब्रह्मा-जीने शिवजीको कहा कि तुम स्वर्गकी रक्षाके निमित्त विष्णुको लावो, इस पूर्वोक्त लेखसे बुद्धिमान खुद समझ लेंगे कि विष्णु केसे कामी थें १, और शिवजी बलदकारूप धारण करके महाशब्द करते हुए वहां गए, उनके इन शब्दोंसे पूरेंकि अंतः-पुर पड गए, तथा हरिके पुत्र लडनेको आये, उनको अपने सुरोंसे तथा यृंगोंसे फाड डालें, इत्यादि शिवजीके अविचारित कार्य कहां तक लिखें ?, शिवजीको सर्व शक्तिमान् परमेथर माननेवालोंसे हम पूछतें हैं कि शिवजीका बलदरूप लेकर वहां जाना, भयंकर शब्द करना, मकान तोडना और खुरोंसे शृंगोंसे हरिके पुत्रोंको मारना, इत्यादि अधमकृत्य करनेकी क्या जरुरत थी ?, सर्व शक्तिमान् इन बातोंके विना दूसरे जपायसे विष्णुको सचेत नहीं कर सकता था ?, अगर कहोगे नहीं, तो सर्वशक्तिमत्ता उड जाती है, अगर कहोगे 'हा' तो शक्ति होने पर भी ऐसे अनुचित कार्य करनेसे पूर्ण निर्दि वेकता साबित होती है, क्या ऐसे निर्विवेकी काम करनेवाला परमात्मा हो सकता है ?, कहना ही होगा कि नहीं.

शिवपुराण धर्मसंहिता अध्याय १० वें में शिवजीके बहोत बेहुदे कामोंका वर्णन है, कहां तक लिखें, मांस तकक[ा] भक्षण ऋषियों सहित शिवजी करते थे ऐसा जिकर भी आता है. देखो---

" भुक्ष्यैनीनावकारैश्र, हृद्यैः पुण्यैश्र पानकैः ।

घृतेन दर्धिना चैव, क्षीरेण च तथा फलैः ॥ १७५ ॥

मूळेर्नान।विधेः पुण्ये--मीसैरुचावचेरपि।

स स्नातो येन सहितः, परिवारेण शङ्करः ॥ १७६ ॥ "

शिवपुराण धर्मसंहिताअध्याय १६ वें का श्लोक ८६ वा देखो—

" सुगन्धेश्र सुरामांसैः, कर्पूरागुरुचन्दनैः ।

म्रस्तादियुक्ततोयेन, स्नापयेदीश्वरं सदा ॥ ८६ ॥ ?

मतलय-सगंधयुक्त सुरा मांस कपूर अगर चंदन मोथा जल्लमें डाल कर ईश्वरका सदा यजन-पूजन करे ॥ ८६ ॥ इस उपर लिखे हुए श्लोकसे यह भी सिद्ध हो गया कि महादेवलीके यजनमें सुरा-मंदिरा और मांस भी काम आते थे.

शिवपुराण धर्मसंहिता अध्याय २० वें में लिखा है कि-जो बाह्मणोंको उपानत् और खडाउं देता है वह अश्व पर चंद्र कर सुखसे यमके मार्गकी जाता है ॥ ४ ॥ छत्र दानसे छत्रवालोंके समान चलते हैं, शिविकाका दानसे रथ पर चढ कर सुखसे मार्गमें जाना होता है ॥ ५ ॥ शय्या आसनके पदानसे अवश्य सुखपूर्वक जाना होता है, आराम और छायाके वृक्ष लगानेवालें वृक्षोंकी छायामें 'जातें हैं ॥ ६ ॥ गौदान करनेवाले सब कामनासे संपूर्ण होकर मार्गमें गमन करते हैं ॥ ११ ॥ जो अत्र पानका दान करतें हैं वह तृप्त होकर उस मार्गमें गमन करते हैं, पाद शौच प्रदान करनेसे शीतल मार्गमें जातें हैं ॥ १२ ॥ जो चरणोंमे तेल मलता हैं वह अश्व पृष्ठ पर चढ कर चला जाता है, पाद शौच अभ्यंग दीप अन वासस्थान ॥ १२ ॥ हे व्यासजी ! जिन्होंने इतनी वस्तुओंका दान किया है वे यमराजाके वहां नहीं जातें हैं, सुवर्ण रत्नके दानसे बडे कठोन स्थानोंको तर जाते है ॥ १४ ॥ चाँदी और बैरूके दान करनेसे पाणी यानद्वारा गमन करता है, पृथ्वी दान कहुनेवाळा सब कामनासे समृद्ध होकर जाता है ॥ १५ ॥ इत्यादि और भी अनेक दान करनेसे प्राणी सुखसे यमालयको जातें हैं, वे मजुष्य सदा ही स्वर्गमें अनेक भोगोंको भोगते हैं 11 88 11

इसी अध्यायके बीचके नीचे लिखे हुए श्लोकोंके देखनेसे अपने तथा अपनी संतानके सुखसे निर्वाह करनेके छिए अनेक तरहके दानोंके मनको छुमानेवासे जुद्देफुदे पर्स्टोंका ऐसा वर्णन किया है कि जिसके देखनेसे उनकी स्वार्थ प्रियताका पूरा क्ता मिळता है, देखो—

"सुवर्णश्रृङ्गैः सुविसजितानां, गवां सद्दसं च नरः प्रदाता । त्रामोति पुण्यं दिवि देवलोक-मित्येवमाहुर्मुनिदेवसंग्वाः ॥५६॥ प्रयच्छति यः कपिलां सवत्सां, ज्ञस्यस्य दोहां द्रविणाम्यर्घृमीम् तैस्तैर्गुणैः कामदुघास्य भूत्वा, नरं प्रदातारमुपैति सा मौः ॥५७॥

यावन्ति रोमाणि भवन्ति धेन्वा-स्तावत्फलंलगोर्भते प्रदाता।

षुत्राँश्व पौत्राँश्व कुलं च सर्व मासप्तमं तारयते परत्र ॥ ५८ ॥ सदक्षिणां काञ्चनचारुगृङ्गीं, कांस्योपदीहां द्रविणोत्तरीयास् । धेतुं तिल्लानां ददतो द्विजाय, लोका वसूनां सुलभा भवन्ति ॥ ५९ ॥

स्वकर्म्मभिर्मानवसन्निबद्धं, तीव्रान्धकारे नरके पतन्तम् । महार्णावान्नौरिव वातयुक्ता, दानं गवां तारयते परत्र॥ ६० ॥ यो ब्रह्मदेयां तु ददाति कन्यां, भूमिप्रदानं च करोति विप्रे । ददाति वित्तं विविधं च यश्च, सल्ठोकमामोति पुरन्दरस्य ॥ ६१ ॥

नैवेशिकं सर्वगुणोपपन्नं, यो वै ददाति पुरुषो दिजाय । स्वाध्यायचारित्रगुणान्विताय,तस्यापि लोकान् प्रवदन्ति निर्धान् ॥ ६२ ॥

धूर्यप्रदानेन तथा गवाश्वे-र्लोकानवामोति नरो वस्रनाम् । स्वर्गाय चाप्याहु।ईरण्यदानं, ततो विक्षिष्टं कनकप्रदानम् ॥६३॥

छत्रप्रदानेन गृहं विशिष्ट, यानं तथोपानइसम्पदाने । वस्त्रप्रदानेन फलं सुरूपं, गन्धपदाता सुरभिनेरः स्यात् ॥६४॥ पुष्पोपगाँश्वेव फल्छोपगाँश्व, यः पादपान यच्छति (बै) द्विजाय । सुद्धीसमृद्धं बहुरत्नपूर्णं, लभेत यत्नोपचितं गृहं वै ॥ ६५ ॥ भक्ष्यान्नपानस्य रसस्य दानं, सर्वानवाप्तोति रसान प्रकामम् । प्रतिश्रयाच्छादनसम्प्रदाता, प्राप्तोति तानेव न संझवोज्त्र ॥६६॥ स्रग्दानगन्धान्यनुलेपनानि, स्नानानि माल्यानि च मानवो यः । दद्याद् द्विजेन्द्राय भवेदरोग-स्तथा सुरूपश्च नरेन्द्रकल्पः ॥६७॥ बीजैरग्रून्यं शरणैरुपेतं, दद्याद् गृहं यः पुरुषो दिजाय । पुण्याभिरामं बहुवस्तपूर्णं, लभत्यधिष्ठानपरं सुनीग्न ! ॥ ६८ ॥ सुगन्धचित्रास्तरणोपपन्नं, दद्यान्नरो यः शयनं द्विजाय । रूपान्वितां पुत्रवतीं मनोज्ञां, भार्यामयत्नोपगतां लभेत् सः ॥ ६९ ॥

व्यास उवाच—

यानि यानि तु देयानि, दानानि परिचक्षते । तेभ्यो विशिष्टं किं दानं १, किं तारयति १ तद् वद् ॥७०॥ सनस्कुमार उवाच—

अभयं सर्वसत्त्वेभ्यो, व्यसने चाप्यनुग्रहः । यचाभिल्लषितं दद्यात् , तृषितायोपयाचते ॥ ७१ ॥ दत्तमन्वेति यद्दत्त्वा, तद्दानं श्रेष्ठग्रुच्यते । दत्तं दातारमन्वेति, तच्छ्रिणुष्व महामते ! ॥ ७२ ॥ दिरण्यदानं गौदानं, पृथिवीदानमेव च । म्रतानि वे पवित्राणि, तारयन्त्यतिदुष्कृतिम् ॥ ७३ ॥ दानान्येतानि साधुभ्यो, दत्त्वा ग्रुच्यते पातकात् । यद्यदिष्टतमं लोके, यच्चास्ति दयितं गृहे ॥ ७४ ॥ तत्तद्रुणवते देयं, तदेवाक्षयमिच्छता । प्रियाणि लभते लोके, प्रियदः प्रियकत्तथा ॥ ७५ ॥ "

इत्यादि अनेक स्ठोक दानके स्तुति के भोले लोकोंको छनाकर बाह्मण लोकोने इस लोकमें छुखी रहनेका डपाय किया है, परंतु परलोकमें ''बच्चे सहित स्त्री जो बाह्मणको देता है उसको जलदी स्त्री मिल जाती है, इत्यादि गपोडे उपर के स्र्ठोकोमें जो हांके हैं, ऐसे गपोडे हांकनेसे " हमारी क्या गति होगी १ इस बातका जराभी ख़याल नहीं किया है.

श्रावक—भगवन ! ऐसे ऐसे आचरण करने वाले जहाँ पर देव हैं और ऐसे स्वार्थी बाह्मण गुरु हैं कि भक्तोंको पुत्र सहित स्ती देनेकाभी उपदेश देते हैं, और सोना चाँदी गौ भेंस घोडा गाडी आदि दुनियांके सब असवाब बाह्मणको देनेसे महान लाभ वर्णन करते हैं, और जिस धर्मके मानने-वाले अपने देवताओंको भोगीयोंसेभी बढकर भोग भोगनेमें आसक्त (शास्त्रोंसे) जानते हैं तथा मांसाहारो छुनते हैं, फिर भी उनकी बुद्धि उन पवित्र बातों तक क्यों नहीं पहुंचती ? और विचार कर सत्यमार्गकी तरफ रजु क्यों नहीं होती ?

सूरीश्वरजी—महानुभाव ! तुम्हारा यह पश्च ठीक है, मगर यह बनाव गोपाल और स्वर्णकार जैसा है, जिससे वे लोग ऐसे व्युद्ग्राहित हुए हुए हैं कि अपने खोटे पत को भी दुनियांके सब मतौंसे श्रेष्ठ मानते हैं, जिन लोगोंके पुण्यो- दयसै मिथ्यात्वकी स्थितिका परिपाक हुआ है वे कितनेक मान भी जाते हैं बस इस छिये यह प्रयत्त है:

श्रावक—साहिब ! गोपाल और उसके दोस्त सुनारका क्या बनाव बना था १ और यहाँ पर यह दृष्टांत किस तरह संबंध रस्नताई १ सो क्रपया फरमाइये.

सूरीश्वरजी-भव्यात्मन् ! सुनिये.

एक नगरमें पुरुषोत्तम नामका महा धूर्त्त स्वर्णकार रहता था, रसके पास कोइ देवला नामका गोपाल-अहीर जब शहेरमें आया जाया करता बैठ जाताथा, इस तरह वारंवार उसकी दुकान पर बैठनेसे आपसमें बडी मैत्री हो गई, एक दिन देव-लाने सुनारसे कहा कि वर्षोंकी महिनतसे मैने कितनीक रकम जोडी हुइ है, उसकी रक्षामें मुझे बडी फिकर रहती है, इमारें लोगोंका ज्यादा तर बहार सीममें ही फिरना होता है, जिससे दिछ इरदम घर्षोही रहा करता है कि हाय ! कोई निकाल कर है न जाय, इस लिये कल रात्रि को मेरे दिलमें ख़याल आया कि इस रकमका एक सोनेका निकर-नकुर कडा बनावे. जी हाथमें पंडा रहे, जिससे हरदम साथ रहेगा और चिन्ता मिट जायगी, इस लिये तुम मेरे दोस्त हो, रकम मैं तुमको देता हूँ, तुमने कडा बना देना, छनार वोल्ला भाई ! दूसरेके वहाँ जाकरू यह काम करा लेना में नहीं करता, उसने कारण **षूछा, जवावमें** कारण यही कहा कि इस इलाकेके तमाम लोक मेरे लखु हैं, कोई कारीगरीमें तुक्स कहेगा तो कोई पीत्तऌ हीं बत्तावेगा, इस लिये में मना ही करता हूँ, तब मोपालने

(\$?)

कहा कि मित्रवर ! इस विषयकी फिकर मत करो, काम शरू करो, मैं ऐसा कचा नहीं जो छोगोंके कहनेसे दोस्ती तोड हूं, वस बात ही क्या थी !, सुनारने समान आकार के दो कडे एक सोनेका और एक पीत्तछका- तैयार किये, अब एक दिन उसकी सचा कडा पहीना कर कहा शहेरमें और शहेरके बहार आसपास स्थानोंमें फिरना और मेरा नाम छिये वगैर कहना कि यह कडा कैसा है ? गोपाछने एसा ही किया, जहां कहीं उसने दिखाया स्वर्ण परिक्षकोंने उस कडे को सचा ही कहा, दूसरे दिन उस धूर्त सोनारने गोपाछको पीत्तछका कडा पहि-नाया और कहा कि कछ फिराथा वहां ही आज भी फिर कर-मैं (पुरुषोत्तम) ने यह बनाया है ऐसा कह कर पूछना कि यह सचा है कि झुंडा ?

सोनारके कहने मूजव आहीरने किया, जहां गया वहाँ झुठा है एसा उत्तर मिला मगर व्युद्ग्राहित-ठगाकर इठ पक-ढने वाले गोपालने सबको झूठा माना और मनमें विचारने लगा अहो ! इस वस्तीमें कितना द्वेष है, उसके नाम लेनेसे कलजो सचाथा वोभी आज झुठा होगया, हेषका भी कुछ सुमार है, ? ऐसे सोचता हुआ मित्रके पास आया, और कहने लगाकि मित्र । तुमने ग्रुझसे प्रथम सूचना की सो ठीक किया, नहीं तो यहां के हराम खोर लोग अपनी दोस्तीको तुडा देते ऐसा कह कर पीत्तलकाही कडा पहिन कर घरपर गया और सब रकम सोनारा पचा गया, बस ऐसाही हाल लोगोंका मिथ्याधर्म पोषकोंने किया है, अपने ग्रंथोंमें युक्ति प्रयुक्तिसे भरषुर शुद्ध देव गुरु और धर्मके स्वरुपका दर्शक और मुक्तिर्मके प्रापक

जैन दर्शनकी ऐसी निंदा छिखी हुइ है किजिसको सुन कर भद्रिक छोक ऐसा मानने लगते हैं कि जैन दर्शन तो हमोर में जुक्स दिखळानेके ळिये ही है, हमारा द्वेषी है, वस ऐसी वासनासे अव्वलतो वे लोग संबंध ही कम रखेंत हैं. आगर कमी संबंध होगया और किसी समझदार जैतने मत विषयमें कहा तो मानने लगतें हैं कि ये द्वेषसे कहते हैं, अथवा पौरा-णिक कल्पनासे दैत्योंको छुक्राचार्यके कथनसे विरूद्ध करनेके लिये यह मत चलाया गया जिससे आदरणीय नहीं है, इत्यादि मन गढंत विचारसे '' ऐसा मानने लगते हैं कि वेदके हिंसा कर्मका विचार '' यूपं क्रत्वा '' और श्राद्धे पितर कैसे तृप्त हो सकते है, इत्यादि वन्तें हमारे पुराणमें दैत्योंको दुर्गतिमें **लेजानेके लिये दिखाइ है, अतः हम नहीं** मॉनेंगे मगर ऐसा नहीं मानते हैं कि ब्राह्मण लोगोंने अपने हिंसक कर्म तथा उदर पोषण निमित्त चलाये हुए श्राद्ध, दान <mark>लेनेकी बुद्धिसे क</mark>र्ल्पे **हुए** यज्ञ**ेनोंकी दलीलोंसे झूंठे सिद्ध होते हैं इस लिये " अपने ढकों**स ले चलानेके लिये शुकाचा• र्यादि की यह इंटी कल्पना की है जैसे वह गोपाल, लोगोंको द्वेषी समझता रहा मगर सोनारको धूर्त्ततको नहीं समझा, वस **ऐसाही हा**ल भद्रिक लोकोंका हो रहा है, जैसे गोपाल प्रथम सोनीके हाथेंमें आया उसी वख्त उसने उस्के कानमें अपनी फ्रुंक मारली पिछेसे लोगोंने चाहे इतना कहा किसीकी नहीं मानी ऐसे ही मिथ्यामत पोषक प्रथमसे ही अपने अनुयायो-योंके कानमें फ़ुंक ऐसी खूबीसें मारते हैं कि जनमभर विचारे सचे धर्मको हाँसिल ही न कर सकें, हाँ किसीका पूर्ण पुण्योदय होवे और समझ जायतो बात जुटी है, नहीं तो वहां तक

कहते हैं कि अगर सामने हाथी आता हो तो हाथीके नीचे आकर मर जाना अच्छा व्यम्बर अपने बचावके लिये भी जैन मन्दिरमें जाना नहीं अच्छा, मैं **ऐ**सा कहना नहीं चाहता कि लोग एकदम अपने धर्मकी छोड कर जैन बन जावे अथवा जैन धर्मको बगैरे विचार उत्तम कह देवें मेरा तो इतनाही कहना है कि दूसरें लोग अपने शास्तोंकी बाबतोंसे तथा जैन शास्त्रोंकी बाबतोंसे पूर्ण बाकिफ होकर समतारुप त्राजुसे तोल कर धर्मको स्वीकारें और पाये हुए इस मनुष्य जन्मको सफल करें क्योंकि जन्मकी सफलता एशो अशरतमें नहीं है किन्तु सच्चे धर्मकी हाँसिल करने में है असल धर्मांजीवनको जिसने हांसिल किया वह जन्म मरणकी धारासे बचकर अनंत सुखका स्थान सुक्ति पदको प्राप्त करता है. और विषयी जन नरकोमें रूछता है, रसलिये मनुष्य मात्रका फर्ज हौकि धार्मिक जीवन बनावे, मगर गोपालकी तरह अपने ही जासकारों पर विश्वासमें फंसकर अन्य शासकारोंकी तरफ द्दि भी न देवे और देवे तो व्युद् प्राहित होकर देवे और मेरा सोही सचा इस सिद्धांत को पकड कर मिथ्या धर्मसे अपने जीवन को धार्मिक जीवन मान लेवें तो ठीक नहीं, लो अब टाइम बहुत हो गया है इस लिये इस विषयको यहां ही रखते हैं.

.

(\$8)

तृतीय-दिवस.

सरे दिन जगदुपकारी सत्यधर्म प्ररूपक मन वचन और कायामें एकसी स्थितिवाळे सौजन्यज्ञाली सूरीश्वरजी अपने प्रातःकालीन सर्वकृत्योंसे निफराम होकर पट्ट पर विराजित हुए हैं इतनेमें



वह भाग्यशाली आवक कि जिसको सरीश्वरजी महाराजके कोमल और पाधुर्य धर्मप्रद वचन सुननेका सौभाग्य माप्त हुआ है आ चढ़ा, महाराजश्री तथा आपके समस्त परिवारको वंदन करके बैठ गया और आगे के विषयको सुननेकी जिज्ञा-सा की, परमदयालु सूरीश्वरजी महाराजने फरमाया कि-विवपुराण धर्मसंहिता अध्याय २२ श्लोक ५० वें से देखो----'' सम्बोधयन्ति लोकं तं, तस्मात् पूज्यतमो गुरुः । सर्वेषां चैव पात्राणां, श्रेष्ठः पुराणवित्तमः ॥ ५० ॥ पतनात्रायते यरमात्, तरमात्पात्रमुदाहृतम् । धनं धान्यं दिरण्यं च, वासांसि विविधानि च ॥ ५१ ॥ ये ददन्ति सुपात्राय, ते यान्ति परमां गतिम्। गां रथं महिषीं चैव, गजानश्चाँश्व शोभनान् । ॥ ५२ ॥ यः प्रयच्छति मुख्याय, तस्य पुण्यफलं शृणु । अक्षयं सर्वकामीयं, सोऽश्वमेधफलं लभेत्; ॥ ५३ ॥ महीं ददाति यस्तस्मे, कृष्टां फलवतीं शुभाम् । स तार्यति वै वंशान दश पूर्वान्; दश परान् ॥ ५४ ॥"

इस उपरके लेखको देखकर बुद्धिमान लोग विचार करेंगे कि जो बाह्मण गा भेंस हाथी घोडा रनखें ऐसे लोभी बाह्मणको श्रेष्ठबाह्मण कैसे कह सकते हैं ?, क्यों कि लोभ पापका मूल है उस मूलको पोषण करनेवाले शख्सको दान देनेवाला अक्षय फलको कैसे पाप्त कर सकता है ?, ये श्लोक फक्त भद्रिक लोकोंको भ्रममें डाल कर उनके जुपीन माल मिलकत आदि पदार्थोंको खोस लेनेके लिये बनाये गये हैं ऐसा प्रतीत होता है.

हीवपुराण धर्मसंहिता अध्याय २२ वे के अंतमे लिखा है कि—

" न यज्ञैस्तुष्टिमायान्ति, देवाः प्रेक्षणकैरपि ॥ ५५ ॥ बलिभिः पुष्पपूजाभि-र्यथा पुस्तकवाचनैः । विष्णोरायतने यस्तु, कारयेद्धर्मपुस्तकम् ॥ ५६ ॥ शम्भोरर्कस्य कस्यापि, शृणु तस्यापि यत्फलम् । राजसूयाश्वमेधाभ्यां, फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ५७ ॥ इतिहासपुराणानां, पुण्यं पुस्तकवाचनम् । 11.1

सर्वान कामानवाप्येह, सूर्यलोकं भिनत्ति सः ॥ ५८ ॥ सूर्यलोकं च भित्त्वा स, वद्यलोकं च गच्छति । स्थित्वा कल्पज्ञतान्यत्र, राजा भवति भूतले ॥ ५९ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य, यत्फलं समुदाहृतम् । तत्फलं समवामोति, देवाग्ने यो जपं पठेत् ॥ ६० ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन, कार्यं पुस्तकवाचनम् । इतिहासपुराणानां, ज्ञम्भोरायतने ठ्युभे ॥ ६१ ॥ नान्यत् प्रीतिकरं ज्ञंभो-स्तथान्येषां दिवौकसाम् ॥ "

भावार्थ-देवता नाटकवत् यज्ञोंसे सन्तुष्ट नहीं होते हैं ॥ ५५ ॥ जैसे उपहार पूष्प पूजा और पुस्तक वांचनेसे पसब होते हैं, विष्णुके स्थानमें जो पुराणादिककी कथा कराता है।। ९६॥ अथवा शिवालयमें पुस्तक बंचवाता है उसके पुण्यका फल सुनो−वो मनुष्य राजसूय और अश्वमेधके फल्रको प्राप्त होता है । ९७ ।। इतिहास पुराणोंकी पुस्तक **वांवनेका पुण्य दायक फल है वो सब कामनाओंको प्राप्त होकर स्**र्यऌोकको भेद करता है ॥ ५८ ।/ स्र्यऌोकको भेद कर वो ब्रह्मलोकको जाता है, सौ कल्पतक वहां रहकर फिर प्रथ्वीमें राजा होता है ॥ ५९ ॥ सहस्र अश्वमेधका जो फल्ल होता है वोही फल महाभारत, अठारह पुराण, विष्णुवर्म, शिवधर्म विषयक जयसंज्ञक ग्रन्थोंके पढनेसे होता है ॥ ६० ॥ इस कारण सब प्रयत्नसे पुराणादिककी कथा कहनी चाहिये, इतिहास पुराणोंको ज्ञित्रजीके सुन्दर मन्दिरमें पढना जचित है ॥ ६१ ॥ इसके समान शिव और अन्य देवताओं की पीति-कारक कोई वस्तु नहीं है ॥

उपरके श्लोकोंमें पुराणादिकोंकी कथा वांचनेसे तथा करानेसे इतना वडा भारी फल लिखा है सो भी इपारी समज मूजिब तो पुराण वांचनेवालोंने स्वार्थका ही पोषण किया है, कारण कि पुराणादिककी कथा वंचावनेसे तथा सुनने सुनानेसे ऐसा बडा भारी फल मिलता है ऐसा सुनके भोले लोग हभारेसे पुराणादिक बंचवावेंगे और सुनेंगे तो इपारा सुस्वसे निर्वाह चलेगा.

दीवपुराण धर्मसंहिता अध्याय २३ वा में एक मनुष्यका वर्णन है कि वह एक पुराण वांचनेवाले के पास धर्म सुनने गया सुन कर उसमें परम श्रद्धा और मक्ति उत्प**क हुई**, उसने वांचक महात्माको पदक्षिणा दे करके एक मासा सुवर्ण वितीर्ण किया, रस पात्र के दानसे विमानमें बैठ कर धर्मराजकी सभामें गया, धर्मराजने पूजन किया और बो शख्स ब्रह्म दको प्राप्त हुआ, फिर धर्मराजने देवर्षि सनत्कुमारसे कहा जो श्रद्धा और भक्तिके साथ वाचककी यानि प्रराण वांचनेबालेकी पूजा करता है उसने ब्रह्मा विष्णु शंकर और मेरा पूजन किया ऐसे जानना 🛛 ४३ है। जो उत्तम अक्ष्य भोजनसे पुराणादि वांचनेवालेको पूजता है तो श्राद्धमें यह करनेसे मैं पंद्रह वर्ष तक पूंजित हो जाता हूं।। ४५ ॥ हे करनेसे दोसौ वर्षतक मेरी तृष्ति हो जाती है ॥ ४६ ॥ पुराणादि वांचनेवालेको भोजन करानेमें केवल मेरी *ही* मीति नहीं होती है परन्तु संपूर्ण देवता और इन्द्रादिकोंकी पीति हो जाती है ॥ ४७ ॥ हे मुने ! कथा कहनेवाला ब्रह्मा विष्णु

महेशका स्वरूप है, उसके प्रसन्न होनेसे देवता प्रसन्न हो जाते हे, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४८ ॥

इस उपरके लेखको पढ कर कौन ऐसा बुद्धिमान है जो पुराणादिकोंके बनानेवालोंको गप्पोडीदास तथा स्वार्था न समझें १ जो स्वयं परमात्माका स्वरूप बनना चाहते हैं.

चिावपुराण धर्मसंहिता अध्याय ४९ में पार्वतीको महा-देवजी कहते हैं----

" ब्रह्मा विष्णुरहं देवि !, बद्धाः स्मः कर्मणा सदा ।

कामकोधादिभिर्दोषे स्तस्मात् सर्वे हानीश्वराः ॥ ७ '' भावार्थ हे देति ! ब्रह्मा विष्णु और मैं सदा कर्मसे इलिप्त हैं, सबमें काम क्रोधादि दोष छगे हैं इस कारण सव अनीश्वर हैं ॥ ७॥

इस उपरके छेखसे सिद्ध हुआ कि ब्रह्मा विष्णु और चित्र ये तीनों ही देव काम कोधादि दोषोंसे युक्त थे तो फिर इन कामी कोधीओंके पूजनेसे जीवोंका कल्याण कैसे हो सकता है ?.

रवायेका ही पोषण किया है, देखो---

" आचार्य ! त्वं महाविष्णु-व्यासरूपो नमोऽस्तु ते । भसन्ने त्वयि विप्रेन्द्र !, पसन्नो मे सदा शिवः ॥ १ ॥ ग्रन्थान्ते विधिवदद्या-द्विद्वद्वचो भूरिदक्षिणाम् । ततो वक्तारमानम्य, सम्पूज्य च यथाविधि ॥ २ ॥

्र भूषणैर्हस्तकर्णानां, वस्त्रैईमादिभिः सुधीः । शिवपूजासमाप्तौ तु, दद्यादेनुं सवत्सकाम् ॥ ३ ॥ श्रुते सिंहं सुवर्णस्य, पल्लमानस्य साऽम्बरम् । आचार्याय सुधीर्दद्या-न्मुक्तिः स्याद् भवबन्धनैः ॥ ४ ॥ विधानसहितं सम्यक्, पुराणं फल्टदं श्रुतम् । तस्माद्विधानयुक्तं तु, पुराणफल्रमुत्तमम् ॥ ५ ॥"

भावार्थ- हे आचार्य ! तुम व्यासरूप और विष्णुरूप हो, तुमको नमस्कार है, हे विप्रेन्द्र ! आपके प्रसन्न होने पर मेरे पर सदा शिव प्रसन्न हो जायँगे ॥ १ ॥ प्रन्थके अंतर्मे विद्वानोंको बडी दक्षिणा देनी चाहिये, फिर वक्ताको प्रणाम कर के अनेक प्रकारसे पूजन कर हाथ और कानोंके भूषण, वस्त्र और सुवर्णसे पूजा करके बुद्धिमान् पूजा समाप्ति के अंतमें वत्स सहित धेनु-गौ प्रदान करें ॥ २-३ ॥ इस पुराणके श्रवणके अंतमें एक सुवर्णका सिंह बनवा कर आचार्यको देवे और वस्त्र भी देवें तो भव वन्धनसे मुक्त जाते हैं ॥ ४ ॥ विधान सहित अच्छी प्रकार पुराण श्रवण करनेसे फलका देने वाला होता है, इस वास्ते विधान सहित श्रवण करना चाहिये ॥५॥

इस उपरके लेखको वांच कर बुद्धिमान लोक तुर्त समझ जायेंगे कि पुराण रचनेवाले बाह्मणोंने स्वार्थ साधनेका ही उद्यम किया है परंतु परलोकमें हमारा क्या हाल होगा १ इस बातका जरा भी रूयाल नहीं किया है, यह जिव पुराणकी किचिन्मात्र पर्यालोचना लिखी है, विशेष जानने की ईच्छा-वालोंने निष्पक्षपात हो कर खुद ज्ञिवपुराण देखना या सुनना, जिससे ज्ञिवजीमें देवत्व-परमात्मत्व था या नहीं १ माऌम हो जायगा.

अगर पुराणोंसे ब्रह्मा विष्णु और महेशका विचार करते.

. •

हैं तो ये देव परमात्मा हैं ऐसा किसी तरह साबित नहीं होता है, देखो—–

पद्मपुराण प्रथम सृष्टिखंड दक्षयज्ञविध्वंस नामक पंचम अध्याय पत्र ११ वे में----

सती नामकी अपनी स्त्रीके मर जानेसे महादेवजी शोका-तुर हुए हुए चिन्ता करते थें कि वो मेरी स्त्री कहां गई १, बाद नारदजीने उस स्त्रीकी खबर शिवजीसे कही, तब शिवजीका चित्त शान्त हुआ-देखो नीचेके स्लोक----

" पत्न्याः शोकेन वै देवो, गङ्गाद्वारे तदा स्थितः । तां सतीं चिन्तमानस्तु, क नु सा मे प्रिया गता ॥ ९१ ॥ तस्य शोकाभिभूतस्य, नारदो भवसत्रिधौ । सा ते सती या देवेश !, भार्याप्राणसमी मृता ॥ ९२ ॥ हिमवदुहिता सा च, मेनागर्भसम्रुद्धवा । जग्राह देइमन्यं सा, वेदवेदार्थवेदिनी ॥ ९३ ॥ श्रुत्वा देवस्तदा ध्यान-मवतीर्णमपश्यत । कृतकृत्यमथात्मानं, कृत्वा देवस्तदा स्थितः ॥ ९४ ॥ सम्प्राप्तयौवना देवी, पुनरेव विवाहिता । एवं हि कथितं भीष्म !, यथा यज्ञो इतः पुरा ॥ ९५ ॥"

भावार्थ स्त्रीके वियोगसे महादेवजी शोकाकुल हुए हुए चिन्ता करनेलगे कि वो मेरी स्त्री कहां गई १, इत्यादि वयानसे सिद्ध हुआ कि महादेवजी स्त्री उपर बडे मोहित थें, इससे अत्यंत काम विकारी सिद्ध हुए, तथा महादेवजी सर्वज्ञ नहीं थे, क्यों कि नारदजीके कहनेसे अपनी स्त्रोका समाचार माऌम किया कि अम्रुकके घरमें पैदा हुई है, जिसमें किसी भी विषयकी अज्ञानता और काम विकार सावित हो वो परमात्मा नहीं कहा जा सकता है.

पद्मपुराण प्रथम सृष्ठिखंड अध्याय ४४ के पत्र १३७ वे में—

पार्वतीने महादेवजीको स्त्रीलंपट जानके वीरकको कहा, देखो नीचेके स्त्रोक—

" साहं तपः करिष्यामि, येन गौरीत्वमाप्नुयाम् । एषः स्त्रीलम्पटो देवो, यातायां मय्यनन्तरम् ॥ ३२ ॥ द्वाररक्षा त्वया कार्या, नित्यं रन्ध्रान्ववेक्षणम् । यथा न काचित् प्रविश्तेत् , योषित्तत्र हरान्तिकम् ॥ ३३ ॥"

मतऌब — गौरीत्व पाप्त करने के छिये मैं तप करूंगी, महादेव स्त्री लम्पट है तो मेरे चले जाने बाद तूंने दरवाजेकी रक्षा करनी और सब छिद्रोंकी तर्फ ध्यान देना कि किसी तरफसे कोई भी स्त्री महादेवजीकी पास घुस न जाय.

इन पूर्वोक्त दो श्लोकोंसे महादेवजो स्त्रीलंपट थे सो बखूबी साबित हो गया, अब उनके रागी भक्त चाहे मानें चाहे न मार्ने उनकी मरजीकी बात है.

इस ही ४४ वे अध्याय में बयान है कि-

आडी नामका दैत्य पार्वतीका रूप धारके महादेवजीके पास गया और महादेवजी उसको पार्वती समज बडे खुसी हुए, देखो ६४ और ६५ वा श्लोक—

" मन्यमानो गिरिसुतां, सर्वेरवयवान्तरेः। अपृच्छत् साधुभावं ते, गिरिपुत्रि ! न कुत्रिमम् ॥ ६४ ॥ या त्वं मदाञ्चयं ज्ञात्वा, प्राप्तेह वरवर्णिनि ! । त्वया विरहितं शून्यं, मम स्थानं जगत्रयम् ॥ ६५ ॥"

भावार्थ--- उस स्त्रीको महादेवजी सर्व अवयवोंसे पार्वती समज कर उसकी सज्जनताकी प्रशंसा की और कहा तूं मेरे आश्चयको जाण कर यहां आई सो अच्छा किया, क्यों कि मुझे तेरे विना तीनों जगत् शून्य भासते हैं.

इस बयानसे भी महादेवजी ज्ञान ज्रून्य सिद्ध हुए, अगर वो ज्ञानी होते तो समज जाते कि यह पार्वती नहीं है.

पद्मपुराण प्रथम सृष्टिखंड अध्याय ४६ पत्र-१४६ वे में---

अंधक नामके दैत्यसे शिवजीका युद्ध हुआ, उसने शिव-जीको गदा मारी, तब शिवजी उस गदाकी मारसे मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडे, मुहूर्त्त-दो घडीके बाद चेतनता आई, उस वरूत हाथमें पर्शु लेकर उसको मारनेको उठे, परन्तु उस दैत्यने ऐसी तामसी माया फेलाइ, जिस मायासे महादवेजीके देखनेमें वो दैत्य नहीं आया, तब सर्व देवताओ सूर्यदेवकी स्तुति करने लगें, और महादेवजी भी बडी आजीजीसे सूर्य देवकी स्तुति करने लगे, सो यहां लिखते हैं, पढो---

" प्रभाकर ! नमस्तेऽस्तु, भानो ! जय जगत्पते ! । अनेन दनुमुख्येन, पीडितोऽइ जगत्पते ! ॥ ७० ॥ किं करोमि ! कथं चैनं १, घातयामि दिवाकर ! ।

सूर्थ उवाच—

जय ग्रूलेन पापिष्ठं, मायाग्नतविश्वारदम् ॥ ७१ ॥ "

भावार्थ—हे भानो ! हे प्रभाकर ! हे जगत्पते ! इस मुख्य दैत्यसे में पीडित हूँ ॥ ७० ॥ हे सूर्य ! मै क्या करूं ?, इसको किस तरह मारूं ?, तब सूर्यने जवाब दिया कि सेंकडो तरहकी मायामें चतुर ऐसे इस पापिष्ठका त्रिझूळसे जय कर ॥ ७२ ॥

इस उपरके छेखसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि महादेवजी सर्व ब्रक्तिमान और सर्वज्ञ नहीं थे, कारण कि सर्व बक्तिमान होते तो अंधक दैत्यकी गदाके मारसे मूर्छित होकर पृथ्वी पर दो घडी तक बेहोश पडे नहीं रहते और सर्वज्ञ होते तो सूर्य देवतासे आजीजी कर उस दैत्यके मारनेका उपाय क्यों पूछते ?.

पद्मपुराण प्रथम सृष्टिखंड अध्याय ५६ पृष्ठ १७० वेसे सावित है कि महादेवजी कामके वशीभूत होकर परस्रीओंको भी भोगते थे, देखो नीचेके श्लोक—

" पुरा सर्वाः स्त्रीयो दृष्ट्वा, युवतीः रूपशालिनीः । गन्धर्वकिन्नराणां च, मनुष्याणां च सर्वतः ॥ १ ॥ मन्नेण ताः समाक्रुष्य, त्वतिदूरे विद्दायसि । तपोव्याजपरो देव-स्तासु संगतमानसः ॥ २ ॥ अतिरम्यां कुटीं कृत्वा, ताभिस्सह महेश्वरः । क्रीडां चकार सहसः, मनोभवपराभवः ॥ ३ ॥ "

भावार्थ-पेक्तर गंधर्व किम्नर और मनुष्योंकी रूपवती युवति स्त्रीओंको मंत्रवलसे आकाशमें खींच खींच कर तपके बहानेसे अति सुंदर कुटीया बनाकर महादेवजी उनके साथ क्रीडा करते हुए (भोग भोगते हुए).

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat

इत्यादि बयानसे महादेवजी परस्तीगामी तथा पूरे दगाबाज ये ऐसा साबित होता है.

पद्मपुराण प्रथम मृष्टिखंड अध्याय १४ पत्र ३६ वे में लिखा है कि रुद्रने ब्रह्माजीका पांचवा शिर छेदन किया जिससे ब्रह्माजीके छछाटमें पसीना आगया. उस पसीनेको ब्रह्माजीने कपालसे हाथमें ले कर पृथ्वी पर फेंका, उस पसी-नेर्मेसे चक्र बाण तथा धनुषु सहित एक जबरदस्त पुरुष पैदा **हुआ** और उसी वख्त ब्रह्माजीसे कहने लगा, बताओ क्या काम करुं १, ब्रह्माजीने हुकम किया, इस दुर्बुद्धि ख्द्रको ऐसा **मार डाल्र कि** फिर उत्पन्न न हो, ब्रह्माजीके इस हुकमको सुन कर वो पुरुष धनुष्को हाथमें लेकर महेश्वरके मारनेको अत्यंत भयानक दृष्टिवाला होकर चला, अत्यंत भयानक पुरुषको अपनी तरफ आता टेख कर भयभीत होकर महेस्वर वहांसे भाग निकले और अपने बचावके लिये विष्णुके आश्रमेंमें आये तो विष्णुने शिवजीका रक्षण किया, इत्यादि उछेख हैं<u>,</u> इस विषयके प्रतिपादन करनेवा*ले श्लोक नी*चे मुजब हे.

" छिन्ने वक्रे पुरा ब्रह्मा, कोधेन महतावृतः । छलाटे स्वेदग्रुत्पन्नं, गृहीत्वाऽताडयद्धवि ॥ ३ ॥ स्वेदतः कुण्डली जज्ञे, सधनुष्को महेषुधिः । सहस्रकवची वीरः, किं करोमीत्युवाचह १ ॥ ४ ॥ तग्रुवाच विरंचिस्तु, दर्शयन् रुद्रमोजसा । हन्यतामेष दुर्बुद्धि-र्जायते न यथा पुनः ॥ ५ ॥ बाह्मणो वचनं श्रुत्वा, धनुरुद्यम्य पृष्ठतः । सम्प्रतस्थे महेशस्य, वाणहस्तोऽतिरोद्रदृग् ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा पुरुषमत्युग्रं, भीतस्ततस्तिल्लोचनः । अपक्रान्तस्ततो वेगात् , विष्णोराश्रममभ्यगात् ॥ ७ ॥ त्राहि त्राहीति मां विष्णो !, नरादस्माच शत्रुहन् । बद्धणा निर्मितः पापो, म्लेच्छरूपो भयङ्करः ॥ ८ ॥ यथा हन्यात्र मां कुद्धः, तथा कुरु जगत्पते ! । हुंकारध्वनिना विष्णु-मोंहयित्वा तु तं नरम् ॥ ९ ॥ अदृझ्यः सर्वभूतानां, योगात्मा विश्वदृग् मभुः । तत्र माप्तं विरूपाक्षं, सान्त्वयामास केज्ञवः ॥ १० ॥ ततः स प्रणतो भूमौ, दृष्टो देवेन विष्णुना ।

विष्णुरुवाच---

पौत्रो हि में भवान् रुद्र !, कंते कामं करोम्यइम् ॥११॥"

इस उपरके छेखसे महेश्वर निर्विवेकी तथा निर्दय सिद्ध हो गये, और ब्रह्माजी भी कोधी तथा निर्दयी साबित हुए, कारण कि क्रोध और निर्दयता के वगैर अपने पसीनेसे अत्युग्र भयानक पुरुषको उत्पत्न करके महेश्वरको मार डाछ पेसा कैसे कह सकते?, इस वास्ते ऐसे निर्विवेकी तथा महाकूर जौर निर्दयी हृदयवालोंके बीचमें परमात्मापनेका लेग्न भी साबित नहीं होता है, और शिवजी शक्तिहीन सिद्ध हुए, क्यों कि अगर शक्तिमान होते तो ब्रह्माके उत्पत्न किये हुए पुरुषसे डर कर क्यों भागते ?, तथा विष्णुका श्ररण क्यों लेते ?.

पद्मपुराण प्रथम सृष्टिखंड चतुर्थ अध्याय पत्र ८ वे में बयान है कि-

विष्णुने स्त्रीरूप घारके तथा झुठ बोलके दैत्योंके पाससे अमृत लिया, वांचो नीचे के स्लोक--- " मायया लोभयित्वा तु, विष्णुः स्ती रूपसंश्रयः । आगत्य दानवान् प्राह, दीयतां मे कमण्डलुः ॥ ७३ ॥ युष्माकं वज्ञगा भूत्वा, स्थास्यामि भवतां गृहे । तां दृष्ट्वा रूपसम्पन्नां, नारीं त्रैलोक्यसुंदरीम् ॥ ७४ ॥ प्रार्थयानाः सुवपुष, लोभोपहतचेतसः । दत्वामृतं तदा तस्यै, ततोऽपञ्चयन्त तेऽग्रतः ॥ ७५ ॥ दानवेभ्यस्तदादाय, देवेभ्यः मददेऽमृतम् ।

ततः पषुः सुरगणाः, शकाद्यास्तत् तदामृतम् ॥ ७६ ॥

भावार्थ — विष्णुने कपटाइसे स्त्रीका रूप धारके दैत्य छोगोंसे कहा कि मे तुम्हारे वज्ञ हुई हुई तुम्हारे घरमें रहुंगी, उस रूप सम्पन्न सन्नारीको देख कर छोभके वज्ञ हुए दानवोने उस स्त्रीको अमृत दे दिया, उसने दानवोंसे उस अमृतको छेकर देवताओंको दिया, उसके बाद ज्ञक्रादि सुरगण उस अमृतको पीते भये, इत्यादि बयानसे बुद्धिमान् छोग समज जायेगे कि विष्णुमें देवपना होना तो दूर रहा परंतु सामान्य मनुष्यमें जो उत्तमताके छक्षण झूठ नहीं बोछना, कपट नहीं करना, आदि होते हैं वे भी नहीं थे.

बिष्णुपुराण पांचवा अंश अध्याय १० वे में---

श्रीकृष्णने व्रजवासिओंको गोवर्धनपर्वतकी पूजा करनेका उपदेश किया, उसमें मेध्य पशुको मारनेका भी छिखा है, श्री कृष्णके कहने मूआफिक व्रजवासीओंने गोवर्धनपर्वतकी दही दुध तथा मांससे पूजा की, देखो नीचे छिखे हुप श्लोक— " तस्माद् गोवर्धनभैलो, भवद्भिर्विविधाईणैः । अर्च्यतां पूज्यतां मेध्य, पशुं इत्वा विधानतः ॥ ३८ ॥ तथा च कृतवन्तस्ते, गिरियइं व्रजौकसः । दर्षिपायसमांसाचैः, ददुः भैल्लबर्लि ततः ॥ ३७ ॥ इस उपरके लेखसे साफ सिद्ध हो गया कि श्रीकृष्ण जानवरोंके मारनेका उपदेश भी करते थे, तैसे ही—

विष्णुपुराणके पांचवे अंग्नके प्रथम अध्यायमें---योग मायाको मांसादि चढाना कहा है-वो पाठ यह है " ये त्वामार्येति दुर्गेति, देवगर्भाम्बिकेति च । भद्रेति भद्रकालीति, क्षेम्या क्षेमङ्करीति च ॥ ८३ ॥ प्रातश्रैवापराण्हे च, स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्त्तयः । तेषां हि पार्थित सर्व, मत्प्रसादात् भविष्यति ॥ ८४ ॥ सुरामांसोपहारेश्व, भक्ष्यभोज्यैः सुपूजिताः । नृणामशेषकामाँस्त्वं, प्रसन्ना सम्प्रदास्यति ॥ ८५ ॥ ते सर्वे सर्वदा भद्रे !, मत्प्रसादादर्संग्रयम् । असन्दिग्धा भविष्यन्ति, गच्छ देवि ! यथोदिता ॥८६॥"

भावार्थ---आर्या दुर्गा, देवगर्भा अम्बिका भद्रा भद्र-काली क्षेम्या क्षेमकरी तूं है, तेरेको पातःकाळ और तीसरे पहरमें जो नम्र होकर स्तवेंगे उनके सर्व पार्थित मेरे प्रसादसे होंगे ॥ ८३--८४ ॥ ज्ञराब मांस और भक्ष्य भोजनसे अच्छी तरह पूजित हुई हुई पसन होकर तूं मनुष्योंके संपूर्ण कामोंको देवेगी ॥ ८५ ॥ हे सर्वदा भद्रे ! वे सर्व लोक मेरे प्रसादसे निस्संदेह असंदिग्ध होंगे, हे देवि ! तूं जा ॥ ८६ ॥ इस उपरके लेखसे भी सिद्ध हो गया कि श्री कृष्ण शराब और मांसको बडा उत्तम समझते थे, इसी वास्ते योग मायासे श्रोकृष्णने कहा है कि हे देवि ! सुरा औरा मांससे जो लोक तेरी पूजा करेंगे उनके मनोवांछितको में पूर्ण करूंगा, बुद्धिमान लोक खुद विचार करेंगे कि सुरा और मांसको जो उत्तम मानता है उसमें परमेश्वरपना तथा महात्मापना क्या सिद्ध हो सकता है ?, कहना ही पडेगा कि नहीं.

विष्णुपुराण पांचवा अंश अध्याय १३ वे में लिखा है कि-" ता वार्यमाणाः पतिभिः, पितृभिर्फ्रातृभिस्तथा ।

कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ, रमयन्ति रतिप्रियाः ॥ ५८ ॥

भावार्थ-पति पिता और भ्राताओंके इटाने पर भी वे गोपांगनायें रतिपिय हो कर रातमें ऋष्णके साथ क्रिडा करती हैं ॥ ५८ ॥

इस श्लोकसे ऋष्णजी परस्तीगामी थे ऐसा साबित हुआ, अब विचार करना चाहिये कि अच्छे मनुष्यसे भी न बने ऐसे अधमकाम करनेवालेमें परमेश्वरपना कैसे साबित हो सकता है ?.

प.-पु उ. खं. ष अ. २४५ पत्र २५८ से भी साबित होता है कि श्रो छुष्ण गोपीओंकी साथ विषय सेवन करते थे, देखो नीचेके स्ठोक----

" त्यक्वा पतीन सुतान वन्धून्, त्यक्त्वा छज्जां कुल्ठं स्वकम् जगत्पतिं समाजग्मुः, कन्दर्पशरपीडिताः ॥ १७० ॥ समेत्य गोप्यः सर्वास्तु, अजैराल्टिंग्य केशवम् । बुभ्रुजुथाधरं देव्यः, सुधामृतमिवामराः ॥ १७१ ॥ " भावार्थ-पति पुत्र और बंधुओंको छोडकर और अपनी कुछ मर्यादाका त्याग कर कामदेवके बाणसे पीडित हुई गोपीऐं कृष्णजीके पास आकर छजाओंसे केशवका आछिंगन करके भोग भोगवती हुई, तथा देवता जैसे अमृतका पान करें ऐसे उनके अधर पान करते हुए.

इससे भी कृष्णजीका कैसा आचार था १ सो सिद हो गया.

प. पु. पा. खंडे श्रीवृन्दावन माहात्म्यके ८३ वे अध्या-यसे श्री कृष्ण गोपीओंकी साथे विषय सेवन करते थे इतना ही नहीं किन्तु झराव-दारु पान भी करते थे, ऐसा प्रकटतया सिद्ध होता है, देखो नीचे लिखा हुआ पाठ-पत्र १०३ वे का---

'' उपवेक्यासने दिव्ये, मधुपानं प्रचक्रतुः ।

ततो मधुमदोन्मत्तौ, निद्रया मीलितेक्षणौ ॥ ५४ ॥ मिथः पाणी समालम्ब्य, कामबाणवर्श्वगतौ ।

रिरंस् विशतः क्रुझे, स्खल्ट्वाङ्मनसौ पथि॥ ५५॥"

भावार्थ-दिव्य आसन पर बैठ कर कृष्णजी और उनकी सहचरो मधुपान करते भये, उसके बाद शराबके नशेमें ख़राब होकर उन्मत्तताके वश निद्रासे मीचे जाते हैं नत्र जिनके, कामबाणके वश होनेसे आपसमें हाथसे हाथ मिला कर स्खलित हैं वचन और मन जिनके ऐसे कामक्रीडा कर-नेकी इच्छावाले हुए हुए कुंज-गाढी झाडीमें प्रवेश करते हैं ॥ ५४-५५ ॥

भागबत दश्नमस्कंध उत्तरार्ध अध्याय ५८ में वयान है कि–अर्जुनजी श्रीक्रष्णको साथ लेकर वनमें शिकार करनेको गए, पत्र २०६ वे में — देखी नीचेके स्ठोक " साकं कृष्णेन सञ्चद्दो, विइर्तु गहनं वनम् । बहुव्यालमृगाकीण, प्राविशत् परवीरहा ॥ १४ ॥ तत्राबिध्यच्छरैव्योघान्, सूकरान् महिषान् रुरून् । तत्राबिध्यच्छरैव्योघान्, सूकरान् महिषान् रुरून् । शरभान् गवयान् खर्ज्जान् , हरिणान् शशसल्लकान् ॥ १५ ॥ तान् निन्धुः किङ्करा राहे, मेध्यान् पर्वण्युपागते ।

तृद्परीतः परिश्रान्तो, बीभत्सुर्यग्रुनामगात् ॥ १६ ॥"

इस पाठसे श्रीकृष्ण शिकार भी करते थे ऐसा साबित हुआ

ें भागवत दशमस्कंध उतरार्ध अध्याय ६९ पत्र २४६ में श्रीकृष्णको शिकार करते नारदजीने देखा ऐसा जिकर है.

भागवत दशमस्कंध उत्तरार्ध अध्याय ५७ पत्र २०३ में लिखा है कि मणिके लिये श्रीकृष्णने शतधन्वाको मार डाला और उसके बाद मणि भो नहीं नीकली, देखो नीचेके स्लोक-

" पदातेर्भगवाँस्तस्य, पदातिस्तिग्मनेमिना ।

चकेण शिर उत्कृत्य, वाससोर्व्यचिनोन्मणिम् ॥ २१ ॥ अल्रन्धमणिरागत्य, कृष्ण आहाग्रजान्तिकम् । दृथा हतः शतधनु-र्मणिस्तत्र न विद्यते ॥ २२ । तत आह बलो नूनं, स मणिः शतधन्वना । कस्मिश्चित्पुरुषे न्यस्त-स्तमन्वेष पुरं व्रज ॥ २३ "

भावार्थ — भगवान श्रीक्रब्णने तीक्ष्ण धारवाले चक्र द्वारा शतधनुका शिर छेदन किया और उसके कपडे फरोले, मगर मणि नहीं मिला, तब बलभद्रजीकी पास आ कर कहने लगा कि मैने नाहक शतधनुको मारा कारणकि मणि नहीं मिला, बलभद्रने जवाब दिया कि किसो आदमीको उसने मणि दी होगी, आगे जाओ और तलास करो.

इस लेखसे श्रीक्ठष्ण अल्पज्ञानी साबित हुए, अगर उनको संपूर्ण ज्ञान होता तो मणि कहां है ? जान लेते और ऐसी हत्या नहीं करते, लोमके वग निरापराधी पाणीओं की जान लेनेवालेमें परमेश्वरत्व कदापि सिद्ध नहीं हो सकता, अज्ञानी लोभी तथा हिंसकको देव माननेवाले मिथ्याद्दष्टि कैसे उन्धत्त है ? कि शुद्धस्वरूप परमपवित्र जिनेश्वरदेवके कथन करे हुए शुद्धतत्त्वोंसे घृगा करके अपने पूर्ण दुर्माग्यसे ऐसे मलीन तत्त्वोंमें सूकरवत् पयःप नको छोड कर अपवित्र पदार्थकी रुवी करते हं, अरे ! मिथ्यात्व ! तेरी गति अजब है, मनुष्य जब तक लेरे फंट्रेमे फंसे हुए हैं, वहां तक हमे यह दृढ निश्चय है कि वे उल्लुकी तरह जनधर्मरूवी सत्य सूर्योदयके कभो दर्शन नहीं कर सर्केगे.

भागवत दशम स्कंथ उत्तराई अध्याय ९१ पत्र १८३ में राजा म्रुचुकुंदको श्रीकृष्णने उपदेश किया है, उससे साफ सिद्ध हो जाता है कि राजालोगोंको शिकार वगैरहके कर-91 नेसे पाप छगता है, देखो नीचेका स्ठोक---

" क्षात्रधर्मे स्थितो जन्तून्, न्यवधीर्म्रगयादिभिः । समाहितस्तत्तपसा, जह्यद्यं मदुपाश्रितः ॥ ६४ ॥ ''

भावार्थ--क्षात्रधर्ममें रहे हुए तूंने शिकारसे अनेक जीबोंका वध किया है इस छिये मेरा आश्रय लेकर समाधिस्य होकर तपश्चर्या द्वारा उस पापका नाज्ञ कर ॥ ६४॥

भागवत दत्रम स्कंध पूर्वाई अध्याय २२ पत्र ८९-९० वे में ळिखा है कि—

" क्रष्णमुचैर्जगुर्यान्त्यः, कालिन्द्यां स्नातुमन्वहम् । नद्यां कदाचिदागत्य, तीरे निक्षिप्य पूर्ववत् ॥ ७ ॥ ''

भावार्थ—उच्च स्वरसे अपने पाणप्यारे यज्ञोदानंदका नाम छेती और गुणानुवाद गाती यम्रुना पर स्नान करनेको जाया करती ॥ ७॥

" वासांसि कृष्णं गायन्त्यो, विजहुः मलिले मुदा । भगवाँस्तदमिप्रेत्य, कृष्णो योगीश्वरेश्वरः ॥ ८ ॥ "

भावार्थ-एक दिन पहेळेके न्याइं यम्रुनाके किनारे पर अपने अपने वस्त्र उतार कर सबने धर दिये और श्रीकृष्ण चन्द्रके गुण गान करके यम्रुना जलमें विद्दार करने लगीं, तब योगीश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उनके मनका मनोरथ जानकर ॥ ८ ॥

9 यहपाठ इस लिये लिखा गया है कि अगर कोई कहे कि कृष्णजीने शीकार किया इसमें कुछ हाकत नहीं क्योंकि व राजा यें और राश्यधर्ममें शीकारमें पाप नहीं होता तो उनको यह पाठ याद रखना चाहिये. " वयस्यैराद्यतस्तत्र, गतस्तत्कर्मसिद्धये । तासां वासांस्युपादाय, नीपमारुह्य सत्वरः ॥ ९ ॥ इसद्भिः भइसन् वाल्ठेः, परिहासम्रुवाचह । अत्रागत्याबल्ठाः कामं, स्वं स्वं वासः भग्रह्यताम् ॥ १० ॥ सत्यं वव्राणिनो नर्म, यद्यूयं नतकर्षिताः । न मयोदितपूर्वं वा, अनृतं तदिमे विदुः ॥ ११ ॥ एकैकञ्च मतीच्छध्वं, सहैवोतसुमध्यमाः । तस्य तत्क्ष्वेलितं दृष्ट्वा, गोप्यः प्रेमपरिप्छताः ॥ १२ ॥ व्रीडिताः प्रेक्ष्य चान्योन्यं, जातहासा न निर्ययुः । एवं ब्रुवति गोविन्दे, नर्मणाक्षिप्तचेतसः ॥ १२ ॥ आकंठमग्नाः ज्ञोतोदे, वेपमानास्तमन्नुवन् । माऽनयं भोः क्रथास्त्वां तु, नंदगोपस्रुतं प्रियम् ॥ १४ ॥ जानीमोऽङ्गवजश्छार्घ्यं, देहि वासांसि वेपिताः । इयामसुन्दर ! ते दास्यः, करवाम तवोदितम् ॥ १५ ॥ देहि वासांसि धर्मज्ञ !, नोचेत् राज्ने ब्रुवामहे ।

श्रीभगवानुबाच—

भवत्यो यदि मे दास्यो, मयोक्तं वा करिष्यथ । ,आत्रागत्य स्ववासांसि, प्रतीच्छन्तु शुचिस्मिताः ॥ १६ ॥ ततो जलाशयात् सर्वा, दारिकाः शीतवेषिताः । पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य, पोत्तेरुः शीतकार्षिताः ॥ १७ ॥ यूयं विवस्ता यदपोष्टतव्रता, व्यगाहतैतत् तदुदेव हेल्लम्। बद्धाव्जलिं ग्रुध्न्व्यपनुत्तयेंद्दसः, क्रुत्वा नमोऽधो वसनं प्रगृह्यताम् ॥ १९ ॥

भावार्ध-अपनी मंडलीके सखाओंको संग लेकर उनकी मनोकामना सिद्ध करनेके लिये यम्रुनाके किनारे पर पहूंचे और उन कन्याओंके वस्त्र छेकर झटपट कदंब पर चढ गये ॥ ५९ ॥ और बालकों समेत आप ठहे मार मार कर इँसने छगे और अनेक प्रकारकी मइकरीकी वातें करने छगे, कि हे अवलाओ ! हमारे समीप आओ, और अपने वस्त ले जाओ ॥ १० ॥ इस समय में मझ्करीसे नहीं कहता, सत्य कहता हूं, तुम वत करनेसे बहुत दुर्बेळ हो गइ हो इस बातको मेरे मित्र सब प्रकारसे जानते हैं ॥ ११ ॥ मेरेको कुछ दुर्भाव और आष्रह नहीं है. तुम एक एक मेरे पास आती जाओ और अपने अपने वस्त्र छेती जाओ, चाहे सब मिछ कर एक वार छे जाओ, जब तक तुम ऐसा नहीं करोगी, मुझे अपने वावा नंदकी सोगन है तुम्हारे वस्त्र कभी नहीं दूंगा ॥ १२ ॥ मनमोइनप्यारेकी मीठी मीठी बातें सुन कर परस्पर देख लजित हो गोपीओंने जान लिया कि ये परिहास करते हैं, यह सोच विचार कंठ तक इतिल जलमें जाडे-टाढकी मारी कांपती रहीं, जब बहुत देर हो गई तब गोपीएं बोली ॥१३॥ हे कृष्णचन्द्र ! अन्याय वार्त्ता मत्त करो, तुम नंदजीके प्यारे पुत्र हो यह हम जानती हैं, हे प्यारे ! शीतसे दुःखित हम सब कांप रही हैं, इस लिये हमारे वस्त्र देदो ॥ १४ ॥ हे ्रयामसुन्दर प्यारे ! हम तुम्हारी दासी हैं, जो तुम कहोगे सो ही करेंगी परंतु हमारी लाजके ग्राहक मत बनो, जब लाज ही जाती रही तो फिर शेष क्या रहा १, हम आपके सामने निर्लज्ज होना नहीं चाहती, अब कुछ नहीं बिगडा है, धर्मज्ञ ! इमारे वस्त्र दे**दो नहीं तो हम राजा कंससे जा**

कर कहेंगी ॥ १५ ॥ गोपीओंकी रोस भरी वात सुनकर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र बोछे कि जो तुम मेरी दासीएं हो और मेरा कहना तुमको अंगीकार है तो हे मन्द्र सुसकान वालीओ ! तुम यहां आन कर अपने वस्त्र ले जाओ ॥ १६ ॥ जब कुछ उपाय न चल सका तब हार कर शर्दीकी मारी काँपती हुइ संकोच करती संपूर्ण गोपीका दोनों हाथोंसे कुच और योनिको ढक जलसे बाहिर आई ॥ १७ ॥ तब श्याम-सुन्दर बोछे कि दोनो हाथ जोडकर सूर्यनारायणको मणाम करो ॥ १९ ॥

यहां पर पाठक महोदयको विचार करना चाहिये कि जहां पर नंगी स्त्रीओ स्नान करती थी वहां ऊष्णका जाना और उनके वस्त्र छे कर कदंब पर चढ जाना, उनके गुहा-स्थलोंको खुल्ला करनेके लिये सूर्यनारायणको प्रणाम करो ऐसे कहना क्या परमात्माका काम है ? कि कामीका, निष्पक्ष-पाठककी अंतर आत्मामें इस पश्चका यही उत्तर भिलेगा कि ये सब लक्षण कामीके ही हैं, जो कि इस विषयके समा-धान के लिये वरुण देवताका इन्होंने अपराध किया, क्यों कि जलमें नंगा होकर स्नान करना (वरुण देवताका जला-घिष्ठायक होनेसे) अपराध है, इस लिये इनको श्रीकृष्ण-चंद्रजीने सजा की ऐसा कितनेक अंधभक्त कहते हैं परन्तु यह बात युक्ति हीन है, क्यों कि जैसे किसी स्त्रीने किसी इज्जतदार मनुष्यके घरको निर्जन मान कर बेसमजीसे अपने कपडे उतार दिये, इस स्त्रीके योनि तथा कुचको खुल्ला उस नगरका राजा उस स्त्रीके योनि तथा कुचको खुल्ला करके देखें तो उस राजाको कोई भी न्यायी राजा नहीं कह सकता हैं बल्के बदमास ही कहा जायगा, कारण कि सजाके सेंकडो दूसरे तरीके होने पर भी ऐसे नीच तरीकेको अखत्यार करनेवाळा भळा माणस है ऐसा उसके अंध खुज्ञामदखोर अनुयायीओंके ज्ञिवाय दूसरा अकल्जमंद ज्ञष्टस नहीं मान सकता.

इस वर्णनको कितनेक छोक गोपीओंकी इंद्रियोंमें कल्पना कर उन इंद्रियों गत आवर्णको वस्त्र बनाकर उसके चोर (हरण करनेवाले) कृष्णजीको साबित करके अपने मनमें खुश्च होते हैं, परंतु दूसरे मतवादिओंके तर्करूप सूर्यके तापको नहीं सहन करते हुएने इस कुकल्पनारूप गुफा बना छी है, वास्तविक सत्य इस कल्पनामें नहीं है,

भागवत दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध अध्याय ३० पत्र १२२ वा का श्लोक इसी बातको साबित करता है—

"बाहुप्रसारपरिरम्भकराळकोरु–निवीस्तनाळभननर्मनखाग्र पातैः । क्ष्वेल्यावळोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणा–म्रुत्तम्भयन् रतिपर्तिरमया-अवकार् ॥ ४६ ॥ ''

भाषार्थ---भुजाओंका पसारना, आलिंगन करना, कर अलक, साथल नीवी-नाडुं स्तन इनका स्पर्श करना, परि-हासके वचन कहना, नखोंके चिह्न, कीडा चिंतवन और हंसीओंसे व्रजसुन्दरीयोंको भगवान काम उद्दीपन करायके रमण करने लगे॥ ४६॥

यह श्लोक उपर लिखे हुए समाधान करनेवालोंका पूर्ण-तया संडन करता है और हाथ जोडानेमें योनि तथा कुच दर्शनकी छाछसाको ही साबित करता है, इससे कुष्णजीकी पवित्रता (१) साफ तौर पर जाहिर हो रही है.

भागवत स्तंध सत्तर वा अध्याय आठवे में----

भगवान्ने नृसिंहरूप धारके हिरण्यकशिपुको और उसके सहस्र सुभटोंको बुरे हालसे मारा, अपनी जिह्वासे अपने लोहवाले होठोंको चाट रहें हे और रुधिरके लगनेसे मुख लाल लाल हो रहा है, दैत्योंकी आंतोका हार कंठमें पहिने, इत्यादि वर्णन भी विष्णुको जो जरा भी पापसे डरता <mark>हो ऐ</mark>से सामान्य मनुष्यसे भी नीचे दरजेका साबित करता है, अफ-सोस है कि इनके ऐसे अधमकर्मको ब्रह्मा शिव और इन्द्र आदि देवताओंने अनुमोदन दीया है, इससे वे लोक भी परमात्मपद तथा देवेश्वरपदके लायक नहीं थे ऐसा साबित होता है. क्या लोहका चाटना, आंतोका गलेमें डालना, और इजारों दैत्योंका ध्वंस करने रूप यह अधमकार्य किसी तरहसे अनुमोदनीय हो सकता है १, कहना ही पडेगा कि कदापि नहीं. जिस वख्त नृसिंहने यह काम किया उस वख्त उसको बडा भारी कोध चढ़ा हुआ था, जिससे उसके पास ब्रह्म रुद्र वगैरह देवता भी नहीं जा सके, देखो भागवत सत्तरवा स्कंध अध्याय नोर्वेका प्रथम श्लोक---

" एवं सुरादयः सर्वे, ब्रह्मरुद्रपुरस्सराः ।

नोपेतुमज्ञकन् मन्युः, संरंभं तं दुरासदम् ॥ १ ॥ "

इतने जबरदस्त कोध करनेवालेमें परमात्मपना है ऐसा माननेवालोंके अंदर विवेकका होना बुद्धिमानोंकी बुद्धि कबूल नहीं करती और ऐसे विवेक इट्रन्य मनसे माने हुए काल्पनिक देवसे आत्मोद्धारको आञ्चा रखना पानीमेंसे मक्खनकी आग्चा जेसा है

भागवत स्कंध १८ अध्याय ९ वे में---

स्त्रीका रूप बना कर भगवान्ने दैत्योंको ठगा ऐसा लिखा हुआ है, इससे भी कृष्णजी परमात्मा थे ऐसा सिद्ध नहीं होता है, क्यों कि स्त्रीरूप धारके किसीको पपंचपासमें फसाना ऐसा कृत्य परमात्मामें संभव नहीं होता.

और इसी स्कंधके १० वे अध्यायमें लिखा है कि-

देव और दैत्योंका परस्पर युद्ध हुआ उसमें देवोंकी हार हुई, तब देवोंने भगवानका स्मरण किया, भगवान्ने आकर कितनेक देत्योंका नाज कर डाला.

यहां पर स्वाभाविक ही यह विचार उत्पन्न होता है कि दैत्योंका नाश करनेवाले इष्णजीमें दयाका लेश भी था ऐसे कैसे माना जा सकता है १, क्यों कि इष्णजीके भक्तोंके मानने मूजव इष्णजी सर्वशक्तिमान गिने जाते हैं तो उनको अपने स्शानमें रहे हुए दैत्योंकी बुद्धिका सुधारा करके स्मरण करनेवाले अपने भक्तोंका रक्षण करना चाहिये था, अगर ऐसी शक्ति नहीं थी ऐसा कहा जावे तब सर्वशक्तिमत्ताका लोप होता है और शक्ति होने पर मारनेका मार्ग घातक-द्यतिका सूचक है, अगर इस प्रकारके न्याय युक्त विचार अंध-भक्तोंका हो जाय तो पुराणकी मायावी कल्पनासे क्षण मात्रमें छूट सके ऐसा हमारा मानना है.

ं भागवत स्कंध १८ अध्याय १२ वे में बयान है कि—

शिवजोने यह सुना कि विष्णुने मोहनोस्त्रीका रूप धारके ठगाइ करके दैत्यों से अमृत ले कर देवोंको पीला दिया, ऐसा सुनके उस मोहिनीस्त्रीका रूप देखने वास्ते पार्वती समेत भूतगणोंको साथमें ले कर विष्णुके पास आए और विष्णुकी अत्यंत हो स्तुति करी, और विष्णुसे कहा कि आपने मोहि नीका रूप धारण किया था, मैं उसको देखनेकी इच्छ। करता हूं, जिस मोहिनीके रूपसे आपने दुर्मद दान-वोंको मोहित किया और देवताओंको अमृत पीछाया मैं उसो मोहिनी रूपको देखनेको आया हूं, बादमें विष्णुने कहा कि आप इमारे उस मोहिनी रूपको देखनेकी इच्छा कर ते हैं तो अच्छा आपको दिखाया जायगा, उस रूपको कामी पुरुष बहुत हो मानते हैं उससे कामदेवका उदय हो जाता है, ऐसा कह कर विष्णु वहां ही अदृश्य हो गए, तब उस समय महादवेजो अपनी भार्या पार्वती सहित चारों और नेत्र चलाय उस रूपको दखनको उत्कंठित होते रहे, कुछ देरके वाः उपवनमें कि जहां पर चित्र विचित्र <mark>कुसुम</mark> और लाल वर्णके पलव शोभायमान हो रहे थे वहां परमसंदर एक स्री महादेवजोने देखी, उसके नितंब उज्ज्वल रेशमो वस्नसे ढक रहे थे, उसमें मेखलाकी लडीयें ऐसी दीप्तिमान् हो रही थीं कि मनुष्यका मन उसकी कडोयोंमें ही उलझ रहे, वो स्त्री गेंद उछाल कर देखनेवालोंके मनको भी इसके साथ ही उछालती थी, गेंदंके उपर नीचे उछालन के कारण उसके शरोरके बुकने और उंचे होनेसे उसके दोनों स्तन और मनो-हर हार बार बार कम्पायमान होता था, कहां तक लिखें ?, इस स्त्रीकी शोभा बहुत ही वर्णन करो है, ऐसी उस स्त्रीके 92

कटाक्षसे महादेवजी एक ही बारमें मोहित हो गए, इस कारण उसको देखनेसे और उस कर देखे जानेसे महादेवका मन अत्यंत विह्वल हुआ इस लिये महादेवजीने अपने निकटमें रहे हुए सेवक और पार्वतीको जाना भी नहीं वो मोहिनी जिस गेंदको उछाल रही थी, सो एक वार वो गेंद उसके हाथसे उछल कर दूर गिर पडा, उस गेंदको छेनेको जब वो बाला दौडी तब वायुके वेगसे कांची सहित कहीं वस्त्र उड गया, तब महादेवजी खडे होकर एक टक उसको देखने लगे, वैसे ही वो भामिनी भी क्रंचित कटाक्ष चलाय कर उनको देखने लगी तब महादेवजीका मन उस पर अनुरागी हो गया और मोहिनीके हाव भाव से महादेवजीका मन ज्ञानशून्य हो गया तथा उसकी तल्लीनतामें ऐसे विह्वल हो गए कि पार्वती सामने खडी खडी देखती रहो मगर स्वयं निर्रुज्ज होकर उस सुंदुरीके समीप चले गए, यह मोहिनी कामिनी वस्त्र रहित थी इस लिये महादेवजीको निकट आते हुए देखकर लज्जिन हुई और इंसती इंसती वृक्षोंके आडमें जाने लगी, भगवान महादेवजीकी इंद्रिये प्रबल होगई, वो पंचवाणके वश होकर उस स्रीके पीछे दौडने लगे जैसे युथपति हाथी हन्तिनीओंके पीछे पीछे दोडता है, जब वो साधारण चालसे महादेवजीके हाथ नहीं आई तब महादेवजी अति वेगसे दौडे और उस स्त्रोकी इच्छान देखकर केश प्रकडकर अपनी भुजाओंसे उसको अपने हृदयसे लगा-लिया, हाथी जिस प्रकार हाथिनीको आलिंगन करता है वैसे ही वो मनमोहिनी बाछा भवानीपति महादेवजीके हृदयसे लिपटी हुई इधर उधर दौडने लगी जिससे उसके केश छुट

गए, उसके बाद देवमायाका बनाई बडे बडे नितंबोंवाळी वो स्त्री अति कष्ट करके महादेवजीकी भुजासे अपनेको छुडाय कर दौडी, रे राजन ! अद्भुत कथा अवण करो, श्रीभगवान् विष्णु ही माया विस्तार करके यह स्त्री हुए थें जब श्रीभगवान् स्त्री बनकर दौडे तब शिव अपने सदाके वैरी कामदेवसे पराजित हो फिर उसकी पदवीका अनुष्ठान करने लगे, हे महाराज ! वासिताके यानि ऋतुमतीहथिनीके पोछे पोछे दौडते हुए कामी हाथीका वीर्य जिस तरह गिर जाता है वैसे ही उस मोहिनीके पिछ पडे हुए अमोध वीर्यवान् भगवान् शिव-जीका वीर्य गिर गया.

शरम ! शरम !! शरम !!! अफसोस है ऐसे पुराणके छेखकों पर कि जिन्होंने ऐसी बेहुदी बातें छिखतें जरा भी गौर न किया कि इन कल्पनाओंसे धर्मका नाश होता है, अब वतछाइयें कि जिनके धर्मशास्त ऐसो बातोंसे भरे हुए हो उनके धर्मके माननेवाछोंका कल्याण कैसे हो सकता है ? और जो धर्ममें ऐसे कुकर्मी देव होवे उनके नाम छेनेसे धार्मिक छाभ कैसे हो सकता है, हाँ, भवमें रुछना हो तो इन प्रंथोंके अनुकूछ चछना अन्यथा जछांजछि ही दे देनी चाहिये और शुद्धशास्त्रके अनुकूछ होकर राग द्वेष रहित देवको परमात्मा कबूछ करना चाहिये, देखो-एक तरफ तो महादेवजीको सर्वज्ञ कहते है और दूसरी तर्फस छुष्णजीसे प्रार्थना करी कि आप मोहिनीरूप दिखछाओ, इससे सिद्ध हुआ कि महादेवजी अल्पज्ञानी थे नहीं तो अपने स्थरुमें रहे हुए मोहिनीको देख सकतें तथा निर्छज्ज भी थे, नहीं तो उपरोक्त कर्म अपने सेवकोंके तथा पार्वतीजीके देखते हुए न बनता और कामीका तो सरदार ही कह सकते हैं कि जिसका दौडते दौडते वीर्थ स्खलित हो गया, बतलाईये ! स्वयं ऐसे महामोहसे घायल हुए हुए देव, भक्तोंका क्या उद्धार कर सकेंगे?, उद्धार करना तो दूर रहा मगर अंग्रेज सरकार जैसा राज्य होता तो उस मोहिनी स्त्रीसे अजाओंसे पकड कर जो बलात्कार किया था उसका फल स्वयं कारागृहमां बद्ध हो कर अगतना पडता, बस-इससे इतना ही सबक-पाठ लेनेका है कि ऐसे देवोंको जब तक सेवते रहोगे संसारमें ही भटकते फिरोगे, इस

भागवत दशम स्कंध २८ वे अध्यायमें---

टकाम्रुरको महादेवजीने उसके कहने माफिक वर दिया कि-जिसके शिर पर तूं हाथ रक्लेगा वोही मर जायगा, तव उसने पार्वतो पर लुब्ध होकर महादेवजी के मस्तक उपर हाथ रखनेका हरादा किया, तब महादेवजी भयभीत होकर वहांसे भागे अम्रुर भी उनके पीछे लगा, शिवजी डर कर स्वर्ग तक भागे और पृथ्वीका जहां तक अंत है वहां तक भागे, फिर उत्तर दिशामें भाग कर गये, उस समय उपायको न जान कर संपूर्ण देवता चूप हो गए, इसके उपरांत प्रकाशमान मायासे परे वैक्ठंठ धाममें शिवजी गए, तब दूरसे ही नारायण भगवान्ने शिवजीके पीछे दौडे चले आते टकासुरको देख कर अपनी योगम यासे ब्रह्मचारीका वेष धर लिया, कुश हाथमें लिये भगवान नम्र हो अभिवादन कर उससे बोले कि हे शकुनिके पुत्र ! ग्रुजे निश्चय खेद है तुं इतनी दूर क्यों आया ?, थोडी देर विश्राम लें, क्यों कि समस्त कामनाओंका देनेवाला यह देह है इसको पीडा मत दे, हे समर्थ ! जो तुम्हारा अभिप्राय हमारे आगे सुनाने योग्य हो तो कहो, क्यों कि बहुधा दूस-रोंकी सहायतासे पुरुष अपना कार्य सिद्ध कर सकते हैं, ऐसे मिष्ट वचनसे टकासुरने अपना सर्व टत्तांत सुना दिया, तब श्रीभगवान् बोल्टे कि शिवने तुमको वर दिया है तो शिवके वचनको हम सत्य नहीं मानते, क्यों कि यह शिग देक्षके श्रापसे पिशाचोंकी दशाको प्राप्त हुआ है और प्रेत पिशाचोंका राजा है, इत्यादि कह कर उसका हाथ उसके मस्तक पर धराया वो मर गया

इस उपरके बयानसे सिद्ध होता है कि महादेवजीको इतना भी झान नहीं था कि मैं इस टकासुरको ऐसा वरदान देता हूं कि जिस बरदानसे मेरा ही नाश करनको यह वृकासुर उद्यत होगा जिससे मेरेको नाश भाग करनी पडेगो तो फिर ऐसे ज्ञानहीनको देव कैसे कह सकते हैं ? तथा विष्णुने उस वृकासुरको घोखा देके मरवाया यह भी सज्जनताका छक्षण नहीं, क्योंकि सज्जन किसीके साथ चोखेका काम भी नहीं करते तो फिर मरवाणा तो कहां रहा?, इस छिये विष्णु भी घोखेबाज तथा निर्दयी सिद्ध होते हैं

भागवत तृतीय स्कंध पत्र ३८ वा में बयान है कि— चतुराननने जलमें धरणी–पृर्थ्वाको डुबी देखके मनमें बहुत काल तक चिंतन किया कि किस प्रकारसे इसका उद्धार किया जाय, ज्युं प्रजा गण इस उपर वास करें.

" यस्याइं हृदयादासं, स ईशो विदधातु मे। इत्यभिध्यायतो नासा-विवरात् सहसानघ !॥

वराइतोको निरगा-दंगुष्ठपरिमाणकः ॥ १८ ॥"

में जिससे पैदा हुआ हूं वो ईश मेरी मदद करो ऐसा विचार करते **हुए ब्रह्माजीके नाकसे अंगुष्ट प्रमाण वराहका बचा** निकला.

तथा थोडी ही देरमें वराइजी बडे हो गए और जलमें जाकर पृथ्वीको ले आए तथा हिरणाक्षका शरीर चीर डाला, उसके रुधिरकी कीचमें भरी हुई अपनी तुंडसे लीला करने लगा.

इस उपरके लेखसे बुद्धिमानोंकुं विचार करना चाहिये कि ल्रोहुसे भरे हुए मुखसे क्रीडा करना, किसीको चीर डाल कर हृष्ट होना, सामान्य आदमीका काम है या परमात्माका ?.

पद्मपुराण प्रथम सृष्टि खंड अध्याय ३ पत्र ७ में लिखा है कि—

" ब्रह्मणोऽभून्महाकोध-स्त्रीलोक्यदहनक्षमः ।

तस्य क्रोधात्सम्रद्भूतं, ज्वालामालावदीपितम् ॥ १७१ ॥ ब्रह्मणस्तु तदा ज्योति-स्त्रैलेक्यमस्विलं दहत् । भृकुटिकुटिलात् तस्य, ललाटात् कोधदीपितात् ॥ १७२ ॥ सम्रुत्पत्रस्तदा रुद्रो, मध्याह्रार्कसमप्रभः ।

अर्धनारीनरवपुः, प्रचण्डोऽतिशरीरवान् ॥ १७३॥ विभजात्मानमित्धुक्त्वा, तं ब्रह्मान्तर्दधे ततः ।

तथोक्तोऽसौ द्विश स्त्रोत्वं, पुरुषत्वं तथाकरोत् // १७४॥'' इत्यादि वर्णन भी तद्दन युक्ति झून्य है.

१ उपरके संस्कृत स्रोकोंका इतना ही संक्षिप्तार्थ है कि ब्रह्माजीके कपालसे महादेवजी आपे स्त्रीरूपमें और आपे पुरुष रूपमें पैदा हुए. मार्कडेय पुराण अध्याय ७५ त्रप १९९ में----

सूर्यदेवकी स्त्री घोडीका रूप धारके तपस्या करतो थी, उस समय सूर्यने घोडेका रूप धार कर उसके साथ भोग करना चाहा, उस घोडीने उसको परपुरुष समजकर फिर कर अपना मुख उसके सन्मुख किया, मुखसे मुख मिला, बस घोडीके मुखसे तीन पुत्र पैदा हुएं, उनमेंसे एक पुत्र घोडा पर चडा हुआ हाथमें ढाल तरवार तथा बाण तूण युक्त जन्मा, इत्यादि वर्णन है, इन गप्गेंको कोई भी बुद्धिमान् सत्य नहीं मान सकता. तथा ७८ वा अध्याय पत्र २०३ वे में बयान है कि—

मधु तथा कैटभ नामके दो दैत्य विष्णुके कानके मेलसे उत्पन्न हुए, जब ब्रह्माजीको मारनेको तैय्यार हुए तब ब्रह्मा-जीने निद्रादेवीकी स्तुति करी, भगवान् जाग उठे, जब वे दैत्य ब्रह्माजीके मारनेको उद्यत हुए, तब भगवान् विष्णुने उन दैत्योंके साथ पांच हजार वर्ष बाहु युद्ध किया, यह गप्प गोला भी बुद्धिमानके मानने लायक नहीं हैं, भले ! मिथ्यादृष्टि इसके नोचे दबें रहें मगर सम्यक्त्व रूप सूर्यकी अरुणिमा भी इस गप्पगोले रूप तिमिरको क्षण मात्रमें इटा देती है.

विष्णुपुराण पांचवे अंशके त्रेवीश वे अध्याय में— काल पवन सेनाको ले कर युद्ध करनेको आया, उस वख्त श्रीकृष्ण विचार करते हुए, सो नीचे म्रुजब—

" मागधस्य बलं क्षीणं, स कालुः पवनो बली । इन्ता तदिदमायातं, यदूनां व्यसनं द्विधा ॥ १० ॥ तस्मादुर्ग करिष्यामि, यदूनामतिदुर्जयम् । स्त्रियोऽपि यत्र युद्ध्येयुः, किं पुनः वृष्णिपुङ्गवाः ॥ ११ ॥ मयि मत्ते प्रमत्ते वा, सुप्ते प्रवसिते तथा । यादवाभिभवन् दुष्टा, मा कुर्वन्त्वरयोऽधिकाः ॥ १२ ॥ इति संचिंत्य गोविन्दो, योजनानि महोदधिम् । ययाचे द्वादञ्चपुरीं, द्वारकां तत्र निर्ममे ॥ १३॥

इस उपरके लेखसे सिद्ध हुआ कि श्रीकृष्ण काल यवनादिकोंसे यादवोंको भय जान कर सम्रद्रके बीचमें द्वारका नगरी बसावते भये, जब श्रीकृष्ण परमेश्वर् और संपूर्ण शक्ति-मान् है तो अपनी इक्तिसे काल यवनादिको यादवोंका भक्त बना देते कि जिससे सर्व कालयबनादि यादवोंके आधिन हो जातें तो फिर अपनी मथुरानगरी छोड कर द्वारका नगरी क्यों वसानी पडती १, वास्ते सिद्ध हुआ कि श्रीकृष्ण संपूर्ण शक्तिमान् नहीं थे और नाहीं परमात्मा थे, क्यों कि सर्व शक्तिमान् परमात्या किसीसे नाश भाग नहीं कर सकता, अगर कहा जावे कि परमात्माने यह सब लीला की थी, इससे उनके परमात्मपदर्भे कुछ वाय नहीं, तो यह भी कथन महा अज्ञानताका है, क्यों कि जो परमात्मा हो सो किसी तरहकी लीला कर ही नहीं सकता, लीला करना मोही अज्ञानी तथा इन्द्रजालिओंका काम है और ऐसे तो कोई पामर भी कह देगा कि मैं परमात्मा हूं और जब उसके परमात्मा होनेमें विरोव दिखलायेंगे कि तू दरिद्र है, भीख मांग कर पेट भरता है, आज्ञानताका पूतळा है, दूसरेसे डरता है, विषय विकारोंमें मरा पडा है इस लिये तं परमात्मा नहीं है, तब वो भी कह सकता है कि यह सब मेरी लीला है, मैं बराबर परमात्मा हूं, बस-इस पामरके उत्तर जैसा ही अंधभक्तोंका उत्तर है, जो प्रकटतया ब्रह्मा विष्णु महेश आदि देवोमें उन पूर्वोक्त दूष-

(29)

णोको देखते हुए भी लीला लीला कह कर आंखें मीच लेते हैं और सत्यमार्गको भूल कर उलटे ही रास्ते चले जाते हैं और अप्रमणाकी ठोकरें खाते हुए अनंतकाल व्यतीत करते हैं, मगर सत्य जैनधर्मरूप सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित मार्गमें नहीं आनेसे मुक्तिसे वंचित रह जाते हैं.

उन जीवों पर इमारी अहोनिश भाव दया रहा करती है और यह विचार आता है कि हाय ! दुष्ट पिथ्यात्व ! तूंने उन जीवोंका नाश क्यों मारा है ?, इन्होने तेरा क्या बिगाडा है ?. जो विचारोंको रास्ते पर नहीं आने देता, इससे भी ज्यादा दुःख तो हम इस बातका है कि जो उल्टे रास्ते पर चल्ठते हुए भी सच्चे जैनधर्मसे द्वेष रखते हुए और अपने हृदयगत प्रज्वलित वैरको शांत करनेके लिये किसी पुस्तकमें ज्युं आवे त्युं जैनधर्मके बारेमें वकवाद करते हैं, जैसे 'अनगभद्रा ' अथवा ' वल् उभीपुरनो विनादा ! ' नामके पुस्तकमें एक मिथ्यांध " ठक्कर नारायण विसनजी " नामक व्यक्तिने किया है, मचकुर किताब के पृष्ठ ४० पर लिखा है कि—" धणा भरा लेन साधुओ पणु से तांत्रिक धर्मना जिपासक थया खता. " यह फिकरा लिखकर उसकी फुटनोटमें—

" જ્યારધ! બહુ સ'ખ્ય જૈત સાધુઓએ તાંત્રિકક્રિયાઓને સ્વિ-કારી તે મલીન જપ જપ તથા માંસ બલિદાન આદિથો દેવી પિશ્વાચ તથા વેતાલ આદિની, જારણ મારણ અને વશીકરણ આદિ સિહિ માટે સાધના કરવા માંડી......એટલે પછી જે સાધુઓ શુદ્ધચરિત્ર અને પવિત્ર હતા તેમણે એ ભ્રષ્ટ જૈનસાધુઓથી પાતાની ભિન્નતાને દર્શાવવા માટે યેતવસ્ત્રને બદલે પીતવસ્ત્ર પરિધાન કરવા માંડયાં,...... બૈ.હધર્મ પ્રમાણેજ જ્રૈનધર્મમાં પણ તે સમયમાં ભિન્ન ભિન્ન અનેક વિભાગા પડી ગયા હતાં, તેમાંના દિગંબર યાતાંબર અને સ્થાન કવાસી સુખ્ય હતા. "

93

इत्यादि लिखा है, अव्वल उनकी यह मिथ्यांधता हैं कि तांत्रिकमतका असर बौद्ध और जैनधर्ममां हुआ, ऐसे छिख कर वैदिकधर्मको किनारे ही रक्खा, क्या चारों तर्फसे जलता हुआ तांत्रिकमत दावानल वैदिकोंका रिस्तेदार-संबंधी था १ जो उसमें असर नहीं हुआ और जैनमें हो गया, दूसरी यह मिथ्यांधता है कि जैनधम जैसे पाक अस्टोंको मानने-वाले उस समयके-ईस्वीसन् आठवी शताब्दिके यतियोंमें इतनी पवित्रता थी कि वे किसी तरहसे मांस बलिदान जैसे अधमकर्त्तव्यको कर हो नहीं सकते थे तथापि उनमें विना प्रमाण मांस बलिदानका रीवाज लिख मारा, आधार वगैर ंआधेय हो ही नहीं सकता, क्यों कि जब तांत्रिकमतमें जैनोंकी अभिरुचि किसी भी प्रमाणसे किसो कालमें भी सा-बित नहीं होती तो फिर उस मतकी नीचक्रियाका तो होना ही असंभाव्य है, हाँ, व्यक्तिगत दोष संभाव्य हो सकता है परंतु समष्टि आश्रित जैनसमाजमें तांत्रिकमतकी असर लिखनी ऐसा है जैसे ठक्कुर कहे कि---'' मम माता वंध्या-सीत '' अर्थात् मेरी माता वंध्या थी, क्यों कि उस समयमें -ईस्वीसन्की आठवी शताब्दिमें चैत्यवास करनेवालोंका अस्तित्व था और वो कितने ही काल तक चला, इनकी इस **शिथिऌताका भी बडे जोरो शोरसे उस वख्तके त्यागी म्र**ाने-ओंने खंडन किया था जिसका जिक शास्त्रोंमें आता है, ऐसे ही अगर तांत्रिकवादियोंकी दुकडी जैनमतमें उत्पन्न हुई होती तो अवक्ष्य उसका भी खंडन उस वक्त ग्रुद्धकिया करनेवाले महात्मा लिखतें मगर ऐसा जिक्र कहीं भी नहीं देखनेसे ठक्कुरकी यह द्वेषमय प्रवृत्ति है और ऐतिहासिक विष-

यकी बिलकूल अनभिइता ही सिद्ध होती है, तिसरी मिथ्यां-धता यह है कि तांत्रिकमतके असरसे भ्रष्ट जैनसाधुओंसे भिन्न होनेके छिये पीतवस्त्रकी कल्पना करते हैं, पीतवस्त विक्रमकी अठारहवी **शताब्दिमें मात्र आंतरिक सामान्य** बाब-तसे धारण किये हैं, उसको ईस्वीकी आठवी शताब्दिमें महा-असत्य दोषारोपण करनेमें हेतुरूप बतलाना यह कितनी अज्ञानताकी बात है ? सो विचारशील पाठक गण विचार करेंगे, " उस समय श्वेतांबर दिगंबर और स्थानकवासी मुख्य विभाग थें " यह बात लिख कर तो अच्छे अच्छे इति-हासब्नोंके भी कान काट लिये, वाह ! रे ! वाह ! इतिहास-ज्ञोंकी पंक्तिमें नाम रखनेवाले ठक्कुर ! वाह !, जिस वक्त जिस समाजका नाम निशान भी नहीं था उस समयमें उस समाजके उह्रेख करनेवाळेमें असत्य छिखनेका लेब भी डर हो ऐसा कौन बुद्धिमान् मान सकता है ?, जरा अक्वरके वख्तकी तवा-रीखकी गर्ज़ सारनेवाली ' आईनअक्बरी ' देखी होती तो भी माऌम हो जाता कि उस वख्त तो क्या मगर अक्वरके वक्तमें भी ढूंढकसमाज नहीं था, अस्तु, जिसने महामिथ्या-त्वके नशेमें सन्निपात ज्वरितकी तरह ज्यूं आवे त्यूं प्रमाण वगैर लिखना है उसको ऐतिहासिकप्रमाण मिले चाहे न मिले क्या प्रवा है ?, जैसे इसी किताबके ४४-४५ वे पृष्ठ पर छिख दिया है कि—'' વલ્લભીનગરમાં તે વેળાઐ અનેક બૌદ્ધવિહારા અને જૈનમંદિરા અસ્તિત્વ ધરાવતાં હતાં અને તે સર્વ ધર્માંસ્થાનને બદલે અધર્મનાં સ્થાનો થઇ પડેલાં **હે**।वाथी " ઇत्याहि, यहां पर बुद्धिमान लोक तुरत ही समज जायंगे कि ठक्कुरकी द्वेषप्रणालिकामें कितना गंदा पानी

ें बिन प्रमाण बहता है कि पवित्र जैनदेवालयोंमें अद्यावधि ऐसा अनुचित वर्त्ताव कदापि न होनेका जैनेको ही नहीं बल्के मध्यस्थ इतिहासइ जैनेतरोंको भी पूर्ण विश्वास है और जैनेतरोंके मंदिरोंमें रात्रिको जल्दी उठ कर स्त्रीयोंका जाना और वहां कृष्णलीलाका अनुभव लेना मध्यस्थ जैनेतर भी कबूल करते हैं ऐसे उनके कृष्णालय शिवालय तो तांत्रिक-मतके असरसे खाली रह गये और धर्मस्थान ही बने रहे और बौद्ध तथा जैनमंदिर अधर्मस्थान हो गये थे, द्वेषकी भी कुछ सीमा है, वाहरे ! मिथ्यात्व ! तूं तो सचमुच उल्छ ही बना देता है, अन्यथा प्रकाज्ञको अंधकार और अंधकारको प्रकाश कैसे कहें १, भला ! जिस शंकराचार्यको जैनमतके तच्वकी गैंध भी नहीं लगी थी ऐसा उनके जैनतत्त्वों पर छिखे हुए विवेचनसे सिद्ध होता है, उस इंकराचार्यके नामसे जैन भडके यह सफेद झूंठ नहीं तो और क्या है १, पृष्ठ ५२ पर '' एक यतिने बछभोनगरके मध्यमें रहे हुए शिवालयको तुडवाकर और उसके बराबर चांदी देकर जैनमंदिर बनवाया " यह बेपायेदार बात लिखी है ऐसा हमारा अनुभव इमको साक्षी देता है और यह लेख दूसरे लोकोंको भडकानेके लिये लिखा गया हो ऐसी कल्पना करता है, टक़ुर शंकराचार्यके रंगमें ऐसे रंगे गये हैं कि उनकी तारीफके पूल बांधनेके लिये ही ज्ञायद यह नोवेल रचा गया **हो तो भी अत्युक्ति नहीं मगर साथ**ंपे उनको नहीं माननेवाले बौद जैनको खूब बुरा भला न कह लेवे वहां तक वो पूल मजबूत नहीं बन सकता था, अतः वो भी काम कर लिया ^पवित्र जैनधर्मको वाममार्गका समूलोच्छेद करनेवाले जैनधर्मको

वैदिक हिंसाके कारन वैदिकतत्त्वको नहीं माननेवाले जैन-धर्मको वाममार्गीओंका असर हुआ " इत्यादि लिख कर वैरानल ज्ञान्त किया, अस्तु, कुछ हानि नहीं, इमारें 'ठक्कुर' शांत तो हुए, इतनी ही हमको ख़ुशी मानना चाहिये, वेश्वक, खुज्ञ होना चाहिये मगर उनकी इस पाप कर्मसे होनेवाळी बुरी गतिका खयाल खुग्न नहीं होने देता, तथा ४२-४३ वें αુષ્ર વર—'' શંકરાચાર્યને તેમની માતાના એક વર્ણશંકર સંતાન તરીકે આળખાવે છે. અને તેમની માતા શ્રીમહાદેવીને વર્ણશંકર પ્રજાને ઉત્પન્ન કરવાના અપરાધ માટે જાતિ બહિષ્કૃત થવું પડ્યું હતું એમ જણાવેલું છે, પરંતુ આ વિધાનમાં અધિક સત્યાંશ હેાય એવી અમારી માન્યતા નથી. " ઈત્યાદિ, एसे अपने माने हुए विषयमें दोष आवे तो ' અभारी भान्यता नथी ' ऐसा लिख देना और मेरुतुंगाचार्य महाराजने शिला. दित्यको जैनराजा छिखा है इस सत्यांश्वको भी अपनी मनोकल्पनासे विरुद्ध होनेके कारण कह दिया किं काल्पनिक है, पक्षपातकी भी कुछ इद है !, अरे मिथ्यात्व ! तूं क्या क्या नाच नहीं नचाता ?, भगवन् ! वे लोक भी वस्तुको वस्तु समझ कर रास्ते पर आवे और सत्य द्वेषको जलांजलि देवे यही अभिलाषा है लो अब टाईम बहुत हो गया है इस लिये अब तो बुन्द रखते हैं.





चोह थे दिन सुरीश्वरजी महाराजने माभातिक कृत्योंसे निष्टत्त हो कर जब अपने स्थानको सुशोभित किया तव वह श्रद्धाशील श्रावक महाशय भी आ पहूंचा, विधि सहित वंदन करनेके बाद हाथ जोड सन्मुख बैठ गया और कहने छगा कि पूज्यपाद गुरुदेव ! आपने जैसी आगे इस दास पर कृपा की है ऐसे आज भो करें और आगेका वर्णन सुनावें.

सूरश्विरजी—पद्मपुराण प्रथम सृष्टिखंड अध्याय १७ वे के ५० वे पत्र पर जिकर है कि—

ब्रह्माजीने दूसरी स्त्री कर ली, जिससे प्रथमकी स्त्री सावित्री कुद्ध हुई, ब्रह्माजीने उसके चरणोंमें ज्ञिर धरा इत्यादि, देखो---

" पत्नीं विना न होमोऽत्र, शीघ्रं पत्नीमिहानय । शकोणैषा समानीता, दत्तेयं मम विष्णुना ॥ ४२ ॥ गृहीता च मया सुभ्र !, क्षमस्वैतं मया कृतम् । न चापराधं भूयोऽन्यं, करिष्ये तव सुत्रते ! ॥ ४३ ॥ पादयोः पतितस्तेऽहं, क्षमस्वेह नमोऽस्तु ते । एवम्रुक्ता तदा कुद्धा, ब्रह्माणं शप्तुम्रुद्यता ॥ ४४ ॥"

भावार्थ—स्नीके वगैर यहां होम नहीं हो सकता तब मैने ग्रहण की, हे अच्छी भ्रूवाली !, हे अच्छे व्रतवाली ! मेरे अपराधकी क्षमा कर फिर ऐसा नहीं करुंगा ॥ ४३ ॥ हे देवि ! तेरेको नमस्कार हो, मैं तेरे चरणोंमें पडा हूं, क्षमा कर, ऐसे कहे जाने पर भी कुद्ध होकर ब्रह्माजीको श्वाप देनेको उद्यत हुई ॥ ४४ ॥

यह बनाव ब्रह्माजीको किस दर्जेके कामी साबित करता है ? सो इमारे पाठक स्वयं समझ जायेंगे और ऐसे स्त्रीओंके पांचर्मे पडनेवाले और भागवत तृतीय स्कंध अध्याय ३१ के पत्र ९८ के ३३ वे श्लोक—

" प्रजापतिः स्वां दुहितरं, दृष्ट्वा तद्रूपधर्षितः ।

रोहितभूतां सोऽन्वधाव-दृक्षरूपी हतत्रपः ॥ २२ ॥"

के अनुसार अपनी पुत्रीके साथ भी भोग करनेको तत्पर होनेवाल्रे, शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय १८ स्ठोक ६२ -६३-६४ वे में---

" प्रदक्षिणं तथा चाग्ने-श्वतुर्धा च कृतं तदा । ब्रह्मणः स्खलनं जातं, शिवांगुष्ठप्रदर्शनात् ॥ ६२ ॥ तद्गोपितं तदा तेन, खुत्संगे पतितं च यत् । ततो जातास्त्वसंख्याता, बदुका ब्रह्मसूत्रकाः ॥ ६३ ॥ जटादंडधरास्ते च, बद्धकच्छाः सहस्रशः । नमस्कृत्य च ब्रह्माणं, स्थितास्ते तु तदग्रतः ॥ ६४ ॥ "

लिखे ग्रुजब महादेवजी के लग्नमें पार्वतीके अंगुठेके रूपको देखकर अति कामसे वीर्य निकाल देनेवाले परमात्मा है या कामात्मा ? सो भी विचार लेंगे, हमको सख्त अफसोस इन ग्रंथोंके रचनेवालों पर है कि जिसे मश्च मानते हैं उसे ऐसे चरित्र लिख कर पामर बना डाला है और मिध्यात्वने पूरी सहायता दी है जिससे अपने गड्ठेको अभी तक चलाये जाते हैं भन्यथा जरा भी विज्ञान-

(808)

वाला मनुष्य हो तो तुरत समज सके कि अरे ! ये लोक क्या गप्पे हांक रहे हैं, देखिये ?, शिवपुराण विद्येश्वर संहिता अध्याय ६ वे में लिखा है कि-एक दिन ब्रह्माजी ऋष्ण-जीके पास गये, सोते हुए ऋष्णको कहा, अरे ! क्यों सोता पडा है ?, तूं उन्मत्त जैसे दिखता है, में तेरा नाथ आया हुं और तूं आराधना नहीं करता, इससे तूं प्राय-श्वित्तविधिके योग्य है, इस बातको सुन कर कुपित छष्ण कहता है, वत्स ! आ, इस पीठ पर बैठ, तब ब्रह्माजी बोले, अरे ! काल्योगसे मानमें आ गया है, हे वत्स ! में ही तेरा त्राता हूं और जग़त्रक्षक भी में ही हूं, विष्णु कहता है में हूं, वो कहता है मैं प्रश्च और वो कहता है में, इस प्रकार 'हूं' 'तूं' करते करते लड पडे, एक एकको जानसे मारडालनेको भी तत्पर हो गये, आखिर ऐसा युद्ध हुआ कि देवता भी भयभीत होकर शिव चरण के ज्ञरणमें गये.

अब बतलाईये ! क्या ये दातें उनको परमात्मा सावित करती हैं कि पामरात्मा ?, अगर कहा जावे कि ये तो सब कल्पित पुराणोंके गप्पे हैं इससे हमारे धर्ममें क्या हानि ? तो भी भूल है, क्यों कि जिन लोकोंने ऐसे काम करने-वालोंको भी परमात्मा कबूल किया, उन लोकोंने वेद वेदां-गादि सब ही प्रन्थोंको कल्पित ही रच लिया हों तो उसमें संदेह ही क्या है ?, अर्थात् ऐसे लेखकोंकी जहां पर व्याख्या ओंकी गंध भी हो वहां सत्यतत्त्व लेशमात्र भी नहीं ठहर सकता, वास्ते बाह्मणग्रंथोंसे हाथ ग्रंह धोकर जिन जास्नोमें जरा भी ऐसी मनोकल्पनाको स्थान नहीं मिला उन लास्नोमें प्रेमबद्ध होकर आत्मोद्धार कर लेना चाहिये, मगर क्या करें ? यह षडी कठीन बात है कि सत्तशास्त्रकी तर्फ प्रेम बढे. प्रथम तो—" दृष्टिस्नेहो हि हुस्त्यजः" यह बात अक्षरशः सत्य है, अगर किसी तरहसे किसीका दिल सत्यशास्त्रोंकी तर्फ हो भी जाय तो उसके प्रतिबंधक वर्णन ऐसे कल्पित बना लिये हैं कि दूसरेका दिल जमे ही नहीं. देखिये— शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय २१ वा जिस्में लिखा है कि—

उत्पन्न करके दैत्योंको खोटा उपदेश देना,-यानि उन्हे वेद-धर्मसे रहित करना ऐसी आज्ञा की, इस आज्ञाको पाकर उस मायावी पुरुषने इजारों दैत्योंको वेदधर्मसे अष्ट किया, इत्यादि वर्णन है जिसके पढनेसे यही माऌम होता है कि इस पुराणको रचनेवाल्टोंने किसी तरह लोक जैन तच्चोंको सुनकर सावधान न हो जावे इस, वास्ते प्रथ-मसे ही यह कल्पना कर ली कि जैनवर्ष पायापुरुषका चलाया हुआ है और दैत्योंको दुर्गति देनेके छिवे ही रचना हुई है. भला ? इस बातको कौन सत्य मान सकता है ? कि मायावीपुरुष ऐसे सत्यतत्त्र कथन कर सके कि जिसके साथ टकर लेनेमें दुनियांके समस्तधर्म असमर्थ हैं, अगर पक्षपातको जल्लांजलि देकर विचार करेंगे तो साफ तौर पर माऌम हो जायगा कि अपने कल्पित मार्गकी कलइ (पोछ) ना ख़ुल जावे, इस लिये सत्यमार्गके लिये यह बनावट खडी कर दी है, जिसको पढकर अविचारक वर्ग कदापि जैनधर्मके समीप भी ना जावे और इमारा कल्पित मार्ग हमेशह निरंतराय बना रहे ऐसे ही इरादेसे भागवत पंचमस्कंध अध्याय ६ के पत्र २० वे में भी ऐसी 98

ही कल्पना की है सो सर्वथा अयौक्तिक है. ऐसे ही पदा-पुराण प्रथमसृष्टिसंड अवतारचरित नाम त्रयोदशवें अध्या-यमें ऐसा वर्णन है कि -बृहस्पतिने ऋष्णका चिंतवन किया, क्रुष्णजीने मायावीपुरुष पैदा कर दिया और कहा कि यह मायापुरुष सकलदैत्योंको वेदधर्मसे अष्ट कर देगा. आगे चलकर इस मायापुरुषके वेषका वर्णन किया है सो दिगंबर वेष है, इससे साबित होता है कि पद्मपुराणका कर्ता दक्षिण देशमें हुआ होगा, क्यों कि वहां दिगंबरोंकी पुष्कळ वस्ती है. शिवपुराणके कत्ताने जो मायावी पुरुषक[ा] भेष वर्णन किया है सो श्वेताम्बरके अनुक्रूछ है इससे उसका कत्तां गुजरात मारवाड आदि जहां श्वेताम्बरोंकी घीच वस्ती है वहांका होना चाहिये, इससे पुराणोंका कर्त्ता एक ही व्यास है यह प्रथा असत्य सिद्ध होती है. और पर-स्पर इतने विरोध आते हैं कि तटस्थ होकर विचार करें तो तुरत ही समझ जाय कि यह अल्पन्नोंके कल्पित कथन हैं और सर्वज्ञका कथन कहीं अन्यत्र ही है.

भागवत दश० स्कंध उ० अध्याय ६३ वे में शिवजी और कृष्णचंद्रजीका परस्पर युद्ध होनेका बयान है. जिस युद्ध के देखनेसे उन दोनों देवोंमें दया ज्ञान शक्ति और मध्यस्थ ताका अभाव साचित होता है, जिससे वे परमात्मा किसी तरहसे साचित नहीं होते हैं.

अब ब्राह्मणलोग मांस खाते थे, हिंसा करते थे, दूसरोंको इन बातोंका उपदश करते थ, मांसादि भोजन देने-वालेकी प्रशंसा करते थे, श्राद्धमें मांस विधेय है ऐस। कथन करते थे. और न खानेवालेको नरकमें भेजते थे सो स्मृति इति- हास पुराणादि शास्त्रोंसे दिखाते हैं, देखकर विचार कर लेन कि ये वातें शास्त्रत्वको सिद्ध होने देती है या रोकती हैं ?. पद्मपुराण प्रथमसृष्टिंखड अध्याय ३३ के पत्र ९७ वे में वर्णन है कि ऋषिलोगोंने रामचन्द्रजीको उप-देश दिया कि तुम-राजा दशरथका श्राद्ध करो, जिस्में पवित्र मांस तथा धान्यादिसे ब्राह्मणोंको भोजन करा श्रो, इत्यादि. देखो---

" अमी च ऋषयः सर्वे, तव भक्ताः क्रतक्षणाः। अहं च जमदग्निश्च, भारद्वाजश्व लोमशः ॥ ७७ ॥ देवरातः शमीकश्च, षडैते वै द्विजोत्तमाः । श्राद्धे च ते महाबाहो !, संभाराँस्त्वग्रुपाहर ॥ ७८ ॥ मुख्यं चेंगुदिपिण्याकं, बदरामललकैः सह। श्रीफल्लानि च पकानि, मूलं चोचावचं बहु ॥ ७९ ॥ मार्गेण चाथ मांसेन, धान्येन विविधेन च। तृप्तिं प्रयच्छ विप्राणां, श्राद्धदानेन सुत्रत ! ॥ ८० ॥ पुष्करारण्यमासाद्य, नियतो नियताज्ञनः । पिप्टुँस्तर्षेयते यस्तु, सोऽश्वमेधमवाप्नुयात् ॥ ८१ ।। स्नानार्थं तु वयं राम !, गच्छामो ज्येष्ठपुष्करम् । इत्युक्त्वा ते गताः सर्वे, मुनयो राघवं नृप ! ॥ ८२ ॥ लक्ष्मणं चाबवीद्रामो, मेध्यमाहर मे मृगम्। शुद्धेक्षणं च शशकं, कृष्णशाकं तथा मधु॥ ८३॥ परिपकं च जानक्या, सिद्धं रामे निवेदितम् । स्नात्वा रामो योगवाप्यो (१), ग्रुनींस्ताननुपाल्लयन् ॥८४॥'' इत्यादि---

उपरके लेखसे अच्छी तरहसे सिद्ध हो गया कि ऋषि बाह्मणलोग अपने ग्रुंहसे कहकर मांसका खुराक भो खाया करते थे जैसे रामचंद्रजीसे उन लोगोंने कहा, उन्होंने लक्ष्म णजीसे कहा कि मांस वगैरह भोजनकी सामग्री तैय्यार करो, उसी वरूत लक्ष्मणजी खरगोश आदि जानवरोंको मारकर ले आये, दूसरी सामग्री भी तैय्यार की, तब सीताजीने रसोई बनाई, ऋषि बाह्मणलोग जमदग्नि भारद्वाज आदि स्नान करके आये और उस पूर्वोक्त भोजन को जिमकर दक्षिणा लेकर चल्ठे गये.

पद्मपुराण प्रथम सृष्टिखंड अध्याय १० वे के पत्र २१ वे में बयान है कि—

कैाशिकऋषिके सात पुत्रोंने गौको मारा और श्राद्ध करके उसका मांस भक्षण किया. देखो— उस विषयका उल्लेख श्लोकोंमें यूं किया है— " तदा गत्वा विश्वङ्कास्ते, गुरवे च न्यवेदयन्। व्याघ्रेण निहता धेनु-र्वत्सोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ ५७ ॥ एवं सा भक्षिता धेनुः, सप्तभिस्तैस्तपोधनैः । वैदिकं बल्लमाश्रित्य, कूरे कर्मणि निर्भयाः ॥ ५८ ॥"

भावार्थ कि—गौका मांस खाकर शंका विहीब हो-कर गुरुको निवेदन करने लगे, हे गुरुदेव ! गौको व्याघ्र खा गया और यह बछडा बच गया है सो प्रहण करो, इस तरहसे उन सातोंने वैदिक बलका आश्रय लेकर कूरकर्ममें निर्भय होकर 'गौ 'को खा लिया. इस पाठका यहां पर उल्लेख करनेसे यह मतल्लब है कि ऐसे इत्यारे कर्म करनेमें भी वैदिकक्ष्ी इमने यह किया है, ऐसा विचार; एक तो चोरी और उसके साथ सीना जोरी जैसा मामला है, उस वेदमें धर्ममार्ग है ऐसा कौन कबूल कर सकता है ?.

" आब्रह्मघोषोर्जितयज्ञवैशसं,

् विमर्षिजुष्टं विबुधैश्व सर्वज्ञः ।

मुद्दार्वयःकांचनदर्भचर्मभि—

र्निः सृष्टभांडं यजनं समावित्रत् ॥ ६ ॥ "

भावार्थ कि—जहां चहूं औरसे बाह्मण लोग वेद-ध्वनि करके यज्ञके पशुओंको मार रहे हैं तथा पूजन कर रहे हैं, चारों और देवता क्रिाजमान हैं, मृत्तिका काष्ट लोहा सुवर्ण कुज्ञ और चर्म इनके बनाये हुए पात्र जहां पर यज्ञ-ज्ञालामें धरे हैं, उस यज्ञमें सती पहुंची ॥ ६ ॥

जिस समय ब्राह्मणलोग अपने ही हाथोसे ऐसे काम करते थे, उस वरूतके ब्राह्मणोंने धर्मसे हाथ धोया था, इस लिए उनके सहवासमें रहनेवाले भी धर्मसें विग्रुख ही रहे, इतना ही नहीं अधर्मकार्यमें द्रव्य सहाय कर अधोगति के भी पात्र बने, उन लोगोंने जो ग्रन्थ नये लिखे हैं. और पुराणे ग्रंथोंके टीकारूप मार्ग बनाये हैं, उनके अवलंबनसे अब तक भी जो लोग उनके वचनोंको सत्यरूप मानकर अंधेरे मार्गमें चले जाते हैं, अधोगतिके पात्र बनेंगे. परंतु इमारे इस लेखसे किसी भी जीवका उल्क्षेत्र हो और सन्मार्गमें चले यही इरादा हमें इस कार्यको करा रहा है, नहीं तो कितने ही भोले श्रदाख़ इस पुस्तकसे भडकेंगे और हमको इस विषयमें कित-नोक बाबत सहन भी करनी पडेगी, ऐसे जानते हुए हम इस प्रयत्नको कदापि नहीं कर सकते थे.

महाभारत बन पर्व अध्याय २०८ वे में---

" राज्ञो महानसे पूर्वं, रन्तिदेवस्य वै द्विज ! । द्वे सइस्रे तु वध्येते, प्रज्ञूनामन्वह तदा ॥ ८ ॥ अहन्यहनि वध्येते, द्वे सहस्रे गवां तथा । समांसं ददतो द्वन्नं, रन्तिदेवस्य नित्यज्ञः ॥ ९ ॥ अतुल्ठा कीर्तिरभव- न्नृपस्य द्विजसत्तम ! । चातुर्मास्ये च पश्चवो, वध्यन्त इति नित्यज्ञः ॥ १० ॥ "

भावार्थ--हे बाह्मण ! रंतिदेव राजाके महानस-रसोडेमें निरन्तर दोहजार अन्य पशु और दोहजार गाएं मारी जाती थीं और इमेग्नइ मांसके साथ अन्न दिया जाता था, जिससे उस राजाकी अतुऌकीर्ति सर्वत्र फैळी हुई थी.

देखिये ! कैसी बुरी बात है ? और वैदिकोंके शास्त्रोंकी अस्त व्यस्त व्यवस्था कैसी बिगड गइ है ?, एक तरफ गौ रक्षाका उपदेश और एक तरफ दोइजार गाएं मरानेवाले रंतिदेवकी अतुल्कीर्चि हुई थी कहकर पापकर्मका अनुमोदन करना कितने अफसोसकी बात है ?.

अगाडीके स्ठोकोमें बाह्मणलोग अपने हाथोंसे पशुओंका वध करते थे ऐसा उछेख है तथा बाह्मणको मांस लेनेका विधान है, इन वातोंसे दयाका अभाव आर हिंसाका भाव वतलाता हुआ यह विधान इन शास्त्रोंको छुशास्त्ररूप साबित करता है, अरे ! पुराणोंको छोड दो, वेदोंमें भी कहां कमी रक्खी है, देखो-शंक दिग्विजयके २६ वे प्रकरणमें आनंदगिरि लिखता है कि---

" पशुहिंसा श्रुत्याचारतत्परैरंगीकरणीया, हिंसा कर्त्तच्येत्यत्र वेदाः सहस्रं प्रमाणं वर्त्तते, ब्रह्म-क्षत्र-वैश्य-शूद्राणां वेदेतिहासपुराणाचारः प्रमाणमेव, तदन्यः पतितो नरकगामी चेति अग्निष्ठोमादिकतुः छागादि पशुमान् यागस्य धर्मत्वात् सर्वदेवतृप्तिमूलकत्वाच्च तद्हारा स्वर्गादिफलटदर्शनत्वाच्च."

इस उपरके पाठमें लिखा है कि इजारों श्रुतिएं हिंसा करनेका आदेश करती हैं, इस लिये वैदिकहिंसा कत्त्र्च्य है, इस लिये वेदकी भी हजारो श्रुतिएं हिंसामयी पुराणके छेखको सिद्ध करती हैं ऐसा साबित हुआ, अब बुद्धिमानोंको विचार करना चाहिये कि जहां पर मूल प्रंथ उत्तरग्रंथ सभीमें ऐसी कूर बातें लिखी हों उन प्रंथो पर चल्लेवालोंका भला कैसे हो सके ?. अगर कोई कहे कि उन बातोंके उल्लेखवाले पाठोंको छोड कर अच्छो बातें जिन पाठोंमें लिखी हों उन पाठोंको छोड कर अच्छो बातें जिन पाठोंमें लिखी हों उन पाठोंको ठीक माने फिर तो कल्याण हो सकता है, ? तो यह कहना भी ठीक नहीं, क्यों कि विषमिश्रित अन्नको पृथक् कर भक्षण करनेवालेको जैसा उसका पृथक्करग दुर्घट माऌम होता है और मक्षणसे मरणका अनुभव करना पडता है, ऐसे ही मिथ्यामोहितोंके रचे हुए शास्तोंके विषयमें भी समझ लेना चाहिये. देखियेेेेे पद्मपुराण क्रियायोगसारे सप्तमखंड गंगा सामरसंगम माहात्म्य वर्णन नाम अध्याय ६ पत्र १४ वे में लिखे हुए श्लोकसे भी वेदोमें हिंसा करना साबित है. देखों----

'' वेदा विनिन्दिता येन, विलोक्य पशुईिंसनम् ।

सक्रपेन त्वया येन, तस्मै बुद्धाय ते नमः ॥ "

भाव।र्थ---वेदोंमें पशुओंकी ईिंसाका बहुत बयान-होनेसे विष्णुने पशुओंकी हिंसाको देखकर पशु पर दया लाकर बुद्धावतार धारण किया और वेदोंकी निन्दा की.

इस पद्मपुराणके पाठसे भी वेद हिंसककियाके निरू-पक सिद्ध हुए, ऐसे ही----

देवीभागवत महापुराणके प्रथम स्कंधके १८ वे अध्यायमें शुकजीने राजा जनकसे जो कथन किया है, उस कथनसे भी वेदोंमें जानवरोंका मारना, मदिरा पान करना, जुआ खेलना, मांस भक्षण करना इत्यादि साबित होता है, तथा यह्नमें इतने जानवर मरते थे कि जिनके चमडोंका पहाड बन जाता था.

पद्मपुराण त्रस्रखंड ४ अध्याय १२ वेमें गालव नामके सुनिने नरमेध यज्ञ करनेका उपदेश किया है, बारवा अध्याय इसी विषयको वर्णन करता है, इससे सिद्ध होता है कि बाह्मणोंके ऋषिलोग नरमेध यज्ञ (मनुष्यका मारने)को भी अत्यंत ही अच्छा मानते थे, ऐसी बडी बडी हत्याओंका उपदेश जिन शास्त्रोंमें किया है उन शास्त्रोंको सत्य मानकर वेद बडे हैं, बडे हैं, ऐसे पुकारे जाना क्या फायदा १, ये लोग ऐसी विपरीत बातोंको देखते की पा उन्से कटनेका पयरन नहीं करते थे, इतना ही नहीं बल्के सत्यधर्मका जिनमें कथन था ऐसे परमपवित्र आईतज्ञास्त्रोंको भी क्रुज्ञास्त्र लिखते थे

देखो - कूर्मपुराण पूर्वार्द्ध देव्या माहात्म्य नामक अध्याय १२ के पत्र २२ वे में नीचे लिखे हुए श्लोक हैं ---

"न च वेदादते किंचि च्छासं धर्माभिधायकम् । योऽन्यत्र रमते सोऽसौ, न सम्भाष्यो द्विजातिभिः ॥ २६० ॥ यानि शास्त्राणि दृश्यंते, छोकेऽस्मिन् विविधानि तु । श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि, निष्ठा तेषां दि तामसी ॥ २६१ ॥ कापाछं भैरवं चैव, यामछ वाममाईतम् । षवं विधानि चान्यानि, मोहनार्थानि तानि तु ॥ २६२ ॥ ये कुश्वास्त्राभियोगेन, मोहयन्तीह मानवान् । मया सृष्टानि ज्ञास्त्राणि, मोहायैषां भवान्तरे ॥ २६३ ॥ "

भावार्थ — वेदके सिवाय धर्म कथक कोई शास नहीं है जो वेद सिवायके धर्मको मानता है उसके साथ संभाषण करना बाह्मणको मुनासिब नहीं है ॥ २६० ॥ श्रुति स्मृति विरुद्ध जो शास्त्र छोगोंमें दिखते हैं सो तामसी हैं ॥ २६१ ॥ वापालिक भैरव यामल वाम तथा आईत-जैन दर्शन ये सब लोगोंको व्यामोह पैदा करानेवाले हैं ॥२६२॥ जो लोग कुशा-स्रके योगसे मनुष्योंको मोहित करते हैं उनको भवांतरमें क्रमा-द्विक दरेनके लिये मैंने ही उन कुशास्त्रोंको बनाप् अब विचारना चाहिये कि, जिल हमने यहां नहीं मारनेका, धाराब पीनेका, जुआ

ć

मार मार कर उनके चमडोंका पहाड बनानेका जिकर हो उन शास्त्रोंको कुशास्त्र कहना चाहिये कि अहिंसामय परम-पवित्र जैनशास्त्रोंको ?. जिन लोगोंकी बुद्धिका इतना* विपयेय हो गया हो कि, सुन्नेको पीतल और पीतलको सुन्ना कहे उनके वचन पर विश्वास करना अकलमंदोंका काम नहीं.

पायशः बाह्मणछोगोंने अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये ही ब्राह्मणग्रंथ बनायें हैं. जैनग्रंथ परमार्थमार्गको दिखाते हैं. इन ग्रंथोंके पढनेसे विवेकचक्षु प्रफुल्लित होने पर लोग हमारी पोछ देख न ले इस लिये उन्होंने जैनमतके लिये बुरा भला लिख कर लोगोंको उस सत्यमार्गसे वंचित रक्तवा है.

दे**खो उनके स्वार्थपोषक कथनका नमूना**--

वराहपुराण—अगस्त्यगीता सुज्ञान्तिव्रत नामके ६० वे अध्यायमें लिखा है कि—

" एवं संवत्सरस्यान्ते, बाह्यणान् भोजयेत् ततः । "

भावार्थ इस प्रकार सुशांतिव्रत करके वर्षकी अंतमें बाह्यणोंको जीमाना चाहिये । इत्यादि अनेक अध्याय इस वराइपुराणमें लिखें हैं, उनमें प्रायः करके अमुक व्रत करके

* देखो उनकी बुद्धिभि प्रथका नमुना-शिवपुराणमें गणपतिकी उत्पत्ति पार्वती के मेळसे लिखो हैं और वराहपुराण के २२ वे अध्यायमें अधिक मुखसे लिखी है और लिखा है कि, उसके रू को देख आसा, जोद्दित हो गई, जिससे महादेवजीको कोघ आया और अत्यंत ही जन शास्त्रोंमें पेसे विरुद्ध वर्णनवाळे पुराणादि प्रंथोंको बेद बडे हैं, बडे हैं, ऐसे पुद ब्राह्रणको अमुक वस्तुका दान देना और अमुक व्रत करके अमुक, सो दिखाते हैं.

चराइपुराण श्वेतविनीताश्वोपाख्यान तिल्रधेनुदान माहात्म्य नामके ९९ में अध्यायमें बाह्मणको तिल्रोंकी गौ बना कर देनेका जिकर है—

विनीताश्वोवाच-

" कथं सा दीयते बह्यँ -स्तिल्धेनुजिगिषुभिः । भुंक्ते सर्वां च विप्रेन्द्र!, तन्ममाचक्ष्वपृच्छतः ॥ ९० ॥" होतोव।च—

विधानं तिलवेनोश्च, त्वं शृणुस्व नराधिष !। चतुर्भिः कुडवैश्वैव, प्रस्थ एकः प्रकीर्त्तितः ॥ ९१ ॥

सा तु षोडशभिः कार्या, चतुर्भिर्वत्सको भवेत् ॥ नासा गंधमयी कार्या. जिढा गुडमयी शुभा ॥ ९२ ॥ पुच्छे प्रकल्पनीया सा, घंटाभरणभूषिता । ईदर्शी कल्पयित्वा तु, स्वर्णशृंगीं च कारयेत् ॥ ९३ ॥ कांस्यदेहां रोप्यखुरां, पूर्वधेनुविधानतः ।

क्रम्बा तां बाह्मणायाशु, दद्याचैव नराधिप ! ॥ ९४ ॥"

सारांश कि—विनीताश्वने कहा कि, तिल्घेनु किस तरह दी ज़ाय जिससे स्वर्ग फल प्राप्त हो, तब होताने जवाब दिया सोलह शेर तिलोंकी बनानी और चार शेरका बछडा, उसके ट्रांम स्वर्णके बना कर चांदीके खूर रैत्नोंके डोरेके साथ

१ रत्न शब्द आगेके स्ठोकमें है सो स्ठोक हमने यहां नहीं उद्धत किया है, ब्राह्मणको देवे, देखिये ! कुछ कसर रक्खी है ?, सोना चांदी रत्न वगैरह सब सामग्री लिख दी, अरे ! यह बात तो दूर रही परंतु इसी घराहपुराणके ६८ वे अध्यायमें—" चतुर्गामी भवेद् विनः " ब्राह्मण चारों वर्णकी स्त्रीओंका गमन कर सकता है वहां तक भी लिखा गया है.

इस पुराणमें लिख ते हैं कि रुद्रने विष्णुकी तारीफकी और सर्वसे उत्तम देव उसकोि कहा, और शिवपुराणमें लिखते थे कि विष्णुने महादेवजीकी तारीफ करी, और उनकुं इडा माना, क्या इससे पुराणोंकी काल्पनिकता सिद्ध नहीं होती ? ।

बराहपुराण श्वेतविनीताश्व उपाख्यान नामके सौवें अध्यायमें जलघेनु देनेकी विधि है, जिसमें भी पांच पाणीके घडेमें रत्न डालने लिखे हैं, लोभका भी कुछ सुमार है?, ऐसे लोभी उनके स्वार्थनाशक परमार्थपथप्रकाशक वैराग्यमार्ग विकाशक और मोक्षमार्गके पोषक जैनधर्मकी तारीफ कैसे कर सकते हैं ?.

वराहपुराण श्वेतविनीताश्व उपाख्यान रसधेनुदान बाहारम्य नामके १०१ वे अध्यायमें लिखा है कि—

" रसघे**बुविधानं** ते, कथयामि समासतः ।

🕗 अनुलिप्ते महीपृष्ठे, ऋष्णाजिनकुशास्तरे ॥ १ ॥

१ रुद्रगीता सुवैराजवृत्त नामके ७३ वे अध्यायमें.

1 - C

रसस्य तु घटं राजन् !, सम्पूर्णं त्वैक्षवस्यतु । तद्वत् संकल्पयेत् प्राज्ञ-श्रतुर्थाज्ञेन वत्सकम् ॥ २ ॥ " इत्यादि ।

भावार्थ-रसकी गौके दानका विधान संक्षेपसे कहता हूं, लिंपी हुई तथा ऋष्ण वर्णका चर्म और दर्भ जिसमें बीछाया है ऐसी भूमीमें इक्षुरसका घडा रखना, इसी तरह बुद्धिमान् चौथे भागमें बछडेकी वल्पना करे ॥ १-२ ॥ इत्यादि रसकी गौको देनेकी विधिमें भी सोनेके सींग वगैर-हका वर्णन आता है, मतल्जव ब्राह्मण लोगोंने सुखसे आजीविका चलानेके लिये गृहव्यवहारमें जिन जिन वस्तु-ओंकी जरूरत पडती है उन सब वस्तुओंका दान लिख मारा है, देखो १०२ और १०३ वे अध्यायमें गुडधेनु और शर्करा-धेनुका दान देनेका जिकर है,-एक ठिकाने गौकी आंखें सचे मोतीकी बनानी लिखा है, १०४ से ११२ वे अध्याय तक सिर्फ लोभका ही पोषण करनेवाला उल्लेख किया गया है.

इसके बाद इसी पुराणके ११९ वे अध्यायमें अम्रुक अमुक वस्तुके चढानेसे में ख़ुश होता हूं ऐसा वराइजी कहते हैं, तथा हि—

- " एतानि पतिगृह्णामि, यच्च भागवतं प्रियम् । मार्गमांसं वरं छागं, शासं समनुयुज्यते ॥ १२ ॥ "
- " भागो ममास्ति तत्रापि, पग्ननां छागलस्य च। माहिष वर्जयेन्महां, क्षीरं दधि छतं ततः ॥ १४॥ "

" लावकं वार्त्तिकं चैव, प्रशस्तं च कपिझलम् । एते चान्ये च बहवः, शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १७ ॥ मम कर्मणि योग्या ये, ते मया परिकीर्त्तिताः । यस्त्वेतत्तु विजानीयात् , कर्मकर्त्ता तथैव च ॥ १८ ॥"

इन श्लोकोंगेंसे मांसादिकसे में प्रसन्न होता हूं ऐसा भाव निकलता है, तो क्या ऐसा काम करनेवाले कभी देव हो सकतें है ?. कहना ही होगा कि नहीं, सिर्फ तांत्रिकोंने अपने पेट भरनेके लिये ही ऐसा दुराचार फैलाया है.

इसके बाद इसी पुराणके मायाचक्र, नामके १२५ वे अध्यायके ५०–५१ वे श्लोकमें—

" मम मायाबलं होत-चेन तिष्ठाम्यइं जले। प्रजापतिं च रुद्रं च, सृजामि च वहामि च ॥ ५० ॥ तेऽपि मायां न जानन्ति, मम मायाविमोहिताः । अयो पितृगणाश्चापि, य एते सूर्यवर्चसः ॥ ५१ ॥ "

विष्णु कहते हैं कि प्रजापतिको तथा रुद्रको में ही पैदा करता हूं तथा मैं ही धारण करता हू, और प्रजापति और रुद्र मेरी मायासे विमोहित हुए हुए मेरी मायाको नहीं जान सकते | इस कथनसे सिद्ध हो गया कि, इस वराहपुराण के रचनेवालेने ब्रह्मा शिवजी सूर्यादि सब देवोंसे विष्णुको ही बडा माना है |

हमको आश्चर्य होता है कि, यह क्या बात है ?, यहां पर सर्व देवोंको नीचे दरजेमें रख कर विष्णुको बढ़ाया और चिावपुराण में ज्ञिवजीको बड़ा कहा और विष्णुने अपने नेत्रसे भी उनकी पूजा की, क्या ये ज्ञास्त्र है या छडकोंका खेल है?, जैसे धूलिकिडामें लडके किसी एक लडकेको राजा बना कर स्वयं सेवक बनते हैं, दूसरी दफा सेवक लडका राजा बनता है और राजा सेवक बन जाता है, इसी तरह किसी पुराणमें ज्ञिवजीको सबसे बड़ा साबित करते हैं वो किसीमें विष्णुको, क्या यह देवोंकी धूलिक्रीडा है या पौरा-णिकोंकी?, सो वाचक वर्गको स्वयं विचार कर लेना चाहिये.

वराह्रपुराण अध्याय १६० वेसे श्रीकृष्ण द्यूत कीडा भी किया करते थे ऐसा सिद्ध होता है, देखो---

" तस्मादुत्तरकोटिं च, दृष्ट्वा देवं गणेश्वरम् । द्यूतक्रीडा भगवता, कृता गोपजनैः सह ॥ ५२ ॥ "

इस स्लोकका मतलब गोवालियोंके साथ भगवानने जूआ खेला, भला ! जो लोग अपने भगवानको जूए बाज लिखें उन लोगोंने सत्य रास्ता पाया है ऐसा कौन बुद्धिमान स्विकार कर सकता है ?

इसके बाद वराहपुराणके घरणी वराह संवाद फल श्रुति नामका २१७ वे अध्यायमें वराइपुराणकी इतनी तारीफ की है कि, जिसका हद हिसाव नहीं। तारीफ सार्थक है या निरर्थक इसका पता आगे पीछे मध्यस्थ भावसे वराइपुराण विचारनेवाला ही जान सकता है.

गरुडपुराण-पूर्व खंड पथमांशाख्य कर्मकाण्ड एतत्पु-राण पवृत्ति निरूपण नामके प्रथम अध्यायमें ईश्वर खुद अवतार धारण करता है और उसने कौनसे अवतार धारण किये उस विषयका जिकर है सो युक्ति सिद्ध नहीं है, कारण कि, ईश्वरको सर्व शक्तिमान माना है सो अपनी शक्तिसे ही सब काम कर सकता है तो फिर नाहक अपवित्र गर्भस्थानमें आना, उसमें नौ मास निवास करना और अवतार धारण करके हजारोंका नाश करना क्या फायदा ?. इससे या तो ईश्वर असमर्थ सिद्ध होता है या यह कल्पना झुठी सिद्ध होती है.

गरुडपुराण—पूर्व खंड प्रथमांशाख्य आचारकांड श्री गरुडमक्षापुराणोत्पत्ति निरूपण नामके दुसरे अध्यायमें—

शिवजी कहते हैं कि, ' मैं परमपरमेश्वर विष्णु भगवान्का ध्यान करता हूं, ' इससे शिवजीमें परमेश्वरपना सावित नहीं होता, तथा विष्णुने अपने आप अपनी बड़ी ही तारीफ की है, संबं कुछ मैं हूं और जगत्की स्थितिका बीज भी मैं हूं और धर्मका रक्षक भी मैं हूं इत्यादि कथन है,

यहां पर बुद्धिमानोंको प्रश्न उत्पन्न होता है कि, जब जगतका कर्ता विष्णु है तब तो जगत्में चौर जार कसाई तथा गौवाँके मारनेवाले संचाबनानेवाले म्लेच्छलोग तथा डाका मारने वाले एवं अनेक प्रकारसे अनेक जुल्मोंके करनेवाले जगत्में ही है, उन सबका रचनेवाला विष्णु ही हुआ तब तो विष्णु ही घोरपापोंके करानेवाला है एसा सिद्ध हो गया, अगर कोई कहे कि विष्णुने तो उन जीवोंको छद्ध ही रचा था, परन्तु पीलेसे उनकी दुष्ट बुद्धि हो जानेसे वे दुष्टकृत्य करने लग गये, ऐसे कहनेवालोंको पूछना कि, विष्णुने जब जगत्की

रचना करी तब विष्णु सर्वज्ञ था या असर्वज्ञ ?, अगर वो ऐसा कहे कि,विष्णु तो सदा ही सर्वज्ञ है, तत्र तो विष्णु जानता ही होगा कि-मैं जिन जीवोंको रचता हूं उन जीवोंमेंसे अम्रुक अम्रुक जीव आगे जाकर अत्यंत दुष्टक्रत्य करेंगे, ऐसे जानते हुए भी उन दुष्टक्रत्य करनेवालोंको विष्णुने उत्पन्न किया तब तो जगत्में जो जो दुष्टकृत्य हो रहें हैं उन सब दुष्टकृत्योंका करानेवाला विष्णु ही सिद्ध हो गया, जब ऐसा है तब तो विष्णुमें परमात्मपना दयालुता तथा सज्जनताका लेश भी सिद्ध नहीं होता, तब विष्णुको परमात्मा समश्चके जो लोग पूजन करते हैं उन लोगोंको कैसा फल मिलेगा?,इस बावतका विचार **बुद्धिमान् लोग स्वयमेव करेंगे. तथा** विष्णु ही धर्मका रक्षक है तो फिर धर्मका रक्षण विष्णु क्यों नहीं करता है ?. देखो— जैन बौद्ध मुसलमान इशाई और आर्यसमाजी बगैरा मतों-वाले वैष्णव तथा ज्ञैव मतका खंडन करतें हैं उनको विष्णु ग्निक्षा क्यों नहीं करता ?, तथा खंडन करनेवाले लोगोंको क्यों नहीं रोकता १। इत्यादिक हेतुओंसे पुराणादिकका कथन हमारी समझ मुजिब तो असत्य है । क्यों कि स्वार्थी छोगोंन अपने स्वार्थ सिद्ध करनेके छिपे मनोकल्पनासे पुराणादिक कितने ही ग्रंथोकी रचना कर ली है और उन शास्त्रोंको सुननेका हद पार माहात्म्यका गान किया है जिससे भोले लोग फँस कर मन माना दान देवें और वे लोग अपना सुखसे गृहव्यवहार चठा छेत्रें, इसके सिता और कुछ विशेष तत्त्व माऌू नहीं होता.

मत्स्यपुराण---तृतीय अध्याय-पत्र १० वे में वयान है कि, ब्रह्माजी कामसे पीडित हो कर ' द्वातरू ग ' नामकी स्त्रीसे देवताओंके सौ सौ वर्ष पर्यंत रमण करते भये. क्या यह परमात्माका ऌक्षण है कि, सौ सौ वर्ष तक भोग भोगते रहना?. जवाबमें कइना ही पडेगा कि, कामसे पीडित सामान्य मनुष्यसे भी गिरे हुए कर्त्तव्य करनेवालेमें कटापि परमात्मपना साबित नहीं हो सकता.

मत्स्यपुराण—अध्याय ४५ वा में बयान है कि– श्रीक्रष्ण शिकार करनेको गये वांचो नीचेका श्लोक—

" अथ दीर्घेण कालेन, मुगयां निर्गतः पुनः ।

यहच्छया च गोविन्हों, विलस्याभ्यासमागमत् ॥१२॥ "

बस-परमात्मा शिकार करेे यह असंभाव्य विषय होनेसे या तो यह बात गलत लिखी है या वो परमात्मा नहीं थे; इन दो बातोंमेंसे एक बात उनके परमभक्तको भी कबूल करनी ही होगी

मत्स्यपुराण अध्याय ४७ वे में लिखा है कि-श्रीकृष्णने भृगुऋषिकी स्त्रीका यानि ञुक्राचार्यजीकी माताका मस्तक काट डाला. देखो नीचेके श्लोक—

" ऐषा त्वां विष्णुना सार्द्ध, दहामि मववन् ! बलात् । मिषतां सर्वभूतानां, दृश्यतां मे तपो बलम् ॥ ९७ ॥ तयाभिभूतौ तौ देवा-विन्द्रविष्णू बभूवतुः । कथम्रुच्येव सहितौ, विष्णुरिन्द्रमभाषत ॥ ९८ ॥ इन्द्रोऽब्रवीज्जहीह्येनां, यावन्नौ न दहेत् प्रभो ! विशेषेणाभिभूतोऽस्मि, त्वत्तोऽहं जहि मा चिरम् ॥ ९९ ॥ ततः समीक्ष्य विष्णुस्तां, स्त्रीवधे कृच्छ्रमास्थितः । अभिध्याय ततथक-मापदुद्धरणे तु तत् ॥ १०० ॥

(१२३)

ततस्तु त्वरया युक्तः, शीघ्रकारी भयान्वितः । ज्ञात्वा विष्णुस्ततस्तस्याः, कूरं देव्याश्चिकीर्षितम् ॥१०१॥''

भावार्थ है इन्द्र ! मैं अपने सामार्थ्य के बलसे विष्णु समेत तुझको सब प्राणीओं के देखते हुए ही भस्म कर दूंगी, ऐसा मुझमें तपोवल है॥ ९७ ॥ उसके ऐसे वचनको सुन कर विष्णु और इन्द्र दोनों यह विचारते भये कि-अब क्या होगा ?, तब इन्द्रसे विष्णु बोले कि अब इससे कैसे छुटेंगे ?, उस समय इन्द्रने कहा हे विभो ! जब तक यह हमको भस्म न करे इससे प्रथम ही आप इसको मार डालो ॥ ९८ ॥ और हे विष्णुजी ! मैं तो आप हीसे रक्षित हूँ, इसको बीघ मारो, विलंब न करो. तब विष्णुने स्त्रीको मारनेका इरादा किया, परंतु तो भी विपत्ति दूर करनेके लिये अपने सुदर्शन चक्रको उठाया ॥ १०० ॥ और बीघ ही भयसें युक्त हो कर विष्णु भगवान् उसके क्रोधके कर्त्तव्यको विचार कर अपने क्रोधसे डरते हुए भी अपने चक्रसे उसका सिर काटते भये ॥ १०१ ॥

" तं दृष्ट्वा स्त्रीवधं घोरं, चुक्रोध भृगुरीश्वरः ।

ततोऽभिश्वप्तो भृगुणा, विष्णुर्भार्यावधे तदा ॥ १०२ ॥ यस्मात् ते जानतो धर्भ-मवध्या स्त्रीनिष्ट्दिता । तस्मात्त्वं सप्तक्वत्वेह, मानुषेषूपपत्स्यसि ॥ १०३ ॥ "

भावार्थ — उस स्त्रीके घोर वधको देख कर भृगुऋषि क्रोध कर भार्यो वधमें तत्पर विष्णुको शाप दिया ॥ १०२ ॥ जो कि, धर्मको जानते हुए तूंने अवष्य स्त्रीको मारा इस लिये तूं सात दफे मनुष्योंमें उत्त्पन्न होगा ॥ १०३ ॥ इस उपरके लेखको वांच कर निष्पक्षपाती जन तुरत समझ जायेंगे कि, विष्णुजी स्त्रीयोंंसे भी डरते थे और डरके मारे उनका वध भी करते और कराते थे, इससे परमात्मा किसी तरह सावित नहीं हो सकते हैं.

मत्स्य पुराण अध्याय ४७ वे में लिखा है कि—

" पिशिताशाय सर्वाय, मेघाय विद्युताय च । व्याद्यत्ताय वरिष्ठाय, भरिताय तरक्षवे ॥ १४४ ॥ "

शुक्राचार्यने शिवजीकी उपरोक्त श्लोकोंसे स्तुति करी है जिसका अर्थ यह है कि-" मांसके आहार करने वाले सर्व मेघ विद्युत व्यावृत्त वरिष्ठ पुष्टि करनेवाले और रक्षा करनेवाले ऐसे तुमको नमस्कार है। ' इस उपरके श्लोकसे साफ सिद्ध हो गया कि, शिवजी मांस भी खाया करते थे। " इस श्लोकका अर्थ मत्स्यपुराणके भाषांतर में '' ब्राह्मणलोगोंने जैसा किया है ऐसा ही हमने यहां दाखल किया है.

अब सज्जनगणको सोचना चाहिये कि, ऐसे मांस भक्षण जैसे नीच कर्मको करनेवाला परमात्मा कभी कहा जा सकता है ?, कहना ही होगा कि नहीं नहीं, यह काम परमात्माओंका नहीं किन्तु पामरेंका ही है.

मत्स्यपुराण के ६९ वे अध्यायसे और प्रथमके कितनेक अध्यायसे अनेक तिथिओंके व्रतोंका वर्णन हैं जिनमें ब्राह्मर्णोकों अनेक प्रकारके दान देने लिखें हैं, उन तिथिओंको वत पालनेसे और ब्राह्मर्णोंको अम्रुक अम्रुक वस्तुओंके दान देनेसे स्वर्गमें उर्वशी अप्सराओंके संग रमण करता है, इत्यादि लिखा है

इन लेखोंको वांच कर विचार आता है कि, ब्राह्मण लोगोंने

(१२५)

अपनी कल्पनासे कैसे कैसे फल दिखाकर भोले लोगोंको किस तरह भरमायें हैं १ इस बातका पता मध्यस्थ दृष्टिसे इस पुराणके पढ़ने वालेके सिवाय अन्यको लगना कठीन है. भला ! घर बारी बाह्यणलोगोंके दान देनेसे स्वर्ग मिले इस बातको कौन कबूल कर सकता है १. शुद्धाचारी ब्रह्मचर्थनिष्ठ पूर्ण सन्यस्त त्यागी पुरुषोंको अन्नादिक योग्य दान देनेसे ही महाफल हो सकता है न कि संसारके सब ही कार्योंमें फंसे हुए को.

और मत्स्यपुराणके ६९ वे अध्यायमें वेश्याके कर्म करनेवाली स्त्रीयोंको ग्रुद्ध करनेके व्रतका विधान है कि, वेदके पारके जाननेवाले धर्मज्ञ व्यंग अंग सहित बाह्मणको बुला कर पुष्प धृप दीप और नैवेद्यादि पदार्थोंसे स्त्री पूर्जे ॥ ४२ ॥ और उसी ब्राह्मलके अर्थ घृत पात्र संयुक्त एक केर चावलोंको भरे पात्रको 'माधव भगवान् प्रसन्न हो' यह कह कर दान करें ॥४३॥ और उसी उत्तम ब्राह्मणको अपने चित्तसे कामदेवके समान मानकर इच्छा पूर्वक भोजन करवावे ॥ ४४ ॥ और जिस जिस वस्तुकी वह बाह्मण इच्छा करे वह सब उस सुंदर हास्यवाली स्त्रीको आत्मभावसे उसकी तृप्ति पर्यंत देना चाहिये ॥ ४५ ॥ इस र तिसे हर रविवारके दिन सुंदर आचरण करती हुई तेरह महिने तक प्रत्येक रविवारको एक शेर चावलोंका दान करती रहे, जब तेरहवा महिना आवे तब उसी बाह्मणके निभित्त सर्व सामग्री समेत शय्या दान करे। अर्थात् शय्या उपर उत्तम तकीया बीछैाना दीपक जुत्तीका जोडा छत्री खटाउं–पादुका घोतीका जोडा आसन इन सब वस्तुओंसे शोभित करी हुई शय्याको स्त्री समेत होकर सपत्नीक बाह्य-णको दे देवें । इस सिवाय उत्तम रेशमी वस्त, सुचर्णके भूषण, वाज़ुबंध देकर और चंदनादिकसे कामदेवका पूजन करे ॥ ४६ से ७९ ॥ स्त्री सहित कामदेवकी मूर्त्ति बनवा कर गुडसे भरे हुए पात्र पर स्थापित कर उसके आसनकी जगह तांबेके पत्र लगा कर सुवर्णके नेत्र युक्त वस्त्र पहराय कांसीके पात्र समेत ईख (इक्षु) सयुंक्त कर आगे लिखे हुए पंत्रसे उसका दान करे और एक उत्तम दुधकी गौका भी दान करे ॥ ५०--५१ ॥

मंत्रका भाव यह है कि — मैं विष्णुमें और कामदेवमें कुछ अंतरका भाव भेद नहीं रखती हूँ । इसी प्रकार सदैव विष्णु भगवान मेरे मनोरथोंको सिद्ध करो ॥ ५२ ॥

हे केशव भगवन ! जैसे कि लक्ष्मीजी तुम्हारे शरीरसे कभी पृथक् नहीं रहती है, उसी पकार मुझे भी आप अपने शरीरमें लीन करो ॥ ५३ ॥ इसके पीछे सुवर्णकी मूर्त्तिको प्रहुण करता हुआ बाह्मण -'' क इदं कस्मादिति ''-ऐसे वेद के मंत्रको उचारण करे ॥ ५४ ॥ फिर प्रदक्ष गा करके ब्राह्मणका विसर्जन कर देवे और शय्या आसनादि ब्राह्मणके घर पहूंचावे ॥ ५५ ॥

इस उपरके लेखके पढनेसे यह साफ तौर पर जाहिर हो जाता है कि, बाह्मणोने स्वार्थ सिद्ध करनेके साधन रूप पुराण बना लिये हैं, इस्में परमार्थका लेश भी हो ऐसा हमारा मानना नहीं है. अगर चे कितनीक वैराग्यकी वातें भी पुराणोंमें मिलती है, मगर वे वातें पक्षीओंको जालमें लेनेके लिये जूवारकी तरह भद्रिकोंको मुग्ध कर-फंसानेके लिये ही है ऐसा हमारा मन्तव्य है. इन लोगोंने दुनियांकी सर्ववस्तुएं दानमें देनेके लिये लिखी है सो तो हम प्रथम जाहिर कर ही चुके हैं मगर अब एक और अजब पता मिलता है, सो यह है कि-अगर बाह्मण भोग करना चाहे तो वेक्या उसके उस मनोरथको भी पूरा करे. ऐसे पायश्वित्तविधिके बतानेवाले पुराणके रचनेवालेमें धार्मिक भावनाका लेश भी हो ऐसा कौन कबूल कर सकता है ?.

देखो-इसी ६९ वे अध्याय के श्लोक---

" ततः प्रभृति यो विप्रो, रत्यर्थं गृहमागतः । स मान्यः सूर्यवारे च, स मन्तव्यो भवेत्तदा ॥ ५६ ॥ एवं त्रयोदञ्च यावन्मासमेवं द्विजोत्तमान् । तर्पयते यथाकामं, प्रोषितेऽन्य समाचरेत् ॥ ५७ ॥"

भावार्थ- इसके अनंतर जो ब्राह्मण रमण करनेके निमित्त रविवारके दिन इन स्त्रीयों-पायश्चित्त लेनेवाली वेक्याओंके घर पर आ जावे तो उसका मान करके उसका पसन्तता पूर्वक पूजन करना योग्य है ॥ ५६ ॥ इस रीतिसे तेरह महिनों तक उत्तम ब्राह्मणोंको इच्छा पूर्वक तृप्त करती रहे और वह ब्राह्मण कदाचित कहीं परदेशमें चला जाय तो इसी प्रकार दूसरे अन्य बाह्मणसे आज्ञा लेकर विग्न रहित अपनेको प्रिय ऐसा जो ब्राह्मण रूपवान हो और अभ्यागत हो उसको पूजे ॥ ५७ ॥ इत्यादि वर्णनसे वेक्याओंको काममें लेनेके नीच लोभसे भी पुराणके रचनेवाले मुक्त नहीं थे, यही कारण है कि, वैक्या जैसो नीचवृत्तिको करनेवालीओंको भी विष्णुलोग प्राप्त होनेका प्रलोभन देकर अपनी सर्व प्रकारसे पूजा करानेके लिये पोत्साहन किया है.

आवक-भगवन् ! इस प्रकार वेक्याके प्रायश्चित्त अधि-कारके छननेसे तो अजब ही अनुभव मिलता है । भला ! वेक्या भोग द्वारा भी ब्राह्मणको पसल करे इस मतल्लवाले पाठको दूसरे लोग किस तरहसे सत्य मान लेते होंगे ?.

स्तरभ्विरजी — भाई ! धर्मांध आदमी इन बातोंका खयाल ही नहीं रखते कि, यह बात सत्य है या असत्य 8 और जिन प्रंथोंमें ऐसी ही बातोंका वर्णन किया हो वे ग्रंथ चाळाकोंने बनायें है या महात्माओंने 9, अगर सब ही ऐसा विचार करने लगेंगे तो फिर मिथ्यात्व कहां रहेगा 9 | इस लिये जो मिथ्यात्वके नशेमें चकचूर या विवेकनेत्रके नष्ट होनेसे अंध हो रहें हों इन वातोंकी तर्फ ध्यान नहीं देते, नहीं ! नहीं ! ! मै भूलता हूँ, बिलकूल देखते ही नहीं. मिथ्यात्वके उदयसे पठितोंकी भी राजपुत्र जैसी दशा हो जाती है.

श्रावक-मभो ! वह राजपुत्र कौन था ? और उसकी क्या दज्ञा हुई थी ?.

सूरीश्वरजी- एक 'पश्चिमण ' नामक पत्तनें ' मोहक-मझाराजा ' राज्य कर रहे थे, उनका ' विषय-सहायक ' नामक मंत्री था, राजा टढ़ हुआ मगर पुत्रके मुखदर्शनसे वंचित ही रहा एक दिन ऐसा नशीव खिला कि, राणीने गर्भके सुसमाचारसे राजाको प्रसन्न किया अनुक्र-मसे दिन पूरे होने पर खडकेका जन्म हुआ नाम 'प्रतिश्रदान' रक्सा गया. खुशीका पार न रहा मगर अफसोस इस बातका रहा कि, लडका जन्मांव था. जब लडका बारह वर्षका हुआ तब उसको दानका इतना शौख बढ़ गया कि, जब बहार हवा सोरीको नीकलता कोई याचक बदन परके किसी भी गहिनेका नाम ले कर मांगे तुर्त उतार कर दे देवें, इस तरह एक ही दिनमें बदन परके सब गहिने उतार कर देता था. याचकोंका बज़ार दिन व दिन गरम हो गया. दूसरे दिन जब राजा कुमा-रको भोजनके लिये कहता तब कुमार कह देता था कि, मुझे गहिने पहिनाओ फिर जिम्रुंगा. राजाका प्राणसे भी अधिक प्रिय पुत्र था, अतः जो कुछ कहता था राजाको करना पडता था इस तरह रोज़ नये गहिने पहिनने और दूसरे दिन दानमें खुतम कर देनें मंत्रीको नागवार गुजरा. उसने राजासे एकान्तमें कहा कि, इस तरह काम किस तरहसे चल सकेगा ?, ऐसे तो खजाता ही खाली हो जायगा और भीख मांगनेका समय आ जायगा. उस राजाने कहा, भीख मांगना बेहेतर है मगर में कुँवरको नाराज नहीं कर सकता. मंत्रीने कहा-भला ! कुंवर भी खुज्ञ रहे और गहिने भी बचे रहे तब तो मंजुर है न ? राजाने कहा, फिर क्या हरकत है?.

मंत्री-में कलरोज़ उसके भोजनके समय आऊंगा और वो गहिने मॉॅंगे उस समय आपने ग्रुझसे अप्रुक शब्द कहने, फिर देखना सब ही ठीक हो जायगा. मंत्रीन रात ही रातमें लोहके गहिने और एक छडी तैय्पार करा दिए. दूसरे दिन टाईम पर मंत्री राजभवनमें चला गया. उस सनय राजा पुत्रको खानेके लिय आग्रह कर रहा था और पुत्र गहिने मॉॅंग रहा था. पत्युत्तरमें राजा कहता था कि, आज गहिने तैय्पार नहीं हो सके हैं, तब लडका कहता है मैंने खाना ही नहीं. राजा भंत्रीको कहता है कि, मंत्रीजी ! वे गहिने जो खजानेमें सेंकडो वर्षोंसे यूँके यू पडे है. शायद इमार किसी पुण्यशाली (?) पूर्वजने ही पहिने होंगे, दूसरे तैय्यार नहीं है तो आज कुमारको वो ही पहिना दो और हीरेसे जडी 1.

हुई वो स्वर्णयष्टि भी क्रुमारको दो, मंत्रीने उत्तर दिया. महाराजा ! वो तो महादुर्ऌभ गहिने हैं, आपने भी आपकी उम्रमें नहीं पहिने वो कैसे दिये जावे ?. याचक लोग बड़े छचे हैं और कुमार भोला हैं; एकदम कह देगें कि कुमार साहिब ! ये गहिने तो छोहे के हैं, तब कुमार तुर्त उतार कर दे देंगे; इस लिये ऐसे अपूर्व गहिने नहीं दिये जायेंगे. अब कहना ही क्या था ?. उसी वरूत कुंवरने कहा कि-मंत्रिजी ! मेरेको वो ही गहिने दो जो बडी मुद्दतसे किसोने नहीं पहिने. मैं ऐसा भोछा नहीं हूं जो छच्चोंकी बातको सत्य मानूं. आप जल्दी मुझे वो गहिने पहिना दो और उस हीरेकी जडी हुई स्वर्णयष्टिसे मेरे हाथको सुशोभित बना दो; मैं उन अपूर्व गहिनोंको अपने अंगसे कभी भी अलग नहीं करुंगा. मंत्री कहने लगा—कुमार ! देखना ! उसमें गरवड न हो. नहीं जी नहीं कभी गरवड नहीं होगी. बस-उसी वरूत मंत्रीने रातको तैय्यार कराये हुए छोइके आभूषण पहिना दिये और लोहेकी यष्टि हाथमें दी. बादमें कुमारने मोजन किया जब सेरको निकले तब अंधकुमार तो मानता है कि, मैंने आज अद्वितीय आभूषण प्राप्त किया है; मगर याचकोंके चहेरे कुमारको देखते ही फीके पड गये और कहने छग क्योंजी ! आज लोहेके गहिने पहिने हैं?. नज़दीकमें जा कर फिर कहने लगे; क्या ऐसे गहिने पहिननेमें आपकी शौभा है?. अभी ये अक्षर तो पूरे याचकके मूंइसे निकलने पाये ही नहीं थे कि. एकदम छोहेकी सोटी याचकके शिर पर घडाक देकर पडी और लोहुंकी धारा छुटी; याचक राड़ पाड़ कर ज़मीन पर गिर पड़ा ऐसे दो चार याचकोंकी उस दिन दुर्देशा हुई.

अब रोजने रोज अनजान याचक कुंवर के हाथसे घायछ होने लगे, कितनेक दिन वाद कुंवरसे कोई भी याचक किसी तरहकी वात नहीं करता था. मंत्रीकी अकलने बड़ा ही काम किया; हमेशहका द्रव्य व्यय हट गया और लोहेके गहिनेसे कुंवरजी आनंद मानते रहे.

जैसे उस कुंवरको छोइके गहिने ऐसे ढंगसे दिये गये कि, वह सब गहिनोंसे अपने गहिनोंको उत्तम मानने लगा. इसी तरहसे तालंबाज लोगोंने कल्पितमत रूप पंजरेमें **लोगोंको ऐसे फंसा रक्से हैं** कि, जरा भी कोई उनके मतके विषयमें कुछ बोले तुरत राजकुंवर जितनी अगर सत्ता हो तो उसके जैसे ही कड़ी सजा देनेको तैय्यार हो जावे; इस्मे जरा भी संदेह नहीं जब राजपुत्रकी आंखका ईलाज दिव्यौे. षधिसे अगर कोई करे तब वह जान सके कि, हाय ! हाय ‼ मै तो छोहा ही उठा फिरा-वस-अन्यधर्मावलंबियोंका भी यही हाल है. इस लिये कोई उच्चज्ञानी सद्गुरु द्वारा अपूर्व ज्ञान औषधिसे विवेक नेत्र खुल जाय तब तो समझ सके कि, जिनेंद्रप्रधुने जगत्के उद्धारके लिये जो परमार्थ मार्ग बतलाया है वो ही सत्य हैं परंतु जिनके विवेकनेत्र मिथ्या रोगसे बंध है वे तो राजपुत्रको तरह जैन पुस्तकोंको पढ़ कर अगर उसमें उनके मतके बाबत कितनीक वास्तविक ज़ुटिएं दिखा दी गई हो तो एकदम घवरा उठते हैं और उस परो-पकारमय उपदेशका फल सीधे रास्ते पर चल कर नहीं निकालते किन्तु एकदम उस पवित्र धर्मका किसी तरह खंडन करने छग जाते हैं. सिधी रोतिसे न होवे तो नाटक

चेटक बना कर उसमें पवित्र धंमको नीचा बतलानेके लिये कल्पित घटनाएं खडी कर देते हैं. देखो मर्हुम नवलराम लक्ष्मीराम नामके शल्सने एक 'वीरमती ' नामका नाटक बनाया है सो संवत् १९७७ की सालमें छपा हुआ मेरेको उपलव्ध हुआ है. उसकी अंदर जो बातें दाखल की हैं मत्यक्षतया असत्य ज्ञात होती हैं. जिसे पढ़ कर लोहेके महिनेवाले राजपुत्रके दृष्टांतका स्मरण हो आता है.

देखो एष्ट १४---

'' જગદેવ–(ધીમેથી) આટલું જૈન મુડીયાને માન શીદ આપે છેા ઼ ''

नाटककार इन अपमान वाचक शब्दोंका प्रयोग चाहे अन्य पात्रके मुखसे निकल्लवाते हैं तथापि समझदार समझ सकते हैं कि—यह नाटककारके हृदयमें जलती हुई द्वेषरूप होलिका ही नतीजा है. हमारे प्रेमी नाटककार इस द्वेषाग्निमें इतने व्यग्र हुए थे कि, बेहोशीमें हेमचन्द्राचार्यके गुरुका नाम ' ज्ञानविजयस्वरि ' लिख मारा किसी भी जैनशास्त्र या प्रामाणिक इतिहासकारके पुस्तकर्मेंसे मजकुर स्ररीश्वरजीके गुरुजीका नाम ' ज्ञानविजय ' नहीं नीकल सकता. उनके गुरुजीका नाम ' ज्ञानविजय ' नहीं नीकल सकता. उनके गुरुजीका नाम ' ज्ञानविजय ' नहीं नीकल सकता. उनके गुरुजीका नाम ' ज्ञानविजय ' नहीं नीकल सकता. उनके गुरुजीका नाम भी भूल जाय, या कल्पित बना कर लिखा जावे इस द्वेषाग्निसे लिखी हुई अन्य वातोंकी असत्यताका तो कहना ही क्या ? सो ही दिखातें है.— देखो पृष्ठ १५ वे में—

ં 'જગદેવ—રજપૂતના રાજમાં નાસ્તિકાના એટલા ભય શા શ' अगर इस नाटककारको पिथ्यात्वने नहीं दबाया होता तो उसको माॡम हो जाता कि, मैं स्वर्णको पीचल कह रहा हूं और राजपुत्रकी तरह मेरी मान्यता रूप लोहे को सोना मान रहा हूं. परन्तु जहां मिथ्यात्वने जन्मांघ राजपुत्र जैसा बना रक्खा हो वहां क्या सूझे ?. इसी पृष्ठ पर ' ज्ञानविजय 'के वास्ते उतारा करनेके लिये उंसके नोकर दृक्षकी ढालीओंके साथ चंदोवा बांधते हैं, यह भी बडी गप्प लगई है. जैन साधु वृक्षके झाखाओंका दोरडे बांधने में आवे ऐसे आश्रयके कभी भी मुकाम नहीं करते. इससे जैन साधुओंके व्यव-हारसे भी नाटककार कितना अज्ञान है सो भली प्रकार माऌम होता है. ऐसे अज्ञजन जैनसिद्धांतके विषयमें कुछ लिखने लगे तो वह सत्य लिख सके ऐसा कोई बुद्धिमान नहीं मान सकता.

पृष्ठ १७ में ' पाज़ी लरी साव ' ' ઠીકુ પાયરા ' ' આ બધી કરાચલી વળી છે. ' ' પाज़ी ઉनु न થઇ જાય '--आदि बाबत भी बीलकुल कपोल कल्पनासे खडी की गई है, क्यों कि जैन साधु कचा-अनुष्ण पानी तथा जाजम आदि काममें नहीं लेते.

इसके बाद २२-२३-२४-२५-२९-३०-३३ वे पृष्ठों पर जो जो उछेख कियें हैं विस्कुल प्रमाणशून्य बकवाद किया है. जब ज्ञानविजय नाम ही झूठा दिया है तो फिर इस विष-

१ हम एक वचनका प्रयोग इस लिये करते हैं कि-' हेम-चंद्राचाय महाराजसे संबंध धरानेवाली ' ज्ञानविजय ' नामक कोई भी व्यक्ति हुई ही नहीं हैं.

(१२४)

यकी चर्चाको लंबाना व्यर्थ समझ कर और हेमचंद्राचार्यजी जैसे परम पवित्र पुरुषके गुरुके मुखसे ऐसे शब्द कदापि नहीं निकल सकते जो एक चार्वाकके मुखसे निकले. ऐसा मान कर इस विषयमें ज्यादा नहीं लिखते हुए सिर्फ इतना ही जाहिर करना चाहते हैं कि, पूर्वोक्त पृष्ठोंपर किये हुए उछेखसे नवलरामने एतिहासिक ग्रंथोंसे अपनी बिलकुल नावाकफियत साबित कर दीखलाई है। ' कलिकालसर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्राचार्यजी महाराजके गुरु श्रीमान् दवचन्द्राचा-र्यजी महाराज थे. उनकी पवित्रता ऐसी अहितीय थी जिसका हिसाब नहीं. अगर इस बातका पता लगाना हो तो ' कुमारपाल-प्रवंध 'का भाषांतर जिसको बझैदा निवासी श्रीयुत वैद्य मगनलाल द्वारा श्रीमंत गायकवाड सरैकारने करवा कर प्रसिद्ध कराया है देख लेना. फिर नवलरामकी असत्य लेखिनीका और साथ साथ उसकी द्वेषिणी प्रकृतिका पूरा पता लग जायगा और श्रीदेवचन्द्राचार्यजीके पवित्र चरित्रकी वाक्फियत मिलनेसे वे महानुभाव कैसे एकांतसेवी और दुनियांकी सर्वे तरहकी खटपटसे दूर रहनेवालेथे, इस वाबतका विचार करनेसे नाटक रचनेवाले मिथ्यांध महानुभावने ९३-–२४५ तथा २४७ वे पृष्ठों पर जो कुछ प्रछाप किया है अरण्यरुदनवत् माऌूम हो जायगा और जिस अंबाजीके वर्णनमें झुठे तरंगी घोडे दौडायें हैं वो अंबिका खास सरीश्वरजीके चरणमें मस्तक झुकावे ऐसे पवित्र सरीश्व-रजीके छिये सिद्धराजको समझाना और बाबरेको तैय्यार करना आदि कल्पना इतनी असत्य प्रतीत होगी जिससे समझ-

हा ! मिथ्यात्व !, तूं भी एक ^{बू}री बला है. नवलराम जैसे एक अच्छे सुन्दर कविताकारकी भी बुद्धिको तूंने ही ख़राब की, जिससे वे पवित्र पुरुषोंके चरित्रामृतका पान नहीं कर सके, अरे ! पान नहीं कर सके इतना ही नहीं बल्के महात्माओंके लिये अगडं बगडं उटपटांग लिख कर पापकी गठडी शिरपें धर कर इस असार संसारसे क्रुच कर गये

श्रावकवर्य ! अब वेलातिकम हो रहा है, इमको भी साधु सामाचारीके अन्य कार्थ करने हैं, अतः आज यहां ही रखते हैं.

पंचम-दिवस.

पां चवें दिन षडावझ्यक प्रतिलेखनादि साधु समाचा-पां चवें दिन षडावझ्यक प्रतिलेखनादि साधु समाचा-स्थान पर स्थित हो कर धर्मध्यानकी धूनमें बैठे हुए हैं. थोडे समयके बाद वह भव्यात्मा आवक सूरीश्वरजी के समीपमें आ पहुंचा और भावना सहित वदन करके उचितासन पर बैठ गया और बडे विनयसे विज्ञप्ति की कि, भगवन् ! आगेका दाल सुनानेकी कृपा करें.

स्रीश्वर्जी---

मत्स्यपुराण १५२ वे अध्यायमें तारकासुर दैत्यके साथ देवताओंका बड़ा भारी युद्ध हुआ; उसवें परस्पर दोनों सेनावें बहोत ही मारे गए. अन्तमें इन्द्रादि छोकपाळोंको तथा विष्णुको बांध कर और रथमें बैठ कर तारकासुर अपने स्थानमें चला-गया. देखो----

" ततो रथादवप्छुत्य, तारको दानवाधिपः। जघान कोटिशो देवान्, करपार्ष्णिभिरेव च। हतशेषाणि सैन्यानि, देवानां विषदुदुवुः 11 223 11 दिशो भीतानि सन्त्यच्य, रणोपकरणानि त लीकपालाँस्ततो दैत्यो, बबन्धेन्द्रमुखान् रणे 👘 ॥ २२४ ॥ सकेञवान् दृढैः पाञैः, पशुमारः पशुनिच । स भूयो रथमास्थाय, जगाम स्वकमालयम् 🕤 ॥ २२५ ॥ सिद्धगंधर्वसंघुष्ट-विपुलाचलमस्तकम् । स्तूयमानोदितिमुत्तै-रप्सरोभिर्विनोदितः 11 228 11 त्रैछोक्यलक्ष्मीस्तदेशे, प्राविशत् स्वपुरं यथा । निषसादासने पद्म-रागरत्नविनिर्भिते 11 2 20 11 ततः कित्ररगंधर्व-नागनारीविनोदितैः । क्षणं विनोद्यमानस्त, प्रचलन्मणिकुण्डलः 1 RR& 11"

अर्थ-इसके पीछे तारकासुर दैत्य रथसे नीचे उतर कर अपने द्दार्थोंसे और पैरोंकी एडीओंसे करोडो देवताओंको मारता भया. फिर शेष बची हुई देवताओंकी सेना भयभीत द्दो कर रणको त्याग दशो दिश्वामें भाग गई ॥ २२३ ॥ तब वह दैत्य रणके मध्यमेंसे इन्द्रादिक सब लोकपालोंको बांद लता भया और विष्णु आदिको भी ऐसे बांदता भया जैसे कि, ज्याध पुरुष पशुओंको बांद लेता है ॥ २२४-२२५ ॥ इसके पीछे वह तारकाग्छर रथमें बैठ कर अपने स्थानमें जाता भया. सिद्ध गंधर्व दैत्य और अप्सरा इत्यादिक सब दैत्यकी म्तुति करते भये. इन सब समेत मसन्नता पूर्वक वह दैत्य त्रिल्लोक्तीकी संप-त्तिओंसे युक्त हुआ अपने पुरमें प्रवेश करता भया ॥ २२६-२२७ ॥ वहां जा कर पुखराज आदिक रत्नोंसे जडे हुए आसन पर बैठ गया और किन्नर गंधर्वादिकोंकी स्नियोंसे क्रीडा करते उसके कुंडल और म्रुक्जटकी मद्दाशोभा होती भई ॥ २२८ ॥

इस उपरके लेखके देखनेसे विचारशीलोंको अवश्य क्षिचार आवेगा कि, विष्णुको तारकाम्छर ऐसे बांद कर ले गया कि जैसे व्याध पशुको बांद कर छे जाता है तो फिर विष्णु सर्व-शक्तिमान् और परमेश्वर है ऐसा कैसे कह सकते हैं ?. तथा विष्णुजी देवताओंके पक्षमें हो कर तारकासुरके साथ युद्ध कर-नको आये तो भी तारकासरने करोडों देवताओंको मार डाला तथा इन्द्रादिक लोकपाल और विष्णुको बांदके ले गया इससे विष्ण ज्ञान शून्य भी सिद्ध हुए, अगर विष्णु ज्ञानी होते तो जान लेते कि, देवताओंके पक्षमें हो कर तारकासुरके सामने युद्ध करनेको मैं जाता तो हूं मगर तारकामुर जबरदस्त दैत्य है मेरे जानेसे भी देवताओंकी जीत नहीं होग्री और क्रोडों ही देवताओंको वह दैत्य मार डालेगा, शेष रहे हुए देवता युद्धमेंसे भाग जायेंगे तथा इंद्रादिक छोकपाछोंको और मेरेकी वह दैत्य बांद कर छे जायगा, इससे मेरी बडी फजेती होगी, इस बातका नहीं जानना इसीका नाम ज्ञान जून्यता है. 36

4....

मत्स्यपुराण अध्याय १५३ वे में ब्रह्मा विष्णुको जन्म जरा और मृत्यु करके पीडित है ऐसा लिखा है. देखो नीचेके श्रोक—

" न स जातो महादेवो, भूतभव्यभवोद्भवः । श्वरण्यः शाश्वतः शास्ता, शङ्करः परमेश्वरः ॥ १८० ॥ ब्रह्मविष्ण्विन्द्रग्रुनयो, जन्ममृत्युजरार्दिताः । तस्यैते परमेशस्य, सर्वे क्रीडनकागिरे ॥ १८१ ॥ आस्ते ब्रह्मा तदिच्छातः, संभूतो भ्रुवनमभ्रुः । विष्णोर्युगे युगे जातो, नानाजातिर्महातनुः ॥ १८२ ॥ मन्यसे मायया जातं, विष्णुं चापि युगेयुगे । आत्मनो न विनाशोऽस्ति,स्थावरान्तोऽपि भूघर ! ॥१८२ ॥ संसारे जायमानस्य, म्रियमाणस्य देहिनः । नइयते देह एवात्र, नात्मनो नाश उच्यते ॥ १८४ ॥ ब्रह्मादिस्थावरांतोऽयं, संसारो यः प्रकीर्त्तितः । सजन्ममृत्युदुःखात्तों, ह्यवश्वः परिवर्त्तते ॥ १८५ ॥ महादेवोऽचऌः स्थाणु-र्न जातो जनको जरः । भविष्यति पतिः सोऽस्याः, जगन्नाथो निरामयः ॥१८६॥²

अर्थ - भूत भविष्यद् और वर्त्तमान इन सबके ईश्वर शरण्य शाश्वत शास्ता शंकर महादेव परमेश्वर हैं. ये कभी जन्में नहीं हैं ॥ १८० ॥ ब्रह्मा विष्णु इंद्र और मुनि यह तो जन्म मृत्यु और जरा अवस्था इनसे पीडित होते हैं और महादेवजीके ये सब कीडाके स्थान हैं, उन ही महादेजीकी इच्छासे ब्रह्मा अपने मुबनके पति हो रहे हैं. विष्णु युगमें युगमें अनेक जातियोंमें महान शरीरोंको धारण करते हैं ॥ १८१-१८२ ॥ मायाके वशीभूत युग युगमें जन्मे हुए विष्णु- के भी आत्माका नाज्ञ नहीं होता है. हे हिमाचल ! मरणेवाझे देहधारीका शरीर संसारमें नष्ट हो जाता है परन्तु आत्माका कभी भी नाज्ञ नहीं होता है. ब्रह्मासे ले कर स्थावर वृक्षादि पर्यंत सब संसार जन्म मरणके दुःखसे पीडित है, महादेवजी अचल हैं. स्थाणु हैं, कभी जन्म नहीं लेते हैं, अमर हैं और रोगोंसे भी रहित हैं ऐसे जगन्नाथ महादेवजी इस तेरी पुत्रीके पति होवेंगे ॥ १८३-१८६ ॥

यह उपरोक्त लेख पुराणोंकी पूर्ण अव्यवस्थाको सिद्ध करता है, क्यों कि विष्णुपुराणमें महादेवजीने विष्णुकी डपासना की ऐसा वर्णन है और यहां पर महादेवजी ही अजर अमर और अविनाशी और ब्रह्मा विष्णु सजर समर और सविनासी है. ऐसे उन्मत्त वचनवत् बहुत स्थल पर परस्पर विरुद्ध उल्लेख दृष्टिगत होते हैं जिसका सरवैया यही निकलता है कि, ये तीनों ही देव ईश्वर नहीं.

मत्स्यपुराण १५३ वे अध्यायमें गणेशको उत्पति जिस तरह लिखी है सो प्रथम बताऐ हुए प्रकारसे विरुद्ध होनेसे पुराणोंकी पारस्परिक विरुद्धताका खयाल दिलाती है.

मत्स्यपुराण १९४ वे अध्यायमें बयान है कि-

महादेजीने पार्वतीको छुष्णा कहा इससे गुस्सेमें आ कर पार्वती शिवजीके पाससे जाने लगी, तब शिवजीने उसे बहुत समझाई और आखर ऐसा भी कहा कि, मैं तूझको सिरसे प्रणाम करता हूं और सूर्यको ओर हाथ जोडता हूं इत्यादि वचनोंसे पार्वतीको बहुत खुशामत करी परंतु पार्वतोने श्चिवजीका वचन नहीं माना और गौरी होनेके लिये तपस्या करनको चल पडी.

इस उपरके लेखसे सिद्ध हुआ कि महादेजी स्रीके बडे आषीन थे

मत्स्य पुराणके १५७ और १५८ के अध्यायसे कार्त्ति-केयकी उत्पात्तिका बयान ऌिखते हैं सो वांचो—

सूत उवाच—

" पसन्ना तु ततो देवी, वोरकस्येति संस्तुता । प्रविवेश शुभं भर्त्तु----भवनं भूधरात्मजा ॥ २० ॥ द्वारस्थो वोरको देवान्, इरदर्शनकांक्षिणः । व्यसर्जय त् स्वकान्येव, गृहाण्यादरपूर्वकः ॥ २१ ॥ नास्त्यत्रावसरो देवा, देव्या सह वृषाकपिः । निर्भृतः क्रोडतीत्युक्ता, ययुस्ते च यथागतम् ॥ २२ ॥ गते वर्षे सहस्रे तु, देवास्त्वरितमानसाः । प्रविश्य जालरन्भेण, ग्रुकरूपी हताशनः । ददुशे शयने शर्व, रतं गिरिजया सह ॥ २४ ॥ ददृशे तं च देवेशो, हुताशं शुकरूपिणम् । तमुवाच महादेवः, किश्चित् कोपसमन्वितः ॥ २५ ॥ यस्मातु त्वत् कृतो विघ्र---स्तस्मात् त्वय्युपपद्यते । इत्युक्तः प्राअविर्विति-रपिवद्वीर्यमाहितम् ॥ २६ ॥ वेनापूर्यत देवाँस्तत्-तत्कार्यविभेदतः । विपाठ्य जठरं तेषां, बीर्य माहेखरं ततः ॥ २७ ॥

4

(**१**8**१**)

निष्कान्तं तप्तदेमाभं, वितते श्रद्भराश्रमे । तस्मिन् सरो महज्जातं, विमलं बहुयोजनम् ॥ २८ ॥ प्रोत्फुल्लहेमकमलं, नानाविहगनादितम् । तच्छुत्वा तु ततो देवो, हेमदुमं महाजल्ण्म् ॥ २९ ॥ तत्र कृत्वा जल्ज्जीडां, तदव्जकृतग्रेखरा । उपविष्टास्ततस्तस्य, तोरे देवी सखीयुता ॥ ३० ॥ पातुकामा च तत्तोयं, स्वादु निर्मल्लपंकजम् । अपश्यन् कृत्तिकाः स्नाताः, षडर्कद्युतिसचिभम् ॥ ३१ ॥ पद्मपत्रे तु तद्वारि, गृहित्वोपास्थिता गृहम् ॥ हर्षादुवाच पश्यामि, पद्मपत्रे स्थितं पयः ॥ ३२ ॥ ततस्ता ऊचुरखिलं, कृत्तिका हेमश्रैल्जाम् ।

कृत्तिका ऊचुः---

दास्यामो यदि ते गर्भ-संभूतो यो भविष्यति ॥ ३३ ॥ सोऽस्माकमपि पुत्रः स्या-दस्मन्नाम्ना च वर्त्ताम् । भवेछोके सुविख्यातः, सर्वेष्वपि ग्रुभानने ॥ ३४ ॥ इत्युक्तोवाच गिरिजा, कथं मद्गात्रसंभवः १ । सर्वेरवयवैर्युक्तो, भवतीभ्यः स्रुतो भवेत् ॥ ३५ ॥ ततस्तां कृत्तिका ऊचु-विधास्यामोऽस्य वै वयम् । उत्तमान्युत्तमांगानि, यद्येवं तु भविष्यति ॥ ३६ ॥ उत्तमान्युत्तमांगानि, यद्येवं तु भविष्यति ॥ ३६ ॥ उक्ता वै क्षैल्जा माद्द, भवत्त्वेवमनिन्द्रिताः । ततस्ताः द्द्स्तया मापि, तत्पीतं कमक्षो जल्जम् । यसे ददुस्तया चापि, तत्पीतं कमक्षो जल्जम् । योते तु साल्लेले तस्मि-स्ततस्तस्मिन् सरोवरे ॥ ३८ ॥ विपाट्य देव्याश्व ततो, दक्षिणां कुक्षिग्रुद्गतः । निश्चक्रामाद्धुतो बालः, सर्वल्लोकविभासकः ॥ ३९ ॥ मभाकरमभाकारः, मकाज्ञकनकप्रभः । गृहीतानिर्मलोदग्र- ज्ञक्तिज्ञलः षडाननः ॥ ४० ॥ दीक्षो मारयितुं दैत्यान् , कुत्सितान कनकच्छविः । एतस्मात् कारणादेवः, कुमारश्वापि सोऽभवत् ॥ ४१ ॥"

भावार्थ-सूतजी कहते हैं जब वीरभद्रने इस प्रकारसे स्तुति करी तब प्रसव हो कर पार्वतीजी अपने पति शिवजीके मंदिरमें प्रवेश करती भई ॥ २०॥ फिर द्वार पर खडा हुआ वीरभद्र ज्ञिवजीके दर्शन करनेके लिये आये हुए देवताओंको अपने अपने घरोंको भेजता हुआ और यह कहने लगा कि हे देवताओ ! अब दर्शन करनेका अवसर नहीं है. कारण कि ज्ञिवजी पार्वतीके संग रमण कर रहें हैं. इन वचनोंको सुन कर देवता अपने अपने स्थानको चल्ने गर्ये ॥ २१-२२ ॥ जब हजार वर्ष व्यतीत हो चुके तब देवता शीघता करके शिवर्जीके समाधार छेनेके छिये अग्निदेवताको भेजते भये ॥२३॥ अग्नि तोतेक[ा] रूप धारके स्थानके किसी छिद्रके द्वार स्थानमें प्रवेश करके पार्वतीके संग रमण करते हुए महादेवजीको देखता हुआ, तब कुच्छ कोध करके महादेवजी उस तोतेसे बोले कि, तेरा किया हुआ यह विघ्न है. इस ळिये यह विघ्न तुझहीमें पाप्त होगा, ऐसा कहा हुआ अग्नि अंजलि बांद कर महादेवजीके वोर्यको पीता भया ॥ २४ से २७ ॥ फिर उस वीर्यसे तृप्त हुआ आग्ने देवताओंको तृप्त करता भया, उस समय वह जिवजीका वीर्य उन देवताओंके उदरको

फाड कर वदार निकलता भया और शिवजीके समीप प्राप्त होता भया, वहां एक सरोवर बन गया बडा खच्छ और बहुत योजन विस्तृत सुवर्ण किसी कांतिवाला फुले हुए कमल्लोंसे शोभित उस सरोवरको सुन कर पार्वतीदेवी सखी-योंसे युक्त हो उसके–सरोवरके जलमें क्रीडा करती हुई और तीर पर स्थित हो उस जलको पीनेकी भी ईच्छा करी. उस समय स्नान करती 'कृत्तिका 'भी छः छः सूर्योंके समान उस जलको देखती भयी. तब पार्वती कमलके पत्ते पर स्थित हुए उस जलको ग्रहण करके आनंदसे बोली कि कमल पत्र पर स्थित हुए इस जलको मैं दैखती हूं ॥ २७-से ३२ ॥ ऐसे पार्वतीके वचनको सुन कर ' क्रत्तिका ' पार्वतीसे बोली कि हे ग्रुभानने [!] इस जलसे जो तुस्रारे गर्भ रह जावे तो वह इमारे नामसे मसिद्ध हमारा ही पुत्र संसारमें मसिद्ध होवे एसी प्रतिज्ञा करे तो इम इस जलको देवें. यह सुन कर पार्वतीजी बोली कि, मेरे अवयवोंसे युक्त हुआ बालक तुह्यारा पुत्र होवेगा ॥ ३३-से-३५ ॥ जब पार्वतीने यह बचन कहा तब क्रुत्तिका बोली कि हम उसके उत्तम उत्तम अंगोंका विधान कर देवेंगी. यह बात सुन कर पार्वतीने कहा कि अच्छा इसी प्रकार हो जायगा. तब वह कृत्तिका प्रसन्न **हो कर उस जलको पार्वतीके** निमित्त देती भई, तब पार्वतीने भी वह जल पी लिया. इसके अनंतर उस जलका गर्भ पार्व-तीकी दाहिनीकोंखको फाड कर बाहिर निकला और उसमेंसे सब लोगोंको मकाशित करनेवाळा अर्धत बालक निकला. सूर्यके समान तेजस्वी, कंचनके समान देदीप्यमान् शक्ति और ग्रूलको प्रहण किये हुए छः मुखवाळा वह अद्भुत

बालक होता भया, सुवर्ण किसी कांतिवाला वह बालक दुष्ट दैत्योंको मारनेवाला होता भया ॥ ३६-से-४१ ॥

मत्स्यपुराणके १५७ वे अध्यायमेंसे स्वामि कार्त्तिककी यह उत्पत्ति लिखी है—

सुतजी बोले. इसके अनंतर —

'' वामं विदार्थ निष्कान्तः, सुतो देव्याः पुनः शिशुः । स्कंदाच वदने वहेः, गुकात् सुवदनोऽरिहा ॥ १ ॥ कृत्तिका मेलनादेव, शाखाभिः सविशेषतः । शाखाभिधाः समाख्याताः, षट्सु वक्त्रेषु विस्तृतः ॥ २ ॥ यतस्ततो विज्ञाखोऽसौ, ख्यातो ऌोकेषु षण्मुखः । स्कंदो विशाखः षड्वक्त्रो, कार्तिकेयश्च विश्रुतः ॥ २ ॥ चैत्रस्य बहुले पक्षे, पंचदश्यां महावलो । संभूतावर्कसदद्यौ, विशाले शरकानने ॥ ४ ॥ चैत्रस्यैव सिते पक्षे, पश्चम्यां पाकशासनः । बालकाभ्यां चकारैक, मत्वा चामरभूतये ॥ ५ ॥ तस्यामेव ततः षष्ठया-मभिषिक्तो गुइः पशुः । सर्वेरमरसंघातै-ईद्वेन्द्रोपेन्द्रभास्करेः ॥ ६ ॥ गंबमाल्यैः शुप्रैर्ध्वे-स्तथा क्रीडनकैरपि। ्छत्रैश्रामरजालैश्र, भूषणैश्र बिलेपनैः ॥ ७ ॥ अभ्यचितो विधानेन, यथाबत् पण्छसः मधः । सुतामस्मै ददौ कको, देवसेनेति विभुताम् ॥ ८ ॥ पत्म्यर्थं देवदेवस्य, ददौ विष्णुस्तदायुत्रान् । ंधनाधिपः ॥९॥" चन्नाणां दन्न लन्नाणि, द्र

भावार्ध----मूतजी बोले इसके अनंतर अग्निके वीर्यके प्रभावसे पार्वती देवोके बार्ये स्कंधको फाड कर दूसरा बालक निकला. तब कृत्तिकाने उन दोनों बालकोंको संधि और र्शाखाओंमें मिला दिया, तभीसे इनके नाम विशाख-षण्मुख स्कंध और काार्त्तिकेय आदिक संसारमें प्रसिद्ध होते भये. चैत्र ग्रुक्ला पंचमीके दिन शरोंके वनमें सूर्यके समान कांति-वाले दोबालक उत्पन्न हुए. उसी पंचमीके दिन दोनों बालकोंको एक कर दिया और उसी महिनेको षष्ठीको ब्रह्मा इन्द्र और सूर्य इत्यादि देवताओंने स्वामि-कार्त्तिकेयका अभिषेक कर दिया॥ १ से ६॥ फिर गंध पुष्प सुगंधित भ्रुव छत्र चामर और आभूषण आदिकोंसे पूजित किये हुए इस स्वामीकार्त्तिकके निमित्त इन्द्र विधिपूर्वक 'देवसेना ' नाम अपनी पुत्रीको विवाह देता भया. विष्णु भगवान्ने उसको इस दिये. कुबेर दश लक्ष यक्ष देता भया. अग्नि अपने तेजको देता भया. वायु वाहन देता भया. और त्वष्टा देवता कामस्वरूपी मूर्गा उसको खेलनेको देता भया ७॥ से १०॥

महादेवजीका इतने लंबे काल तक उत्पन्न हुआ काम-विकार, अग्निको पीलाये हुए वीर्यका इतना विस्तार; और तालावकी कल्पनासे कार्त्तिकेय स्वामीकी उत्पत्तिका विचार, अगर थोढा भी विचारवाला मनुष्य हो तो समझ सकता है कि, भंगढोंकी कल्पनाके सिक्राय जरा भी सत्यताको भारण नहीं करता.

मत्स्यपुराण अध्याय १७८ में---अंधकनामा दैत्यके १९

(१४१)

साथ शिवजीका बडा भारी युद्ध हुआ मगर शिवजीकी कुछ पेश नहीं चल्री तब शिवजी विष्णुके शरण गए. देखो नीचे के स्रोक—

"तामु तृप्तामु सम्भूता, भूय एवान्धकप्रजाः । अदिंतस्तैर्महादेवः, शूलमुद्गरपाणिभिः ॥ ३८ ॥ ततः स शंकरो देव-स्त्वंधकैर्व्याकुलीकृतः । जगाम शरणं देवं, वामुद्देवमजं विभ्रुम् ॥ ३९ ॥ ततस्तु भगवान् विष्णुः, सृष्टवान् शुष्करेवतीम् । ततस्तु भगवान् विष्णुः, सृष्टवान् शुष्करेवतीम् । या पपौ सकलं तेषा-मन्धकानामस्रक् क्षणात् ॥ ३६ ॥ यथा यथा च रुधिरं, पिबन्त्यन्धकसम्भवम् । तथा तथाधिकं देवी, संशुष्यति जनाधिप ! ॥ ३७ ॥ पीयमाने तथा तेषा-मधंकानां तथाऽसृजि । अन्धकास्तु क्षयं नीताः, सर्वे ते त्रिपुरारिणा ॥ ३८ ॥ मूलान्धकं तु विक्रम्य, तदा शर्वस्तिल्लोकधृक् । चकार वेगाच्छूलाये, स च तुष्टाव शंकरम् ॥ ३९ ॥"

इस उपरके लेखसे साफ सिद्ध हो गया कि, विष्णुप्ते महा-देवजी ज्ञानमें हीन है, इसी वास्ते ज्ञिवजीने विष्णुका ज्ञरण लिया तो फिर शिवजीको परमात्मा तथा सर्वशक्तिमान् कैसे कह सकते हैं %

मत्स्यपुराण १५१ के अध्यायके अंतमें बयान है कि— ' ग्रुंस ' तथा ' निमि ' नामक दैत्योंसे विष्णुका युद्ध हुआ उसमें विष्णु दैत्योंसे मार खा कर युद्धमेंसे भाग निकळे. तथा हि—

सर्वश्ववितत्व भी सिद्ध नहीं हो। सकता और इन दोनों गुणोंके

इस उपरके लेखसे साफ सिद्ध हो गैया कि, विष्णुको तथा गरुडको दैत्योंने एसी मार मारी जिससे गरुड समेत विष्णुजी मूर्छित हो गए तथा मूर्छाके दूर हो जाने पर युद्ध भूमिसे भाग गए. अब विचारना चाहिये कि, जिसको प्रथम यह ज्ञान नहीं था कि मुझे दैत्योंसे मार खा कर भागना पडेगा. वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता और इस तरहसे असामर्थ्यवाळेमें

गदामथोदम्य निमिः भचण्डां. जघान गाढां गरुढं शिरस्तः 1 33 1 शुंभोऽपि विष्णुं परिघेण मूर्झि, प्ररुप्टरत्नौधविचित्रभासा । ती दानवाभ्यां विषमैः प्रहारैः, निपेतुरुव्य**ि प्रनपावकामौ** 11 38 1 तत कर्म दृष्ट्वाऽदितिजास्तु सर्वे, जगर्जुरुचैः कृतसिंहनादाः । धनूंषि चास्फोव्य खुराभिघातै----व्यदारयन् भूमिमपि प्रचण्डाः । वासांसि चैवादुधुवुः परे तु, दध्मुश्र शंखा नकगौमुखौघान् 1 39 1 अथ संज्ञामवाप्याशु, गरुडोऽपि सकेशवः । पराइग्रुखो रणात्तस्मात्, पळायत महाजवः ॥ ३६ ॥"

'' शुंभो वचो विष्णुमुखानिशम्य,

निमिश्व निष्मेष्टुंमियेष विष्णुम् ।

अभावसे वैदिक संप्रदायकी मान्यतासे भी कृष्णजीमें ईश्वरत्व जहीं हुआ.

मत्स्यपुराणके १८७ में अध्यायमें महादेवजीने त्रिपुरको भरम किया इस विषयका बयान है सो यहां लिखते हैं.

मार्कडेयजी बोले हे युधिष्ठिर ! आपने जो मुझसे पूछा है उसको सुनो−जिस स्थानमें नर्मदा नदीके तट पर महादे∙ वजी स्थित हुए थे वहां महेश्वर नाम त्रिलोकीमें विख्यात स्थान होता मया. उसी स्थानमें महादेवजी त्रिपुरके वध करनेका उपाय चिंतवन करते भये ॥ १-२ ॥ वहां स्थित हुए महादेवजीने अपने गांडीव धनुषको मन्दराचल पर्वतके ् समान उंचा करके उसमें वासुकी सर्पकी रस्सी स्वामी कार्त्तिक जगका स्थान विष्णुको उत्तम बाणके अग्र भागमें अग्निको स्थापित कर बाणके मुख पर वायुका प्रवेश करके चारों वेटोंको घोडे और वेदमय ही रथ बना कर घोडोंकी बाग --लगाम अश्विनी कुमारको, रथकी धृरि इंद्रको और ज्ञिवजीने अपनी आज्ञासे रथके तोरणमें कुवेरको स्थित किया ॥३-५॥ त्रिवजीके दक्षिण हाथमें धर्मराज, वाम हाथमें दारुण काल, और ग्थके चक्रमें देवता और गंधवेंकिी स्थिति होती भई. जहाली सारथी हुए, इस प्रकार महादेवजी सब देवताओंका रय बना कर हजारों वर्ष पर्यंत स्थित होते भये. फिर जिस समय प्रष्पयोग पा कर वह तीनों इकट्ठे हो नए, उसी सम-🔫 पर महादेवजी उस 'त्रिपुर'पर बाण छोटते भये, तब उस विद्ररकी स्नी तेजसे और बलसे रहित जाती भई और उस इरमें इजारों उत्पात होते भये-अर्थात् त्रिपुरके विनाशके

अर्थकालरूप उपद्रव होते भये, काष्टके घोडोंकी मूर्ति अट्टहास करने छगी. आंखोंको भी खोछने और मींचने छगी और सब दैत्य सुपनेमें अपने आत्माको छाछ वस्नोंसे विभूषित देखने लगे, जो पुरुष सुपनेमें विपरीत वस्तु देखता है उसके बलबुद्धि शिवजीके कोपसे नष्ट हो जाते हैं. उसके अनंतर सांवर्त्तक नाम युगकें अंतवाळा वायु चल्रता भया ॥६–१४॥ उस वायुके चलनेंसे आग्ने उत्पन्न हो त्रिपुरके दृक्ष दग्ध हो कर पृथ्वी पर गिरते भये, सर्वत्र हाहाकार होता भया. शिघ्र ही उसके सब बगीचे नष्ट हो जाते भये ॥ १५-१६ ॥ अग्निके डोपसे सब जलते हुए हक्ष और घर उस वायुने क्षण मात्रमें ही ल्ह कर दिये और अग्निका समूह दसों दिशाओंमें अत्यंत वढता भया और उसकी ज्वलित[ं] ज्वालाओंसे संपूर्ण पुरके सुके वर्णके समान रक्त हो कर प्रकाशित होता भया ॥१७−**१९॥** धूमके निबिड अधकारके कारण वे सब दैत्य एक घरसे दूसरे घरको नहीं जा सके. इस प्रकार ज्ञिवजीके कोप रूपी अग्निसे दग्ध हुआ वह सब पुर महादुःखित होता भया. सब दिशा-ओंमें इजारों महल जल कर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २०-२१ ॥ उसी दीप्त अग्निसे अनेक प्रकारके चित्र विचित्र विमान ओर अनेक प्रकारके रमणीक स्थान भी भस्म हो कर गिर पडे. वहांके सब जन उन घरोंमेंसे निकल निकल कर देवताओंके स्थानांकी ओर जाते भये और इजारों दानव अनेक स्वरोंसे इदन करते हुए दग्धं होते भये ॥ २२-२४ ॥ और इंस कारंडवादि पक्षिओंसे युक्त कमलिनी और कमलों सहित बगीचे, जलकी वावडी, ये सब आग्निसे दुग्ध हुए दीखते भये. उस परमें उत्तम कमर्कोंसे आच्छादित एक योजनके

(१५०)

विसृत पर्वतके शिखरके उंचे रत्नोंसे जडित हुए महल अग्निसे भस्म हो कर ऐसे गिरते भये जैसे कि थोथे बादल गिरत हैं. उस शिवके कोपकी अग्निने दया रहित होके उत्तम स्त्री बालक गौ पक्षी और घोडोंको दग्ध कर हजारों सोते और इजारों जागते प्राणीओंको भी भस्म कर दीया ॥ २५-२८ ॥ त्रिपुरकी अप्स-राओंके समान स्नियां अपने अपने पुत्रोंको इटतासे पकड कर अग्निकी ज्वालाओंसे दग्ध हो कर पृथ्वीमें गिर पडती ॥२९॥ कोई स्त्रियां मोतीओंकी मालाओंसे विभूषित और नील्रमणिकी मालाओंसे अलंकृत घूएंसे व्याकुल अग्निकी ज्वालाओंसे दग्ध हो कर पृथ्वीमें गिरती भई ॥ ३०-३१ ॥ कोई सूर्यके समान कांतिवाली स्त्री अपने पतिको गिरा हुआ देख कर घरके उपर ही से अपने पतिके उपर गिरती भई और गिरते ही वह स्ती अग्निसे भस्म होगई, परन्तु वह उसका पति दानव हाथमें खङ्ग ऌे कर खडा हो गया और थोडे ही समयमें वह भी अग्निके तेजसे दंग्ध हो कर पृथ्वी पर गिरपडा, कोई मेघके समान वर्ण-वाली हार तथा बाजु बंधोंसे भूषित हो कर, कोई श्वेतवर्णवाली अपने बालकको स्तन पीलाती हुई अग्निमें दग्ध हो गई. कोई अपने वालकको दग्ध हुआ देख कर मेघके समान उच्चस्वरसे रुदन करती भई. तब शिवजोके कोधसे उत्पन्न हुई अग्नि उस बालकको भी दग्ध कर देती भई. कोई हीरे पन्ने आदिके भूष-णोंसे भूषित चंद्रमासीकी कांतिवाली स्त्री अपने बालकको गोदी-में लिये हुए दग्ध हो कर पृथ्वीमें गिरती भई कोई इजिवदना युवति अपने घरमें सोइ हुई और घरको जलता हुआ देख कर अपने दम्ध हुए पुत्रका विलाप करती भई ॥ ३२-३८ ॥ कोई सुवर्ण भूषणोंसे अलंकृत स्ती दग्ध हुए वालकको गोदोमें

छे कर गिरी, कोई स्त्री धूएँसे व्याकल हुई सखीका हाथ पकड पृथ्वीमें गिरी ॥ ६९-४० ॥ कोई स्त्री अग्निसे मोहित हो शिरके उपर हाथोंकी अंजली बांध कर अग्निसे यह प्रार्थना करती भई ॥ ४१ ॥ हे भगवन् अग्नि ! जो तुझारा कोप अपकारी पुरुषों पर है तो घरमें रुकी हुई पिंजरेकी कोकि-लाओंके समान स्त्रियोंका कौन अपराध है ? ॥ ४२ ॥ हे पापी ! निर्दे ! निर्छज्ज ! स्त्रियोंके उपर तेरा क्या क्रोध है. तूं चतुरतासे रहित लज्जासे विहीन, सत्य और शूरताको त्याग रहा है ॥ ४३ ॥ ऐसे ऐसे वचनोंसे तिरस्कार करती भई. कि, हे पापी ? हेंनें संसारमें क्या यह नहीं सुना है कि शत्रुओंकी सियोंको नहीं मारना चाहिये ? ।। ४४ ॥ दग्ध करना तो तुझमें गुण है परन्तु 'द्या ' 'करूणा ' और ' ६ तुरता ' वुछ भी नहीं है।। ४५॥ जलती हुई स्त्रीको देख कर म्लेच्छको भी द्या आ जाती है–अर्थात् उनको भी दुर्वार कष्ट होता है. ॥ ४६ ॥ यह जलानेका गुण भी तूझमें व्यर्थ है, यह केवल तेरा दुराचार ेंहै क्यों कि, स्नियोंके मारनेचे तेरेको कौनता फल है ? ॥ ४७ ॥ हे दृष्ट ! निर्ऌज्ज ! निर्देयी ! मंदभाग्य अग्नि ! तूं वडा दुर्भाग्य है, हमको बलसे जलाता है ॥ ४८ ॥ ऐसा बहुत प्रकारका विलाप करती हुई स्ती कुद्ध हो बालकोंका शोक करती हुई मोहित हो गई ॥ ४९ ॥ पूर्वजन्मके बचु के समान कोधित हुआ अग्नि नदियोंको और क्रुप वापीओंकों भी भस्म कर देता भया ॥ ५० ।। हे म्लेछ ! तूं हमको दग्ध करके किस गतिको प्राप्त होगा १ ऐसे ऐसे वचन उनके सुन कर अग्नि बोला कि, हे स्तीओ ! मैं अपने वज्ञसे तुमको दग्ध नहीं करता, मैं तो नांश ही

(१९२)

करनेको पैदा हुआ हूं, मैं कभी अनुग्रह नहीं कर सकता, मैं शिवजीकी इच्छासे अपनी इच्छा पूर्वक प्रवेश होता हूं. इसके अनंतर ' बाणासुर'भी अपने त्रिपुरको जलता हुआ देखता भया ॥ ५१-५३ ॥ और सिंहासन पर बैठ कर यह वचन बोला कि, थोडे पराक्रवाले दुराचारी देवताओंने मेरा नाश किया है यह निश्चय शिवजीका ही प्रभाव है ॥ ५४ ॥ शिव-जीने परीक्षा किये विना ही मुझको दग्ध कर दिया है, श्विजीके विना मुझको कोई भी मारनेको समर्थ नहीं है ॥ ५५ ॥ ऐसे कह कर बाणासुर अपने पुत्र मित्रादिकोंको त्याग अपने शिरके उपर शिवके लिंगको स्थापित कर नगरके बाहिर निकला ॥ ५६ ॥

इस पूर्वोक्त लेखसे शिवजीने कितने ही निरापराधी इंस कारंडवादि पक्षिओंको, स्त्री बाळ बच्चोंके समूहको तथा इसी तरह अनेक अन्य पाणो गणोंको जला कर भस्म कर दिये, क्या इस कर्मको कोई भी दयाछ न्यायीहृदय अच्छा कह सकता है ?. इस घातक कर्मसे शिवजीको किस पंक्तिमें रखना चाहिये ? यह फैसला न्यायी-हृदयवाले मनुष्यों पर ही रखना समझ कर में इस विषयमें कुछ नहीं लिखता.

आवक — भगवन ! ऐसे ऐसे कर्म करनेवाले देवों पर इन लोगोंकी अद्धा किस तरहसे जमी रहती है ? यह एक बडा भारी सवाल मुझको बार बार विचार चकर्मे फंसा देता है, परंतु आपने प्रथमके व्याख्यानोमें मिथ्यात्वका चित्र सींच कर ऐसी खूबीसे दिखलाया है कि जिस पर ध्यान जानेसे तुरत समाधान हो जाता है कि, मिथ्यात्व हजाहळ

ज़हरको अमृत और अमृतको ज़हर पने माऌम कराता है और पान करनेवालोंको सदैव जन्म मरणके चक्रमें अनंतकाल व्यतीत करना पडता है. आपने साफ साफ उनके बाख्नके नाम अध्याय स्ठोक आदि ठिकाने लिख लिख कर बतलाया है कि देखो−तुम्हारे देवकी छीछा. उसमें भी यह ्बडी खूबी रक्खी है कि, उनके ग्रंथके भाषांतर भी उनके मतके विद्वान् पंडितोंने जिस प्रकार किये हैं उसी प्रकार अक्षरज्ञः छिख दिये हैं. इससे उन लोगोंको यह भी बात कहनेका समय नहीं मिल सकता कि, कौन जाने भाषांतरमें गरवड हुई होगी?. वास्तवमें इस प्रकारसे लिखे हुए छेख ही प्रमाणभूत हो सकते हैं अन्यथा देषानलसे दग्ध हुए अप्रामाणिक मनुष्य जैसे **विना प्रमाण ज्यूं मनमें आवे त्यूं** लिख मारते हैं, उनके लेखमें और प्रामाणिक मध्यस्थ महात्माओंके लेखमें फर्क ही क्या रहें\$. देखिये !~द्वेषानलसे दुग्व हुए मनुष्योंके लेखमें कितनी अप्रमाणिकता और कहीं के उछेर्ख दिये वगैरे मनस्वी विचा-रोंकी दुर्गेधता होती है सी '' घनइयाँ हैं ये नामक पुरुषके बनाये हुए ' पाटणनी प्रभुता ' नामके नेविलके देखनेसे सम्यग्तया ज्ञात हो जाती है. उक्त किताबके १४५ वे पृष्ठ पर जैनधर्मके जतिकी इलकाई दिखलानेके लिये वगैर सबूतीके **छिसा है कि-''** ઝપાટાબ'ધ के કાટના સરસી સરસ્વતી (નકી) વહેલી હલી ત્યાં તે ગયા, અને નજર ફેરવી ઘણા ધ્યાનથી જોતાં કાટમાં એક માટુ બાકાર દેખાયું. એક પળ પણ વધારે ગાળ્યા વિના, એક જમેયા શિવાય પાતાનાં હથિયાર દૂર <mark>કે'</mark>કી, તેણું સરસ્વતીમાં ઝપલાવ્યું, અને તરતા તરતા ત **બાઢારા** તરફ ગયેા. બાઢારામાંથી ગલીચ પાણી નદીમાં પડતું 20

કતું પણુ તેના તરક જતિએ ધ્યાન આપ્યું નહીં. તેણે જોયું તાે તેમાંથી અંદર પેસાય એમ હતું. મહામુશ્કેલીએ, આખા **શરીરને મહા**કષ્ટ થયું તાેયે, ગંધાતા પાણીથી ગુંગળાતા તે **બાકારામાં થઈ** તે અંદર આવ્યા, અને ખાળ કડીમાં ઉભા **થયેા, અને મ્હાેડા** હપરનાે ગંદવાડાે સાક કર્યા. પાસે એક **કુવા હ**તા અને તેના થાળામાં કાંઇ પાણી હતું, તેના વતી તેણે <mark>હાથ મ્હેાં ધા</mark>યાં, અને માહાલયમાં કરવા માંડયું. ત્યાં બધુ **સ્મશાન સમું શાં**ત હતું બણે થાેડીક વારે ઉપર કાેગ હસ્યું, **ઐવેા ભાસ થયેા. તે** હાસ્યે જતિનું ઝુનુન વધારે પ્રદીપ્ત કર્યું ઉપર જઇ લઢવામાં કાંઈ સાર દેખાયાે નહિં, અહીંઆં કેટલાં <mark>માણ્સ છે, તે</mark> બણ્યા વિના પાતાનાં માણ્સા અંદર પેસાડવાં, ઐતાે મૃત્યુના મ્હાેંમાં જવા જેવું હતું. દરેક પળે વલ્લભસેન પાસે આવતા હતા. જે કરવું હાેય તે કરવાને ગણત્રીની પળાેજ હતી. તેણે ઝપાટા ભેર વ્યામ તેમ જોવા માંડયું, કઈ રીતે <mark>મંડલેક્ષરને</mark>ા સંહાર કરવે**। એનેાજ વિચાર તેણે કરવા માંડ**યેા, એટલામાં દૂરથી ધેાકુઓના પગલાંના ભણકારા વાગ્યા, કાન દર્ક સાંભળતાં વલ્લભેસેન પાસે આવી લાગ્યા હાય એમ તેને લાગ્યું. શું કરવું શું કરવું ?, તેણે વ્યાસ પાસ એયું. સામી **રૂદ્રમહાલયની ગાૈશાળા એ**ઇ. પાસે મહાલયના મકાનની સાથે સીંચેલી ઘાસની હંચી ગંજ એઇ. એક રાક્ષસી વિચાર તેને સજ્યા. તે આમ તેમ દાેડયા, તેનું ચાલત તા અગ્નિ દેવતાનું આવાહન કરવા તે ત્યાં બેસી જાત. એક ઓંસરી પર એક <mark>રખારી</mark> હુકકેા મૂકી ઉંધી ગયેા હતાે. તેની ચલમની ગ[ં]ધ જત્તિને આવી. તે તે તરક દાેડયો. લાેભીયાે ધન લે તેવી તરાપ મારી તેણે ચલમ ઝાલી, અને તેને કું કતો તે આગળ આવ્યો.

એક પળમાં તેણે ચલમનેા દેવતા ગંજીની અંદર મૂકંયા અને કું ક મારી ખળતું કર્યું, જતિ દૂર જઇ હરખમાં <mark>હાથ ચાળવા</mark> भंडी गये।. " देखलो साहिब ! है कुछ प्रमाण ? कि, जिससे घनक्यामकी मेघसमान क्याम-काली बुद्धिमेंसे निकली हुई यह कल्पना रंच मात्र भी सत्य सिद्ध हो सके जैसे आपश्रीने मत्स्यपुराणके १२७ वें अध्यायकी सहारत देकर महादवजीने हजारों निरापराधी प्राणियोंको जला कर भस्म कर दिया ऐसा दिखळाया. अगर घनक्यामकी बुद्धि क्यामघनकी तरह क्याम न हुई होती तो वह भी जतिके उपरोक्त वर्णनमें कुछ न कुछ प्रमाण देता कि, अमुक पुस्तकके आधारसे में लिखता हूं फिर विचार किया जाता कि, उस पुस्तकका कत्ती प्रामा-. णिक है या अप्रामाणिक १. बादमें सत्यासत्यका निर्णय हो सकता था परंतु जहां विना ही प्रमाणके मात्र हृदयगत द्वेषको ही शांत करना हो वहां तो जैसे कोई घनक्यामका **बच्** उसके लिये ऐसा लिखे कि, घनक्याम किसीके घरमें घूसनेके लिये रास्ता न मिलनेसे जाजरुके अधोद्वार (जहां परसे भंगी गंदकी उठा छे जाते हैं) से मवेश करके अम्रुकके घरमें गया और वहां पर एक मूत्र कुंड था, उसमें पड कर बरीरकी साफ किया. उसके बाद एक महानीचकर्म किया सी अवाच्य है. बस∸इसी तरह जैनधर्मके शत्रु घनक्यामने भी कल्पना की है. यतिका नदीमें पडना, अग्निका छूना, और गंजीको जला कर खुश होना किसी तरहसे भी संभाव्य नहीं. हां, अगर कोई व्यक्ति अपने धर्मकर्मसे अष्ठ हो कर ऐसा काम करे तो कर सकता है, परंतु ऐसा भी किसी प्रमाण सिवाय नहीं ळिखा जा सकता.

(343)

सूरीश्वरजी— महाशय ! सबूर करो. उस जीव पर भी भावदयाकी दृष्टिसे निहालो उस विचारेने ऐसे प्रावत्र जैन धर्मकी लघुता करनेके संकल्पसे यह काम किया क्रोगा तब तो महान घोर कर्म बांद लिया होगा. उस कर्मको अगतनेके समय उस जीवको असहा पीडा होगी उधर ध्यान दो. क्यों कि-जिस समयमें परमपुनीत चारित्र पात्र यति हो उस समयके उल्लेखमें ऐसी न हुई व्यक्ति की कल्पनासे द्वेषपोषक पात्र खडे करनेवालेका भविष्य अतीव शोचनीय होता है, यह बात अगर तुम्हारे लक्षमें रहेगी तब तुमको उस पर दया आवेगी.

आवक मुनीश्वर ! आपका कथन सत्य है. परंतु हमारे घनश्यामने असत्य छिखनेमें कसर नहीं रक्खी है. मैं मात्र उसकी असत्यता ही दिखलाना चाइता हूं. मुझे कुछ उससे द्रेष नहीं है हां, मेरे अक्षर कठीन है मगर भावना अच्छी है. देखो–घनक्यामने '' प्रथमे ग्रासे मक्षिकापातः '' की तरह प्रथम पृष्ठ पर ही ''श्रावंडे। धणु। स्वय्छंटी थया खता" वगैरह जन्दो . **छिख कर अपने हृ**दयमें जलती हुई होलीकाका प्रथमसे ही दर्शन कराना शुरू किया है, वयों कि किताबके दूसरे पृष्ठ पर " શ્રાવદાને પાતાના રાજાએાના રક્ષણ નીચે નિર્ભયપણે વ્યાપાર કરવાની ટેવ પડી હતી. '' लिखा हुआ यह वाक्य श्रावक राज्यमयोदाके पालक थे ऐसा सिद्ध करता है, फिर उनकी स्वच्छंद कहना लेखककी उन्मत्तता नहीं तो और क्या कहा जाय. पृष्ठ १० पर- " डाए जति १, रस्ते भज्या ढता ते १." इत्यादि लिखाण स्वप्न छायावत् है. क्यों कि, इस वातमें कुछ भी प्रमाण दिखलाया नहीं है. पृष्ठ ११ वें पर जति और मंडलेश्वरकी वार्चारूप कल्पना दलील वगैरकी

गगन कुसुम जैसी असत्य प्रतीत होती है. मात्र उस पृष्ठ परकी बातोंमेंसे घनझ्यामके हृदयमें आवकों पर वडा द्वेष है यही बात सत्यतया भास होती है, क्यों कि वह मंडलेश्वरके मुंहसे ऐसे शब्द निकलवाता है कि-" सटुपयेागमां એटलु अ ठे अनशे तेटला आवंडाने छुंटी नाणीश. "न उस वख्तके आवकों पर मंडलेश्वरको इस प्रकार द्वेष होनेका कुछ साधन लिखा है और नाहीं सहारत. इससे मंडलेश्वरकी यह नीचभावना तो किसी तरह साबित नहीं होती, मगर घनझ्यामकी बुद्धि पर द्वेषानलकी ध्यामता ऐसी चढ़ी हुई है कि, अगर उसको पावर मिले तो अवझ्य मंडलेश्वरके नामसे निकाले हुए अपने नीच हृदय के शब्दोंको अमलमें रक्खे यह तो साबित होता है, मगर बिल्ली और सर्पको पांखें कहांसे ?. कुदरतकी यही खूबी है.

पृष्ठ १३ वें पर---- ''जतिना तरक्ष એક तीक्ष्ण नजर नाभी तेणे (मुंजले) नभरकार क्यां, अने હी यक्षापर येसवा तेने स्यव्युं, पाते पासे पडेला पाटलापर जधने येठा. यीराजे नभरकार मंत्रि मढाराज ! क्रुडी आनंदस्रि येठा. '' यहां पर इस काल्पनिक कथाकी पोल खूल जाती है. क्यों कि, ग्रुंजाल मंत्री जैसा झात आवक जतिको हींडोले पर बैठनेको कदापि नहीं कह सकता तथा यति जिसको सूरिके नामसे प्रसिद्ध किया है मंत्रीको नमस्कार किसी तरह नहीं कर सकता, इसीसे नोवेल बनानेवालेने गप्पगोले चलायें हैं. एसा सिद्ध होता है. इसके जपरांत आनंदसूरि नामका जति उस वल्त हुए हुए महात्माओंकी पट्टावलीओंमें निकलना चाहिये, जब नाम ही न निकले फिर असत्यताका कहना ही क्या है छेखकको उचित था कि, ऐसे कल्पित पात्र बमाते समय जरा विचार करता कि मेरी असत्यता जाहिर होने पर में अप्रमाणिक ठहरुंगा. परंतु जहां द्वेष भर जाता है, वहां पर विचार नहीं रहता और साथ यह भी खयाल रक्खा होगा कि आखिर तो नोवेल ही है ?. इस्में कल्पना प्राधान्य तो प्रसिद्ध है और दूसरे धर्म पर द्वेष हो उसकी सफलता ऐसे नोवेलों दारा सुगमतासे हो सकती है. बस, झट कलम पकड ली और त्येत पर श्यामता करने लगा होगा.

पृष्ठ १९ वें पर-'' भीनળ બાને પ્રણામ કરવાનું રહ્યું છે.'' जतिक ग्रुंइसे निकलवाये ये शब्द भी मन घड़ंत ही है, व्यों कि इस तरह यतिकी खुशामत जैन राणी मीनल देवीको पसंद पडे यह असंभाव्य है और ग्रुंजाल मंत्री जैसे जैन महाशयके पास जति ऐसे श्रब्द वोल्ठ ही नहीं सकता है.

पृष्ठ २४- " जतिने राजसेवानी ઈચ્છા છે, " २५- " આનં દસ્ रिએ પ્રણામ કર્યા. " २६- " જીન ભગવાનના ભગવા વાવટા ઉડતા કરું. " ૨૭- " મીનલ દેવી ગારી સાધ્વીને બાેલાવે છે. " ૫૧- " આનં દસ્ રિ તિલક કરવા આવતા હાય તેમ આગળ આવ્યા. " इत्यादि लिखाण सर्वथा युक्ति झून्य होनेसे सामान्य विचारक भी उसकी असत्यता समझ सके ऐसा है. उसमें भी पृष्ठ २६ वें में- 'જીન ભગવાનના ભગવા વાવટા ઉડતા કરૂં. " इस वाक्यके उल्लेखसे तो घनश्यामने स्पष्टतया अपनी उन्मत्तता प्रकााशित की है, क्यों कि " जिन भगवान्ता भगवो वाक्टा " ये शब्द जन्मत्तके म्रुख सिवाय विचारकके मुखसे निकल हो नहीं सकते.

(149)

પૃષ્ઠ ६४ વેં મેં–''અખતર સંજેલેો એક રજપૂતના વેષમાં એક પુરૂષ અંદર આવ્યેા, તેનું મ્હેાંઢું એવું બાંધેલું હતું કે એકાએક આળખાય નહીં, કાેણ આનંદસૂરિજી ? રાણીએ સાધર્ય પુછ્યું, હા ખા હુંજ મ્હેાંઠાપરથી ફેટાનેા છેડા કહાડી નાંખતાં आनं इसूरिએ કહ્યું. '' ऐसा छिख कर घनक्यामने झूंठा अंधेर फैलाया है, क्यों कि इस प्रकारकी स्थिति उस समयमें तो क्या परंत अद्यावधि नहीं बनी है, फिर ऐसी गप्प मारनेमें क्या फायदा १ किसी मतकी तौढीन करनेके इरादेके सिवाय <mark>ऐसे गप्पगोले चलाने</mark>में अन्य कुछ प्रयोजन नहीं बन सकता लेखकने यह नहीं विचारा कि जैसे कोई सन्निपातके साहच-र्थसे ज्यूं त्यूं बकवाद करे, यूं विना प्रमाण मैं बकवाद करता हूं इसको कौन सत्य मानेगा ?, जब यह बनावटी बात लोगोंमें असत्यतया प्रतीत ही बनी रही तो मेरा लिखना मुझे जनतामें अत्रमाणिक बनानेके सिवाय विशेष फल प्रदाता नहीं बन सकता. मूर्खके ज्ञिर पर कुछ शींगडे.नहीं उगते ?, विना विचारे काम करना यही मूर्खताकी निज्ञानी है. ऐसे अप्रामाणिक मनस्वी ळेखक बहुत हो गये हैं. अतः पाठकोंको ध्यान रखना चाहिये कि, कोई भी पुस्तक देखना तो उसमें जिस मतकी **छघुताके छिये जोकुछ छिखता है सो उस मतके पुस्तक**के आधा-रसे या अन्य मध्यस्थ वर्गकी सूचनासे १, या नो दलीलसे १. इन तीन तरीकोंमेंसे कै।नसे तरीकेसे काम लेता है १ इत्यादि ध्यान दिये वगैर एकदम ऐसे द्वेषिओंके बनाये हुए नोवेलोंसे किसी बातको हृदयमें जमा छेनी ठीक नहीं. क्यों कि, घनइयाम जैसे सैंकडो ध्यामबुद्धिके मनुष्य किसी धर्मके विरुद्ध मनमें आवे ऐसे पुस्तक लिख मारते हैं, इस लिये जिस पुस्तकमें

(140)

युक्ति प्राधान्य हो उसी पुस्तकका मानना योग्य हे.

पृष्ठ ७९ और ९७ पर भी इसी तरइ जतिके वेष परावर्त्तनकी खोटी कल्पना की है. आगे पृष्ठ १४० तथा १४१ वें में जातिके साथ एक पूजारीका संवाद भी अपने देवोंकी महत्वता बढ़ानेके लिये काल्पनिक बना लिया है, सो भी प्रमाणझून्य है. किं बहुना ?. 'करति डे कभद्दत ?' इस प्रकरणका शिर्षक ही लेखकके शिरस्थ द्वेषभाव की परिपूर्णताको बतात¹ है. ऐसी द्वेष भावना-वाले मनुष्य प्रमाण पर दृष्टि रख कर लिखें यह तो पानीमेंसे मक्खनकी प्राप्ति जैसा है. जतिको जमदूत बनानेकी चेष्टाने तो सत्यका खून करनेसे लेखकको ही जमदूत बनानेकी चेष्टाने तो सत्यका खून करनेसे लेखकको ही जमदूत बना दिया है. जमदूत अंधकार मूर्त्ति होता है. इस किंवदन्तीसे घनइयाममें यमरंगका रूपक भी घट सकता है और इस नोवेल्टमें ठिकाने ठिकाने पर सत्यका खून किया है, अतः कर्मसे भी जमदूतका रूपक घनइयाममें घट सकता है.

जतिने आल्लेखी-" કुतरा, હराभभोर, ढगायाल, " आदि <mark>ज्ञब्दो मंडल्लेश्वर</mark>के मुखसे निकल्लवाये हैं. ये ज्ञब्दो भी घनझ्याम के झ्यामहृद्यका पूर्ण परिचय दिलाते हैं.

इस प्रकार कहीं ऌ३कर ले कर जति आया. कहीं मंडले श्वरको नदीमें डुवा दिया. इत्यादि उस पुस्तकमें प्रमाणग्नून्य सन्निपातिक मनुष्यकी तरह असंभाव्य प्रलाप किया है.

ग्रुरुदेव ! इस नोवेलके विषयमें मैंने मेरे ये विचार गत दिन ' पाटणनी प्रधुता ' को देख कर कितनेक यद्वा तद्वा बोल्लनेवाले मतुष्योंको समझाएं वे ऐसे मध्यस्थ थे कि, तुरत - -

समझ नए कि दर असलमें यह नोवेल जैनधर्मगत द्वेषको शक्त करनेके लिए ही घनक्यामने बनाया है. मैं उन लोगोंको सत्यमार्गकी तरफ आकर्षित कर सका यह आपकी कुपाका ही फल है आपके पास अनुभूत लाभके वर्णनके लिये ही इतना बोल कर आपका अमूल्य समय लिया सो क्षमा करें और आगेका हाल सुना कर दासको कृतार्थ करें.

सूरीश्वरजी – तुम अन्य भाईओंको समझा कर टिकाने पर लाये सो ठीक किया. ' पाटणनी प्रश्रता ' नामके नोबलके बकानेवालेने सचे जैनधर्मका अनुमोदन तो क्या करना था पसंतु जतिकी कल्पित बादत लिख कर सचे धर्मकी लघुता करनेका साहस किया है सो मिध्यात्वश्वरूयके कारनसे ममझना. यह शल्य विपरीत ज्ञान कराता है. अर्थात इसके उदयसे पूर्वोक्त दूषणवाले देवको परमात्मा कहते हैं और वीत-राग जिन प्रश्रुको परमात्म स्वरूप नहीं पानते. अरे ! पानना तो वूर रहा मगर कितनेक अज्ञानी उस पवित्रप्रश्रुके लिये भी यद्वा तद्वा लिख मारते हैं सो उनके दुर्भाग्य का पूर्ण उदय है. इस पुस्तकको इसी लिये लिख रहे हैं कि इस के पठनसे जीवोंका मिध्यात्वश्वल्य दूर हो जावे.

आवत --- साहित ! मिथ्यात्वज्ञस्यको किसी उदाहरणसे घटाकर बतलाईये और उस अल्यके होनेसे कैसी दुर्दशा होती हे ? सो फरमाईये

सूरीश्वरजी - देखियें ! मिथ्यात्वशल्य किस तरह दुःख-दायी होता है उसका एक दृष्टांत द्वारा फोटो खींचता हूं.

किसी आदमीके पास प्रथम बहूत घन था परंतु पीछेसे भाग्यने पऌटा खाया और आहिस्ता आहिस्ता सब घन नष्ट २१ (१६२)

.....

हो गया, मात्र पांचसो रुपये उसकी पास बाकी रह गए थे तब **उसने विचार किया कि, विदेशमें जाकर कुछ अपूर्वचीजोंको** खरीद लाऊं. जिसको देशमें वेचनेसे अच्छा नफा रहे. वह दुर्भागी मनुष्य जिस देशमें रहता था उस देशमें 'कोल्हा ' फल नहीं होता था और खरगोश-ससला भी नहीं होता था. तदनंतर वह विदेशमें गया और देखा तो किसी एक नगरके शाक बाज़ारमें एक आदमी कोल्हे बेच रहा था. उसको उसने प्रथम अपनी बात सुना दी कि, मुझे पांचसौ रुपयेका ऐसा माळ खरीदना है कि जिसको मैं अपने देशमें वेचुं तो दूना दाम पैदा हो. उसकी बातको सुन कर वह शाकबेचनेवाळा समझ गया कि, यह कोई बेवकूफ आदमी है इसको अच्छी तरहसे ठर्गे ऐसा बिचार करके बहुत मीठे शब्दोंमें उस दुर्भागीके साथ बातचीत करनी ग्रुरू की. वह दुर्भागी उसे अपना मित्र समझने लगा. थोडोसी बातचोत चलनेके बाद उस अभागोने जससे प्रश्न किया कि, इस टोकरोमें क्या है ?. जसने कहा ये घोडेके अंडे हैं. जब उस मूर्खने किम्मत पूछी तब उस धूर्त्तने सातसौ रुपयेको किम्मत बतलाई वह विदेशी चौंक कर पूछता है कि, हें ? इतनी किम्मत क्यों ?, शाकवाळेने उत्तर दिया कि इस अंडेमेंसे घोडा निकलेगा तब वह एक हजार रुपयोंका होगा और दो चार महिनें इसको माल मसाला खिछानेमें आवेगा तो चौद्दसौंकी किम्मत भी हो जायगी. इस बातको सुन कर उस विदेशीका मन उसे खरीदनेका हुआ परंतु उसके पास रुपये मात्र पांचसौ ही थे, इस लिये चित्त घबराता था. अंतमें बड़ी अधीरतासे उसने कहा कि, मेरा दिल इस चीज़को छे जानेका है परंतु क्या करुं ? मेरे पास

पांचसौ रुपये ही हैं उस शाकवालेने कहा कि, आप हमारे मित्र वन गये हो तो आपका भला करना इमारा फर्न है, इस छिये औरसे सातसौ रूपये छेता हूं परंतु आपसे पांचसौ ही ऌंगा. इस वातके सुननेसे उस दुर्भागीकी खुज्ञीका पार न रहा और झट पांचसौ रूपये देकर उस कोर्व्हको घोदेका अंडा समझ कर खरीद छिया. तब उस धूर्च श्वाकवाळेने क**हा** कि देखना १ इसको ज़मीनकी या दूसरी चीजको ठोकर न लगे ऐसे रखना. अगर कच्चा फ़ुट जायगा तो सिवाय छोटे छोटे बीजके और कुछ नहीं निकलेगा. इस लिये अच्छी तरइसे इसकी रक्षा करना, कितनेक कालके बाद उसमेंसे स्वयं घोडा निकलेगा. अब वह दुर्भागी उस कोल्हेको लेकर अपने देशकी तरफ छोटा. एक दिन किसी वनमें रसोई करने छग तब वृक्ष पर चढ कर जिस कपडेसे अपनी जानकी तरइ कोइहेको बचा रहा था एक वृक्षकी मजबूत ढाळीसे उस कपडेको गांठ लगा कर उस कोल्हेको लटकाया गया उसके नीचे ऐसी घनो झाडी थी जिसमें अगर कोल्हा गिर जाय तो पत्ता छगाना भी मुझ्किल हो जाय दैवयोगसे दीली दी हुई गांठ खोसक गई और कोल्हा उस झाडीमें गिर गया. जसके पडनेके बञ्दसे भडक कर उस झाडोमें रहा हुआ एक खरगोश निकल कर दूसरो तरफ भागता हुआ उस दुर्भागीने देखा और उसके पीछे दौडने छगा परन्तु खरगोग-सस-ल्लाकी दौडके आगे उसकी दौड ही क्या थी **१** जिससे वह पहुंच सके. अब वह मूढ विचार करने लगा कि, हाय ! हाय ! यह कचे अंडेसे निकला हुआ छोटासा घोडा भी इतनी तेज चाळसे दौडता है अगर परिपक दञ्चाको पाप्त हुए अंडेसे

इसका जन्म होता तो न माळूम किस हवाई चालसे चलता. वेशक ! मेरे मित्रके कथनानुसार चौदहसौ तो क्या ? छेकिन दी इज़ार रुपयोंने खरीदनेवाले भी इनारों ग्राहक मिलते परंतु हाय मेरा उतना भाग्य कहां ? जो वह फल सुझको मिछें ?. अस्तु, अब मैं इसे जंगलमेंसे हूंढ निकालू. कहीं न कहींसे वह छोटा घोडा हाथमें आ जायगा तो उसे खीळा पीला कर मैं बडा बना ऌंगा और मेरा मनोरथ पूर्ण हो जायगा. इस विचारसे वो मूर्ख सारे जंगलमें भटकता फिरता है. कोई उसकी वात्ताकी सुन कर सत्यस्वरूप पा लेता है तो उसे समझाता है कि, अरे मूर्ख ! तूंने किसी धूर्त्तसे ठगा कर पांचसौ रुपयोंमें ।सफ आठ आनेकी कीम्मतवाला कोल्हा ही लिया होगा और जिसे तूं घोडा समझता है वह खरगोश होना चाहिये. नाहक जंगलमें भटक भटक कर क्यों मरता है ?. इत्यादि अनेक प्रकारसे समझाने पर भी वह उस कोल्हको घोडेका अंडा और खरगोशको घोडा ही समझता रहा और समझानवालोंको असत्यवादी मानता रहा और सारी उमर भटक भटक कर मर गयाँ.

महाशय ! जैसे उस मूटके मनमें शस्य भर गया, जिससे कोल्हाको अंडा और ससको घोडा मान लिया, तथा सत्य-वादी जनोंको असत्यवादी और शाक बेचनेवाले उस असत्य-वादी ठनको सत्यवादी समझता रहा, जिससे सारी उम्रके लिये दुःखो बन गया. बस, इसी तरह जिसके हृदयमें मिथ्या-त्वश्रस्य भर गया हो उसकी भी ऐसी ही दशा होती है. जैसे उस दुर्भागी मनुष्यने अपनी मूर्खतासे उस कोल्हेको घोडेका अंडा समझा ऐसे ही भिथ्यात्वशल्यके कारण घनश्यामकी

'' अनायं दुर्गतं विषं, नाथवन्तमथापि वा । डद्वाहयति यस्तीर्थे, तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ३७ ॥ यावत्तद्रोपसंख्या च, तत्प्रस्तति कुलेषु च । तावद्वर्ष सद्दसाणि, शिवलोके महीयते ॥ ३८ ॥ "

हू. दसा ग मत्स्यपुराण-अध्याय १९१ पृष्ठ ७२२ वे में सूचित किया है कि---

सूरीश्वरजी- धर्मके अभिछाषी सदगृइस्थ ! आगे तुमको ब्राझणोंकी स्वार्थटत्तिके विषयमें सुनाया था, उसमें एक संख्याकी द्वाद्धि करनेवाळा पाठ मत्स्यपुराणका भी सुनाता हूं. देखो !.

अट्रिये छ वे दिन सूरीश्वरजोने जिस समय अपनी निय-सिंह मित धार्मिक कियाओं करके निज स्थानको सुशो-भित किया है उसी समय वह धर्मामृतका पिपासु गृहस्थ भी आ पहूंचा और आचार्य भगवान्को वंदन करके यथास्थान बेटा और पूज्यपाद महाराजने भी आपना वक्तव्य शुरू किया.

हीन चारित्रपात्र सिद्ध करनेकी उसने कोग्रीश की है. अच्छा ! अब यहां ही रखते हैं, आगेका बयान ज्ञानी दृष्टभाव हुआ तो कल्लरोज सुनानेमें आयगा.

+>-+>--+

" षष्ठ-दिवस. "

बुद्धिमें भी विषमता उत्पन्न होनेसे पवित्र चारित्रपात्रोंको भी

(१६५)

अर्थ-अनाथ गरीच बाह्मण तथा धनाढ्य बाह्मणको जो इस तीर्थ पर विवाह देता है, वह जितने उस बाह्मणके ग्ररीर पर रोम होते हैं और उसकी संतान पर भी जितने रोम होते हैं. उतने ही हजार वर्ष तक शिवलोकमें वास करता है ॥ ३७--३८ ॥

क्या बात है १ जहां पर ऐसे स्वार्थोजन छेखक हो, वहां पर सत्यधर्म पर परदा डाछनेमें आवे तो आश्चर्य ही क्या है १. आगे मत्स्यपुराणके २३८ वे अध्यायमें देवताआंको पसझ रखनेके छिये पशु हिंसा करनेका जिकर है, सो युक्त नहीं है. क्यों कि, पशुहिंसा जैसे नीच कर्मसे देवता प्रसन्न हो यह युक्ति युक्त नहीं है. अस्तु. कदाचित कोई नीच देवता पसज हो तो भी क्या १. नोचकर्मसे तृप्त होनेवालोंको नीच कर्मसे भी तृप्त करना यह सत्य शास्त्रका कथन नहीं है, किन्तु बनावटी कल्पना जालसे भरे हुये कुशास्त्रोंका ही कथन मानना चाहिये. बस-ऐसे शास्त्रोंसे विम्रुख होकर न्याय शास्त्रसे प्रेम बद्ध होना यही मुक्तिका साधन है. मगर पूरी जांच किये वगैर किसी शास्त्रको न्यायी शास्त्र मान लेना यह भी भ्रम संसारको बढानेवाला है, मुक्तिपद किसी तरह नहीं सो स्वयाल रहे.

हिंसा एक नीचकर्म है जिसके करनेसे मनुष्य घातक आदि उपनामोंको धारण करता है. तो फिर परमात्मा हिंसक सिद्ध होवे ऐसे झास्त्रोल्ळेख सत्य किस तरह ठहर सकते हैं?. अगर झास्त्रोल्ळेख सत्य ठहरेतो परमात्मा पामरात्मा ठइरता है. " इतो व्याघ्र इतस्तटी " जैसा जहां न्याय हो वहां कल्याण क्रिस तरह हो सकता है?.

देखो मत्स्यपुराणके २४८ वे अध्यायमें जहां यही न्याय चरितार्थ होता है.

त्रसाजीके कथनसे दानवोंको साथ मिल्ला कई देवताओंने सम्रुद्रका मथन किया. इस काममें विष्णुजीने सहायता की. इस मथन क्रियासे इजारों ही हाथी वगैरह जानवरोंका नाज्ञ होता भय। ऐसा जिकर है. इससे या तो मत्स्यपुराणको कुशास्त्र या कृष्णजीमें कुंदेवत्व दो बातोंमेंसे एक बात तो अवक्ष्य कबूल करनी पढेगी.

मत्स्यपुराण अध्याय २५० वे में ऋष्णजीने मोहिनी रूप बनाकर दैत्योंको ठगकर उनके पाससे अमृत लेकर देवताओंको पिलाया और युद्धमें सुदर्शनचक्र द्वारा इजारों दैत्योंका विनाश किया. इस तरह खून ठगाई वगैरा काम कृष्णजीको उच्च दर्जेवाला साबित नहीं होने देता भला ! ये शास्त्र ही किस कामके १ जो लोगोंको अनीति सीखावे.

इस पुराणके २६० वे अध्यायमें वास्तुकी बलिमें मांस रुधिरका चढाना योग्य समझा गया है क्या यह अनीति नहीं है ⁹

अध्याय १७ वें में श्रादमें मांस खानेका उल्लेख है. तथाहि—

" अनं तु सदधिक्षीरं, गोष्टतं शर्करान्वितम् ।

मांसं मीणाति वै सर्वान् , पितृनित्याह केज्ञवः ॥ ३० ॥

१ परमात्म पद्का अभाव.

(村く)

द्वौ मासा भत्स्यमांसेन, त्रिमासान हारिणन हु औरभ्रेणाथ चतुरः, शाकुनेनाऽथ पंच वै ॥ ३१ ॥ षण्मासं छागमांसेन, तृप्यन्ति पितरस्तथा । पार्षतैः सप्त मासेन, तथाऽष्ठावेणजेन तु ॥ ३२ ॥ दश मासांस्तु तृप्यंते, वराहमहिषामिषैः । शशकूर्मजमांसेन, मासानेकादशैव तु ॥ ३३ ॥ संवत्सरं तु गच्येन, पयसा पायसेन च । रौरवेण च तृप्यन्ति, मासान् पंचदश्वैव तु ॥ ३४ ॥ व्याघ्रचाः सिंहस्य मांसेन, तृप्तिर्दादश्व वार्षिकी । कालशाकेन चानंता, खड्गमांसेन चैव हि ॥ ३५ ॥ यत्किचिन् मधुसंमिश्रे, गोक्षीरं घृतपायसम् । दत्तमक्षयमित्याहुः, पितरः पूर्वदेवताः ॥ ३६ ॥ "

अर्थ - दही दुध घृत खांड इनोंसे युक्त अन्नका मोजन करानेसे पितर एक महिने तक तृप्त रहते हैं ॥ ३० ॥ और मत्य मांससे दो महिने तक, हिरणके मांससे तीन महिने तक, मेढेके मांससे चार महिने तक, पक्षिओं के मांससे पांच महिने तक, मेढेके मांससे चार महिने तक, पक्षिओं के मांससे पांच महिने तक ॥ ३१ ॥ बकरेके मांससे छः महिने तक और बिंदुओं-वाळे हिरणके मांससे सात महिने तक, एण संइक मृगके मांससे आठ महिने तक, सूअर भेंसा इनके मांससे दश महिने तक, ज्ञज्ञा कच्छुआ इनके मांससे ग्यारह महिने तक ॥३२ ३३॥ गोके दुध वा क्षीरके भोजनसे वर्ष दिन तक, रौरव संइक हिरणके मांससे पंद्रह महिने तक ॥३४ ॥ मेंढा और सिंह इमके मांससे बारह वर्ष तक, कालज्ञाक और गेंढेके मांससे अनंत वर्षों त पितर तुप्त रहते हें ॥ ३५ ॥ और देवता सैंब्रक पितरोंका यह भी वचन है कि जो सहद-मध आदिक मिष्ट पदार्थसे बने हुए पदार्थ है, उनसे वा गौके दुध और इसी दुधकी तस्मै-खीरके भोजन कराता है वह उसके पितरोंको अक्षय गुण होकर प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥

इस प्रकार उपरोक्त भावार्थवाले श्ठोकोंके शिक्षणमें जरा भी धार्मिक शिक्षणका अंत्र होवे ऐसा कौन सहृदय स्वीकार कर सकेगा ?

कौशिक ऋषिके सात पुत्रोंने गौको मार कर खा लिया और गुरुके पास झूठ बोले कि, गौको व्याघ्र भक्षण कर गया. ऐसा जिकर इम आगे लिख चुके हैं, सो ही जिकर इस पुराणके २० वे अध्यायमें आता है.

् विष्णुपुराण चतुर्थांश दूसरे अध्यायके चौथे पत्र पर वर्णन है कि----

मनुको छींक आई और उसकी नाशिकामेंसे 'इक्ष्वाकु ' नामका पुत्र उत्पन्न हुआ. '' क्या इस बातको कोई मान सकता है कि छींक आनेसे नाशिकामेंसे लड़का गिरे श. हां, अट्टेष्म जरूर गिरा होगा.

आगे यहहाल है कि उस इक्ष्वाकुने अपने ' विकुक्षी ' नामा पुत्रके पास अष्टका श्राद्धके लिये मांसकी जरूरत बतलाई तब उसने वनमें जाकर अनेक मृगादि जानवरोंको जानसे मार ढाला.

अब विचारना चाहिये कि इस प्रकारके श्रादके बीधक ज्ञास्त्र मांसाहारीओं के बनाये हुए क्या नहीं सिद्ध होतें?. और इन बातोंमें घर्षका होना क्या बन सकता है?. कहना ही

(१७०)

होगा कि, नहीं ! नहीं ! !. इन बातोंका करना तो महाअधर्म है ही है मगर इन बातोंकों सत्य मानना भी पापके लिये होता है.

विष्णुपुराण अंश ४ अध्याय १३ के २८ वे पृष्ठ पर 'स्यमंतकमणि'के लिये कृष्णजीने शतधन्वाको जानसे मार ढाला जिस बातका उल्लेख प्रथम लिख चुके हैं सो ही विषय है. मात्र इतना ही फर्क है कि, कृष्णजीने जब बलभद्र-जीको कहा कि शतधन्वाको मारा मगर मणि उसके पास नहीं निकली. तब बलभद्र समझे कि, कृष्ण मणिके लोभसे मेरे पास झूंठ बोलते हैं; इस वास्ते उनका भाईसे वैमनस्य हो गया. कृष्णजीने सोगन खाया मगर उनोने नहीं माना और विदेहपुरीमें चले गये और श्रीकृष्णद्वारकामें आ गये.

विष्णुपुराण अंज्ञ ४ अध्याय १९ के ३७ वे पत्रमें कथन है कि—

सुंदर अप्सराओंको देख कर सत्यधृतिका वीर्य निकल पडा और सरकन्ने पर पडनेसे आधा एक तरफ और आधा एक तरफ हो गया एक तरफके वीर्यसे लडका उन्नन्न हुआ और दूसरी तरफके वीर्यसे लडकी उन्नन्न हुई. उस समय शांतनु शिकार करनेको आया था सो इन दोनोंको दया करके ले गया लडकेका नाम ' ऋप ' और लडकीका नाम ' छपी ' रक्खा. सो द्रोणाचार्यकी स्त्री और अश्वत्थामाकी माता होती हुई. देखो ! कैसी असत्य कल्पना है!. ऐसी कपोल कल्पनाको बतानेवाले ज्ञास्त धर्मके रहस्यको किसी तरह प्रकाशित नहीं कर सकते हैं. अतः इन बनावटी शास्त्रोंको जलांजलि देकर सत्यशास्त्रोंकी तरफ झुक जाना चाहिंये. विष्णुपुराण अज्ञ ५ अध्याय १० के २०वे पत्रमें-श्रीकृष्णने व्रजवासीओंको गोवर्धन पर्वतका य**ब्र पूजन कर**-नेका उपदेश किया है----

" तस्माद्रोवर्धनः शैल्रो, भवद्धिविधाईणैः ।

अर्च्यतां पूज्यतां मेध्यं, पशुं इत्वा विधानतः ॥ ३८ ॥"

भावार्थ-इस स्रिये विविध शकारकी सामग्रीसे गोव-र्द्धन पर्वतका अर्चन करो और पशुको मार कर उस पर्वतकी पूजा करो ॥ ३८ ॥

" तथा च कृतवन्तस्ते, गिरियइं व्रजौकसः । दथिपायसमांसाद्यैः, ददुः शैवबल्छिं ततः ॥ ४४ ॥ द्विजाँश्व भोजयामासुः, शतशोऽथ सहस्रशः । "

भावार्थ----क्रष्णजीके उपदेशको मान कर व्रजवासीऑने दहि दुध मांस आदि पदार्थोंसे शैळ--पर्वतको बली दी ॥४४॥ और सैंकडों इज़ारों बाह्मणोंको भोजन कराया ।

इस उपरके श्लोकोंसे सिद्ध हो गया कि, दुध दही तथा पशुको मार कर उसके मांससे गोवर्धन पर्वतका पूजन करनेका उपदेश्न देनेवाले कृष्णजीमें दयाका अभाव था, अन्यथा ऐसा उपदेश कभी नहीं देते और जिन सैंकडो हजारों जाझाणोंने वहां पर भोजन जिमा उनको भी महाकठोर हृदयवाला कहना चाहिये. उन कठोर हृदयोंसे मगट हुए शास्त्र दया भावका पोषण करे यह सर्वथा ही असंभाव्य हे.

विष्णुपुराण पांचवे अंज्ञके २३ वे अध्यायमें महा-देवजीका ऋष्णजीकी साथ युद्ध हुआ जिसमें महादेवजी हार गए. ऋष्णजीने महादेवजीके भक्त बाणाम्चरको सुदर्शनचक्रसे परलोकमें पहुंचानेका ईरादा किया, तब महादेवजीने ऋष्णजी की स्तुति की तब प्रसन्न वदन ऋष्णजीने उसको छोड दिया.

यह वर्णन लड़कोंके खेल जैसा है. जैसे लडकें खेलमें एक राजा बनता है तो दूसरा कैदी और किसी समय कैदी राजा बनता है और राजा कैदी; ऐसा ही हाल हिंदु पौराणिक देवोंका है. अथवा नाटकीयोंकी दशा जैसी इनके अवतारोंकी दशा है. शिवपुराणमें रूष्णजीने शिवजीकी स्तुति की और उसे मसन्न किया. यहां पर महादेवजीने रूष्णजीकी स्तुति की और इन्हें पसन्न बनाया. इस प्रकार पारस्परिक असामर्थ्य दिखलानेसे दोनोंमेसे परमात्मपना नाबुद होता है. इतना ही नाहीं परंतु इन शास्तोंकी परस्पर विरुद्धता इन शास्तोंको कुशास्त्रकी कोटिमें स्थापन करती है.

विष्णुपुराणके पूर्व अंशके ३४ वे अध्यायमें-कृष्णजीने सुदर्शनचक्रसे काशीपुर्राको भस्म कर डाला

अब यहां विचारना चाहिये कि, निरापराधी हज़ारों नर नारीएं तथा हस्ति अश्वादि संख्यातीत जानवरोंका नाहक विनाश करनेवाळे क्रुष्णजीको कौन अकलमंद अच्छे आदमी-योंमें सुमार कर सकता है?; जब तक कि यह शास्त्र असत्य है ऐसा कहनेमें न आवे.

तथा इसी अध्यायसे महादेवजीकी पूर्ण अनभिज्ञता सावित होती है. क्यों कि, काशीराजाका मस्तक श्रीक्रुप्णने काट डाला ऐसा माऌम होनेसे काशीराजाके पुत्रको बडा भारी कोध चढा और शंकरको आराधना की, जिससे शंकर उस काशीराजाके पुत्र पर प्रसन्न होकर कहने लगे. वर मांग. उस राजकुंवरने वर मांगा कि, मेरे पिताको मारनेवाले जो श्रीऋष्ण है उसका वध करनेके वास्ते यह 'कृत्या ' आपके प्रसादसे उठो शंकरने कहा ऐसा ही होगा. ऐसा कहनेसे वो कृत्या अग्निरूप उठ कर कृष्ण कृष्ण बोलती हुई कृष्णको भस्म करनेके लिये द्वारकामें पहुंची. द्वारका-वासी लोग घवराकर श्रोकृष्णके शरणमें गए उसी वरूत श्रीकृष्णने सुदर्शन चक्र उस शंकरकी कृत्या उपर फेंका, उसी वरूत वो कृत्या वहांसे पीछेको भागी; और काशीपुरीमें दाखिल हो गई. सुदर्शनचक्र भी उसकी पीछे लगा हुआ गया; तब काशीराजाका सैन्य तथा महादेवजीका प्रमय गण भीजो शास्तास छोडनेमें बडा चतुर था-बो सुदर्शनचक्रको पीछा हटानेके लिये सामने आया; परन्तु अग्निकी ज्वाला-ओसे जटिल उस सुदर्शनचक्रने काशीराजाके सैन्यको तथा महादेवजीके प्रमथ गणको भी भस्म कर डाला.

इस पूर्वोक्त उल्लेखसे विदित होता है कि, महादेवजी अनभिज्ञ थें. अन्यथा जान लेते किं, कृत्यासे श्रीकृष्णका वध नहीं होगा; बल्के कृत्याको नाश करनेके वास्ते श्रीकृष्ण चक चलावेगा उसके डरसे भाग कर कृत्या काशीपुरीमें घुस जायगी और चक्र आकर मेरे प्रथम गण समेत काशीको भस्म करेगा और मेरा दिया हुआ वर भी झूंठा हो जायगा. ऐसा नहीं जाना और काशीराजपुत्रको वर दे दिया इससे साफ साबित हुआ कि, शंकर पूरे अनभिज्ञ थे. ऐसे अनभिज्ञ और दया शून्योंकों ये लोग परमात्मा किस तरह कह सकते हैं ?. इसका सत्य उत्तर उन लोगोंका अंतरात्मा देवे और ये (808)

लोग सचे स्वरूपको समझ लेवे. बस-इमारा यही इरादा है. बाकी इमको किसी तरहका द्वेष भाव नहीं हैं. हम मानते **हें** कि, कृष्णजीके बारेमें जैसा इन्होंने लिखा है वैसे काम उन्होने नहीं किये हैं. वे ऐसे न्यायी राजा थे कि, जिन्होंने देवके साथ अधम युद्ध करनेका भी साफ इन्कार किया था सो बात जैन दृष्टिसे कृष्णजीकी स्थितिका विचार करनेवालेकों ज्ञात हो सकती है और उनके वासुदेव पदके खयाल आनेसे भावी स्थितिका आरोप वर्त्तमानमें करनेसे इट सकते हैं परन्त इस विषयकी सत्य इकीकत जाननेके लिये मध्यस्थ भावसे बहुत जैनशास्त्रोंके अवल्रोकनकी तथा अनेक तत्त्वज्ञ महाशयोंकी बार बार मुलाकातकी खास जरूरत है. परन्त यह याद रहे कि, स्वार्थी ब्राह्मण लोगोंको माऌम न ही. नहीं तो जैनधर्म जैनगुरु और जैनदेवक विषयमें द्वेषके मारे इतने चुरे झब्द सुनायेंगे कि, जिसका हिसाब न रहेगा. क्यों कि जैनियोंके परिचयमें आया हुआ **एकदम समझ** जाता है कि, अम्रुक २ बातें स्वार्थियोंने दाखल की है और इस समझसे उन लोगोंका नुकसान होता है. अतः वे अनेक तरहसे पपंचोंसे भी अपने अनुयायियोंको अपनी जालसे नहीं छटने देंगे: यह खास .अनुभवकी बात है. देखो इनके स्वार्थका नम्रुना----

मनुस्मृति प्रथम अध्याय पृष्ठ ३८ वा में लिखा है कि-" यस्यास्येन सदाश्नन्ति, इव्यानि त्रिदिवौकसः । कव्यानि चैव पितरः, किंम्भूतमधिकं ततः ॥ ९५ ॥" भावार्थ---जिस बाह्मणके मुखर्मे बैठ कर देवता इव्य और पितर कव्य सदैव खाते हैं उससे अधिक प्राणी कौन हे ? ॥ ९५ ॥

" भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः, प्राणिनां बुद्धिजीविनः । बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा, नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ ९६ ॥" भावार्थ-थावर जंगमोंमे प्राणवाले और प्राणवालोंमें बुद्धिवाले और बुद्धिवालोंमें मनुष्य और मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है ॥ ९६ ॥

'' विद्वाँस्तु बाह्यणो दृष्ट्वा, पूर्वोपनिहितं निधिम् । अशेषतोप्याददीत, सर्वस्याधिपतिर्हि सः ॥ ३७ ॥ म० अ० ८

अर्थ-विद्वान् ब्राह्मण तो किसीकी रक्खी हुई निधिको देख कर सबको ग्रहण कर छे. क्यों कि वह विद्वान् ब्राह्मण सबका प्रभु है ॥ ३७॥

" यं तु पश्येत्रिधिं राजा, पुराणं निहितं क्षितौ ।

तस्माद द्विजेभ्यो दत्त्वाई—मईं कोशे प्रवेशयेत् ॥ ३८ ॥" भावार्थ—पृथ्वीमें गड़ी हुई पुराणी निधिको राजा देखे. अर्थात् राजाको मिल्ले उस निधिर्मेसे आधा धन ब्राह्म-णको दे कर आधा अपने कोशमें रख दे ॥ ३८ ॥

देखा १ इन उपर के श्लोकोंमें बाह्यण लोगोंने अपने स्वार्थको किस कदर पुष्टि की है १.

'' मौण्ड्यं प्राणान्तिको दण्डो, वासणस्य विधीयते । इतरेषां तु वर्णानां, दण्डः प्राणान्तिको भवेत् ॥१३९॥'' मे अ–८ ॥

मतलब यह कि, चाहे ऐसा अपराध बाह्मण कर लेवे तो भी उसको फांसी या स्तली आदि साधनोंसे पाणांतिक दंड देना उचित नहीं किंतु सिर्फ उसका सिर ग्रंडवाना यही उत्कृष्ट दंड है. बाकी अन्य तीन कोंमोंको अपराधकी विशेष-तामें पाणांतिक दंड भी हो सकता है. क्या यह बाह्मणश्वाही नहीं है ?.

" न जातु ब्राह्मणं इन्यात्, सर्वेपापेष्वपि स्थितम् ।

राष्ट्रादेनं वहिष्कुर्यात्, समग्रधनमक्षतम्॥३८०॥" म-अ-८॥

भावार्थ-संपूर्ण पापोंमें स्थित भी ब्राह्मणको कद!चित् न मारे किंतु संपूर्ण धन सरित और देइमें घावोंसे रहित इस पापी ब्राह्मणको राजा देशसे बहार निकाल दे ॥ ३८० ॥

" न बासणवधाद् भूया-नधर्मो विद्यते छवि । तस्मादस्य वधं राजा, मनसापि न चिन्तयेत् ॥३८१॥''

म-अ-८॥ भावार्थ-ब्राह्मणक वधसे अधिक अधर्म पृथ्वी पर नहीं है. तिससे संपूर्णपापोंके करनेवाले भी ब्राह्मणके वधकी चिंता राजा मनसे भी न करे ॥ ३८१ ॥

" पुत्रेण लोकाझयति, पौत्रेणानत्यमश्चते । अथ पुत्रस्य पौत्रेण,बध्नस्यामोति विष्ठपम् ॥ १३७॥ " म—अ—९॥ इस उपरके स्ठोकमें अपना स्वार्थ साधनेके लिये झासगोंने मुपोक्ति लगाई है. स्वार्थ यह कि, इस श्लोकको सुन कर दुनि-यांके लोग विवाह करेंगे तव लग्न कराती वल्त तथा सीमंत वल्त पैदाश होगी और जिमन भी मिलता रहेगा, फिर लडका लडकीका जन्म होगा जस वल्त भी बासगोंको पैदाश होगी तिसके बाद उन लडके लडकियोंकी सगाई--नाता तथा विवाह में भी लाभ होता रहेगा. इत्यादि स्वार्थ साधनेके वास्ते ही उन्होंने ऐसे श्लोक बना लिये हैं. इतना ही नहीं किन्तु मरे बाद लडके होंगे तो अपने माता पिता दादा आदिका आद करेंगे तब भी हम बासगोंको मिष्टान्नका जिमन तथा दक्षणा मिल्लेगी

" कितवान् कुञ्चीलवान् कूरान्, पाषण्ड स्थाँश्व मानवान् । विकर्मस्थान् ज्ञौण्डिकाँश्व, क्षिप्नं निर्वासयेत् पुरात् ॥२२५॥" म-अ-९॥

भावार्थ--- द्यूत आदि करनेवाले कितव नर्चक और गानेवाले कूर और पाखंडी, वेदके विरोधी, विकर्ममें स्थित --अर्थात् ख्रुति और स्मृतिसे बाह्य व्रतके धारी और शौंडिक--- मद्यप, इन सबको राजा अपने पुरसे निकास दे॥ २२५ ॥

यहां पर जूआरी आदिकको नगरसे निकालना लिखासो ठीक है परन्तु यह जो लिखा है कि, वेदके विरोधी और श्रुति स्मृतिसे बाह्य व्रतके धारीको भी पुरमेंसे राजा निकास दे सो कथन पक्षपातसे भरा हुआ है. कारण कि, वेद स्मृति और पुराणोंमें लिखे मूजब पशु और पक्षियोंको मारके देवताओंका पूजन करनेवाले तथा श्राद्ध करके मांसका भक्षण करनेवाले २३ जिन पाप बास्नोंसे बन सकते हैं उन बास्नोंके मानने वालोंको तो देशसे वा नगरसे बाहर नहीं निकालना और इन पूर्वोक्त बास्नोंको नहीं माननेवाले धर्मात्मा दयालुजनोंको पुरसे या देशसे बहार निकास दे यह महा दुःखदायी करूरतासे परिपूर्ण स्वार्थसाधक पक्षपात नहीं तो और क्या है?.

" परामप्यापदं माप्तो, बाह्मणात्र मकोपयेत् । ते ह्येनं कुपिता इन्युः, सद्यः सवल्लवाइनम् ॥ ३१३ ॥ यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्नि-रपेयश्च महोदधिः । क्षयो चाप्यायितः सोमः, को न नझ्येत् प्रकोप्य तान्॥३१४॥' म-अ-९ ॥

भावार्थ-परम आपदाको प्राप्त हुआ भी बाह्मणको कोपायमान न करे. क्यों कि, कुपित हुए ब्राह्मण बछ वाह नके साथ इसका नाज्ञ करे. जिन्होंने अग्निको सर्व भक्षी और सम्रुद्रको अपेय और चंद्रमाको हानि टाद्धिवाळा बनाया है, उनको कोपायमान करके नाजको कौन नहीं प्राप्त होता ? ॥ ॥ ३१३-३१४॥

देखिये ! कुद्रतसे अग्निका सर्वभक्षी यानि सर्वको भस्म कर देना और सम्रुद्रका क्षारके कारन अपेय होना, चन्द्रमाका द्रव्य संयोग वश न्यूनाधिक्य होना अनादि सिद्ध स्वभाव है सो ब्राह्मणोंने किया है लिखना कितना मृषावाद है ?. और इस लिये इनसे डरना; वे चाहे इतनी कठोरता करे मगर उनको कोपायमान नहीं करना, अगर किया तो सत्यानाश कर डार्लेंगे ये वार्ते अपनी सत्ताको सार्वभौम बनानेके लिये हो दक्ष भूदेवोंने मनःकल्पित बना ली हैं. यह जरा भी अकल रखनेवाला मध्यस्थ मनुष्य समझ सके ऐसा विषय है इस लिये नहीं र्लंबाया जाता और इसी प्रकारके इसके साथ दो स्ठोक और ब्राह्मणी सत्ताके स्थापक हैं सो अकलमैंदको ईशारा काफी समझ कर नहीं लिये जाते.

श्रावक—महाराजा ! अगर वो छोग ऐसा कहे कि, जैसे कोई ऋषि तपस्वी महात्मा पूज्य होता है और उसको कोपाय-मान करनैवास्त्र दुःखी हो जाता है. इसी तरह अच्छे कर्म करनेवाछे ब्राह्मणोंको पूज्य माना जावे ओर उनको कोपिंत करनेसे नुकसान होवे तो उसमें आश्चर्य क्या?.

सूरीश्वरजी — नहीं नहीं, ऐसा ही नहीं है, किन्तु मूर्ख तथा चाहे ऐसे पतित बाह्यणको भी पूज्य समझना चाहिये- यही इन लोगोंका मतलब है. साक्षीके लिये नीचेके श्लोकोंका अवलोकन करो.

" अविद्वाँश्वेव विद्वांश्व, बाह्मणो दैवतं महत् । प्रणोतश्वाप्रणीतश्व, यथाग्निर्दैवतं महत् ॥ ३१७ ॥ स्मन्नानेष्वपि तेजस्वी, पावको नैव दुष्यति । हूयमानश्व यज्ञेषु, भूय एवाभिवर्द्धते ॥ ६१८ ॥ एवं यद्यप्यनिष्टेषु, वर्त्तन्ते सर्वकर्मसु । सर्वथा बाह्मणाः पू्रुयाः, परमं दैवतं हि तत् ॥ ३१९ ॥" म-अ-९ ॥

तेजस्वो अग्निन स्मशानमें मुदेंकी दहन किया करता हुआ भी दूषित नहीं होता किन्तु यज्ञमें बुछाया हुआ भी बढता है ॥ ३१८ ॥ इसतरह यद्यपि ब्राह्मण सर्व कुत्सित कर्मेंको चाहे करें तथापि सब प्रकारसे पूजने योग्य हैं. क्यों कि वे ब्राह्मण परमदेवता रूप हैं ॥ ३१९ ॥

'' दत्त्वा धनं तु विपेभ्यः, सर्वे दष्डसम्रुत्थितम् ।

पुत्रे राज्यं समासृज्य, कुर्वांत प्रायणं रणे ॥ ३२३ ॥" म—अ—९ ॥

भावार्थ-जिस समय राजाको उत्तम ज्ञान हो अथवा चिकित्साके अयोग्य व्याधि हो जाय उस समय मृत्युको समीप देख कर महापातकांके दंडसे भिन्न जो संपूर्ण दंडका धन हो उसको बाह्यणोंको अर्पण करके और पुत्रको राज्यका-रभार देकर उत्तम फलकी पाप्तिके लिये संग्राममें अपने प्राणोंका त्याग राजा करे. यदि संग्राम न होय तो भोजनको त्याग कर प्राणोंको त्यागे ॥ ३२३ ॥

'इस स्ठोकमें दंडका सर्व धन बाह्यलको देकर पाणका त्याग करे. बस-यही विचारणीय विषय है कि स्वार्थका कुछ पारवार है ?.

इन ग्रंथोंका मध्यस्थ भावसे विचार करते हैं तो माऌम होता है कि, इनके रचयिताने अकलसे काम नहीं लिया है. पुरावेमें नीचेके स्ठोक देखो—

भावार्थ—डून तीन लोकोंका विनाश करके और जिस किसीके अन्नको खाता हुआ भी ऋग्वेदको धारण करता बाह्यण जरा भी पापसे लिप्न नहीं होता है ॥ २६१ ॥

जहां पर ऐसे ही पापका नाक्ष होना लिखा हो या नया पाप नहीं लगनेका जिकर हो वहां ही अनेक तरहके पापका प्रचार होता है. जैसे कि—

" पितृणां मासिकं आद-मन्वाहार्यं विदुर्बुधाः । तचामिषेण कर्तव्यं, प्रज्ञस्तेन समंततः ॥१२३॥"

भावार्थ—पितरोंके मासिक श्राद्धको पंडित जन अन्व-हार्य जानते हैं—अर्थात्—कहते हैं. इस श्राद्धको सब प्रकारसे श्रेष्ठ मांससे करना ॥ १२३ ॥

आगे तिसरे अध्यायके २६७ वे श्लोकसे २७२ वे श्लोक तक किस जातिके जानवरोंके मांससे पितर कितने महिने तक तृप्त होते हैं और किस जातिसे कितने दर्घ तक, सो पाठ मत्स्यपुराणमें आगे लिख आये हैं उस पाठसे मिळता झुलता है इस लिये नहीं लिखा जातौं

" श्वाविध ज्ञल्यकं गोधां, खद्गकूर्पश्चाँस्तथा । भक्ष्यान् पंचनखेष्वाहु-रनुष्ट्रां श्रैकतोदतः ॥ १८ ॥" म–अ– ३ !

भावार्थ- श्वाविध (सेइ) शल्य सेहकी तुल्य बडे बडे रोमवाल्रा गोधा गेंडा कच्छप और शशा पंच नखों नें ये पांच, और उंटको छोड कर एक ओर (तरफ) दांतवाले भक्षणके योग्य मनुजीने कहे हैं !! १८॥

इस उपरके लेखसे मनुस्पृतिको धर्मशास्त और उसके कत्तांको धार्मिक मनुष्य कहना पापको पुण्य मानने जैसा है. क्यों कि, जो शास्त इन उपरोक्त पंच नखवाले तथा एक तरफ दंतवाले जानवरोंको खाने लायक बतलावे, उससे ज्यादह और पापशास्त्र क्या होगा?. तथा ऐसे शास्त्रके रचनेवालेसे और ज्यादह अधर्मी किसे कह सकते हैं ?; सो बात अच्छी तरहसे समझमें आवे ऐसी है. नीचेका उल्लेख भी इसी बातको सिद्ध करता है.

'' यज्ञार्थं बाह्यणैर्वेध्याः, प्रञस्ता मृगपक्षिणः । भृत्यानां चैव दृत्त्यर्थ-मगस्त्यो बचरत् पुरा ॥ २२ ॥ बभूवुर्हि पुरोडासा, अक्ष्याणां मृगपक्षिणाम् । पुराणेष्वपि यज्ञेषु, ब्रह्मक्षत्रसवेषु च ॥ २३ ॥ '' म--अ--'र्

दश मासांस्तु तृप्यन्ति, वराहमहिषामिषैः । शशकूर्मयोस्तु मांसेन, मासानेकादशैव तु ॥ २७० ॥ संवत्सरं तु गव्येन, पयसा पायसेन च । वार्द्धीणसस्य मांसेन, तृप्तिर्द्धोदशवार्षिकी ॥ २७१ ॥ काल्रज्ञाकं महाशल्का-खड्गलेहामिषं मधु । आनन्त्ययैव कल्प्यन्ते, मुन्यन्नानि च सर्वशः ॥ २७२ ॥ " भावार्थ—बाह्मणोंको यहने लिये और पालन करने योग्य माता पिता आदिकी पालना करनेके लिये प्रशस्त (शास्तोक) मृग और पक्षी मारने योग्य हैं. क्यों कि अगस्त्य मुनिने पहिले ऐसे ही किया है ॥ २२ ॥ पहिले भी ऋषि-योंके किये यज्ञोंमें और बाह्मण और क्षत्रियोंके यज्ञोंमें शास्त्रोक्त मृग और पक्षियोंके मांससे ' पुरोडास ' हुए हैं. इससे आधुनिक मनुष्य भी यज्ञके लिये प्रशस्त मृग और पक्षियोंको मारें ॥ २३ ॥

आगे चल कर ऐसे श्लोक लिखे है कि, जो एक आर्य मनुष्यके मुंहसे निकले हो ऐसी संभावना करनेसे भी दिख संकुचित होता है.

" प्राणस्यान्नमिंद सर्वं, प्रजापतिरकल्पयत । स्थावरं जगमं चैव, सर्वं प्राणस्य भोजनम् ॥ २८ ॥ चराणामन्नमचरा, दंष्ट्रिणामप्य दंष्ट्रिण : । अहस्ताश्च सहस्तानां, शूराणां चैव भीरवः ॥ २९ ॥ नात्ता दुष्यत्यदन्त्राद्यान्, प्राणिनोऽहन्यहन्यपि । धात्रैव सृष्टा ह्याद्याश्च, प्राणिनोऽत्तार एव च ॥ ३० ॥ "

म-अ-५।

कोंका अज विना हाथवाले मत्स्यादिक हैं. और शूरवीर (पराक्रमी) सिंहादिकोंके अज भीरु हाथी आदि है. अर्थात् एकका एक भक्ष्य है ॥ २९ ॥ खानेवाळा मनुष्य खाने योग्य माणियांको खाता हुआ दूषित नहीं होता. क्यों कि खानेवाले सब पाणी ब्रह्माने ही रचे हैं ॥ ३० ॥

ऐसे अनार्यों जैसा कथन करनेवाले कुशासों पर चल्लने-वालोंको देख कर हमको दया आती है कि, इन बिचारोंकी बुद्धि पर पडा हुआ पड़दा कब खुलेगा १ और भव भ्रमणाके मिटानेवाले वीतराग प्ररूपित सत्यशास्त्रके तत्त्वज्ञान रूप ज्योतिःके दर्शन कब कोंगे.

" कृत्वा स्वयं वाप्युत्पाद्य, परोपकृतमेव वा ।

देवान् पितृँश्वार्चयित्वा, खादन् मांसं न दुष्यति ॥३२॥"

म-अ-५।

भावार्थ—मांसको मोल ळेकर वा स्वयं पैदा करके अथवा किसीने आन कर दिया हो अथवा देवता और पितर इनको पूजन करके मांसको खाता हुआ मनुष्य दोषका भागी नहीं होता है ॥ ३२ ॥

आगे चल कर अविधिसे मांसका निषेध किया है और धर्मबुद्धिसे खाना लिखा है. सो भी महा अज्ञानताको सिद्ध करता है, कभी पापके उदयसे पापी मनुष्य मांस खाता हो तो भी कोई सज्जन कहता है कि यह तूं ठीक नहीं करता, तब वह कहता है यह बात ठीक है, मैं पापोदयसे महा अधर्मका काम करता हूं; मेरा बुरा हाल होगा मगर क्या करूं ? वह पाप मेरेसे नहीं छूटता. इस तरहसे पश्चात्ताप सूचक जवाब देता है. इस तरह पापको बूरा मानना यह बात कथंचित सद्गुण रूप है. वो भी सद्गुण वैदिक रीतिसे माप्त नहीं हो सकता. क्यों कि विधिसे मांसभक्षण करनेवाळे कभी उस कर्मका पश्चात्ताप नहीं कर सकते. अरे ! पश्चात्ताप तो दूर रहा किंतु उस नीचकर्ममें भी धर्मका ढोंग रख़चेसे अधमकर्मको उपार्जन करते हैं. धर्मढोंग भी कहां तक लिखें ?. देखो उसका नमूना---

" नियुक्तस्तु यथा न्यायं, मांसं नात्ति हि मानवः । समेत्य पशुतां याति, संभवान एकविंशतिम् ॥ ३५ ॥"

म–अ–५।

भावार्थ-श्राद्ध और मधुपर्कमें शास्त्रमर्यादानुकूल जुडा हुआ जो मनुष्य मांसको नहीं खाता वो मर मर कर एकवीस जन्म तक पशु होता है ॥ ३५ ॥

देखा ? मांस न खोव तो २१ वार पशु होवे.

जुल्म, जब घोरपापका उदय हो तत्र ऐसी पापमय मट्टत्तिमें अद्धा होती है; प्रत्यक्षतया प्रतीत होता है कि, दुराचारी मांसाहारी विद्वानों सिवाय ऐसो वातें सदाचारीसे कैसे लिखी जा सकती हैं ?. अपने दुराचारोंको छिपानेके लिये कितनेक दांभिकोंने धर्मके नामसे ये ढोंग चलाये हैं; तथापि इन बातोंवाले शास्त्रोंको सत्य मानना सिवाय मोद्दोदयके नहीं बन सकता. इस विषयकी पुष्टिमें जो स्लोक हैं सो भी युक्तिग्रून्य माऌम होते हैं. जैसे कि-

" यज्ञार्थं पश्चवः सृष्टाः, स्वयमेव स्वयम्भुवा ।

यज्ञस्य भूत्ये सर्वस्य, तस्मात् यज्ञे वधोऽवधः ॥ ३९ ॥ २४ औषध्यः पञ्चवो दृक्षा-स्तिर्यंचः पक्षिणस्तथा । यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः, प्राप्तुवन्त्युत्सृतीः **पुनः ॥ ४० ॥** म-अ-५ ।

भादार्थ---ब्रह्माने स्वयं ही यज्ञके लिये और संपूर्ण सिद्धिके निमित्त पशु रचे हैं,तिससे यज्ञके विषे जो वध है वह वध नहीं है ॥३९॥ यज्ञके लिये नाज्ञको प्राप्त हुई व्रीहि आदि औषधि पशु वृक्ष कूर्म आदि तिर्यग्जीव और कपिंजल आदि पक्षी फिर भी जन्ममें उत्तम जन्मको प्राप्त होते हैं ॥४०॥

' यज्ञमें मरनेसे ही मरनेवालेका उत्तम जन्म-स्वर्ग होता हैं' इस कथनमें और ' अग्नि शीतल है ' इस कथनमें कुछ भेद नहीं हैं. अर्थात्-यह कथन युक्ति शून्य है. कोई भी बुद्धिशाली इस बातको कबूल नहीं कर सकता है कि, किसीको किसी स्थानमें मरने मात्रसे स्वर्गकी प्राप्ति हो जावे. स्वर्ग प्राप्ति तो उच्चकर्मके करनेसे है न कि मरनेसे.

हाँ, यज्ञभें मरे हुए पशु महाआर्त्त रौंद्र ध्यानके वश्व हो कर दुर्गतिको प्राप्त करें यह तो संभव है

श्रावक—साहिब ! अगर वे लोग ऐसा कई कि, यब्नमें मंत्र संस्कारसे वध्यप्राणियोंको तकलीफ नहीं होती और उच्चगतिको चले जाते हैं, तो इसका क्या उत्तर ?.

सूरीश्वरजी—भाई ! उन जीवोंको दुःख नहीं होता तो यइमें मरते वरूत महा आराटि मार मार कर रुदन क्यों करते हैं ? जब वे तो दुःखकी अंदर गरकाव हो रहे हैं फिर विना परिणाम शुद्धिके आत्त प्राणी कैसे अच्छी गति पा सकते हैं ?. हां, अगर मरनेवालोंमें वैर भावना न रहे और धार्मिक वृत्ति उत्पद्म हो जावे तब तो कुछ अच्छी गतिके चिंह भी कहे जावे मगर यह बात युक्तिसहित विचारमें आकाश कुसुम जैसी भासती है. अतः कोई भी मध्यस्थ इस बातको कबूळ नही कर सकता. अगर वैदिक ऋषियोंके मनमें भी इस बातका सन्देह नहीं था, तो फिर केवळ अपने माता पिता पुत्र परि-वारके यज्ञका विधान क्यों नहीं किया?. बिचारे ग़रीब जानव-रोंका होम ही सरता देखा ?.

कितनेक बेसमझ ऐसे कह देते हैं किं, जिस युगमें यज्ञमें जीवोंको मारते थे, उस युगमें उनको जीला देते थे, यह भी केवल गप्पगोला है. क्यों कि, जब जीलाना ही है तो मारना क्यों ?. पहिले किसी लडकेको थप्पड मारी और पीछेसे उसे गुड दिया यह अकल्मंदीकी बात नहीं है. अव्वल तो ' मरा हुआ कभी जीता नहीं हैं ' इस नियमको ही वे लोग भूले हुए हैं और दूसरे अपने धर्मशास्त्रका भी उनको पूरा पता नहीं है.

देखो—भागवत चतुर्थ स्कंधके २५ वें अध्यायमें नारदने 'पाचीनर्बाई' राजाको उपदेश दिया है. उसमें मतलब यह है कि—

'यज्ञमें जिन पशुओंको निर्दय हो कर तूंने मारे हैं परलो-कमें कुद्ध हुए लोहेकी मुद्गरोंसे तेरे सिरको छेदन करनेकी इच्छासे तेरी राह देख रहे हैं.'

कब आवे और उसका सिर फोडे. अगर कोई कहें कि, मनुजी कुछ और कहते हैं और नारदजीका उपदेश कुछ और दिशा दिखलाता है; तो हमको कौनसी बात माननी चाहिये? तो उनको समझ लेना कि, जिन शास्त्रोंमें परस्पर विरोध न हो ऐसे दयामय पवित्र वीतरागोक्त शास्त्रोंको मानना चाहिये. वैदिक शास्त्रोंमें बहुत ठिकाने अच्छी वराग्यकी बातें भी आती हैं मगर उपर नीचेकी बातोंने उस वैराग्यकी बातें भी आती हैं मगर उपर नीचेकी बातोंने उस वैराग्यको अभंग नहीं रहने दिया. मतलब सन्निपातमें मनुष्य कभी शांतिका तो कभी अशांतिका- कभी दयाका तो कभी हिंसाका भाव जाहिर करता है. इसी तरहकी स्थिति जिनशास्त्रोंकी हो वहां वास्तविक स्वरूपका निवास दुर्घट हे. अनेक शास्त्रोंमें परस्पर विरोधको जाने दीजिये सिर्फ एक ही मनुस्मृति' उसमें' भी एक ही अध्याय (पांचवा), उसमें भी उपर नीचेके श्लोकमें ही विरोध देखिए--

" मांस भक्षयिताऽग्रुत्र, यस्य मांसमिहाद्स्यहम्। एतन्मांसस्य मांसत्वं, प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ५५ ॥ " न मांसभक्षणे दोषों, न मद्ये न च मैथुने । प्रवृत्तिरेषा भूतानां, निवृत्तिस्तु महाफला ॥ ५६ ॥ म-अ-५ ।

भावार्थ—जिसका मांस में यहां खाता हूं वो दूसरे लोगमें मुझे खायगा.विद्वानों यह मांस शब्दका निरुक्तार्थ कहे-ते हैं ॥ ५५ ॥ मांस खानमें, मद्य पीनेमें और मैथुनके सेवनमें दोष नहीं है. क्यों कि प्राणियोंकी यह प्रवृत्ति है. परंतु इन तीनों कामसे निवृत्तिका होना महान् फल्ठवाला है ॥ ५६ ॥ यहांपर ५५ वे श्ठोकसे मांसका खाना दोषवाल्य सिद्ध होता है और ५३ वा मांस मदिरा और मैथुन सेवनमें कुछ दोष नहीं है ऐसा कहता है क्या यद्द परस्पर अक्षम्य विरोध नहीं है ?. महाज्ञय ! इन दो श्ठोंकोंको ले कर परस्पर विरोध है इसे भी जाने दीजिये सिर्फ ' न मांसभक्षणे दोषों ' इसी एक श्ठोकको ही लीजिये. इसमें भी परस्तर महान विरोध आता है. क्यों कि प्रथमके तीन पादका यद्द अर्थ है कि '-जीवोंकी प्रवृत्ति होनेसे मांस मदिरा और मैथुन सेवनमें कुछ दोष नहीं है ' ऐसा अर्थ होता है. और चौथे पदका अर्थ यह है कि-' इनसे हटना महान फलवाला हैं. यहां पर विचार करना चाहिये कि, जिनके सेवनमें पाप नहीं उनसे हटनेमें महान फल किस तरहसे हो सकता है? बस-यही विरोध है. अब ' याज्ञवल्क्यस्मृति ' तरफ निगाह देते हैं तो वी स्मृति भी मांस विधानसे दुष्ट पाई जाती है.

तथा हि---

" काकोवाक्यं पुराणं च, नाराशंसीश्च गाथिकाः ।

इतिहासाँस्तथा विद्याः, शक्त्याधीते हि योऽन्वइम् ॥४५॥ मांसक्षीरौदनमधु--तर्पणं सदिवौकसाम् ।

करोति तृप्तिं कुर्याच, पितृणां मधुसार्पेषा ॥ ४२ ॥ "

या-समृ-अ--१॥

भावार्थ- जो द्विज दिन दिन पति पश्नोत्तरवाळे वेद वाक्योंको पढ़ता है और बाह्य आदि पुराणोंका पाठ करता है और मनु आदि धर्मशास्त्र, रुद्र दैवत्य मंत्र यह्नोंकी कथा भारत आदि इतिहास विद्या इनको शक्तिके अनुसार नित्य पढ़ता है. तथा मांस दुध भात इनसे देवताओंकी तृप्ति करता है और सहद तथा घृतसे पितरोंकी तृप्ति करता है ॥४५-४६॥ " भक्ष्याः पञ्चनखाः सेधा, गोधाकच्छपग्रऌकाः ।

शक्षश्च मस्त्येष्वपि हि, सिंहतुण्डकरोहिताः ॥ १७७ ॥

तथा पाठीनराजीव, सज्ञल्काश्र द्विजातिभिः । "

या-समू-अ-१।

भावाथे पंच नखोंवाले जीव जंगली सेंह गोह कच्छूआ सेह सूसा सिंह सिंहसरीखे मुखवाला मत्स्य लाळवर्ण बाली मच्छी, इन सबका यज्ञ आदिमें नियुक्त किये हुएका भोजन करें; ऐसा कहा है॥ १७७॥ और पाठीन संज्ञक मच्छी, राजीव संज्ञक मच्छी, सीपीके आकारवाला जलका जीव, ये सब जीव आद आदिकोंमें द्विजातियोंको भक्षण करने कहे हैं।

" प्राणात्यये तथा श्राद्धे, पोक्षितं द्विजकाम्यया ।

देवान् पितृन् समभ्यर्च्य, खादन् मांसं न दोषभाक् ॥१६९॥ भावार्थ—अन्नके अभावमें अथवा बीमारी में जो मांस भक्षण किये विना प्राण निकसते होवे तो नियमसे मांस मक्षण करे. श्राद्धमें निमंत्रित किया हुआ मांसका और प्रोक्षण नामवाछा वेदोक्त संस्कार हुए पशुके मांसका यज्ञमें भक्षण करे और देवता तथा पितरोंका पूजन करके बाकी रहे मांसको खाता हुआ पुरुष दोषको नहीं प्राप्त होता है ॥ १६९ ॥

पाता छुआ उपपे दापका नहा मात हाता हु के उपरे ॥ मांसाहारी ब्रह्माणोंने मांस खाने वास्ते कैसा सीधा रास्ता निकाला है कि, मांस भी हम खाते रहें और जगत्में इमारी निन्दा भी न होवे इस लिये लिख दिया कि देवता और पितरादिकका पूजन करके मांस खानेवालेको दोष नहीं कगता, बाह रे वाह ! बाह्यणो ! तुम्हारी चतुराईको. खैर. यहां तो मांसको खाकर भी शास्त्रकी आडसे भक्त जनोंमें निंदित न हुए मगर परलोकमें इन कमोंसे बडी भारी दुर्दशा होगी; सो भी खयाल करना चाहिये था.

" कुशाः शार्क पयो मत्स्या, गन्धाः पुष्पं दधि क्षितिः । मांसं शय्यासनं धाना :, प्रत्याख्येयं न वारि च ॥ २१४॥"

या. स्मृ. अ. १ |

भावार्थ---कुशा शाक दुध मच्छी--माछली गंध पुष्प दहि गिट्टी मांस शय्या आसन धान-अर्थात् अने हुए जव और जल इनको ग्रहण कर लेवे. नटे (इटे) नहीं इनका दान लेनेका कुछ दोष नहीं है ॥ २४४ ॥

इस उपरके स्ठोकसे साफ सिद्ध हो गया कि, मांस तथा मच्छीका दान ब्राह्मणोंको कोइ देवे तो ना नहीं कहनी, उस मांस तथा मच्छीको छे छेनी कारण कि, उनके छेनेमें दोष नहीं छगता ऐसा याइवल्क्यका कथन, ब्राह्मणोंके ऋषिको तथा उनके श्वास्त्रको कैसा अपवित्र सिद्ध करता है सो प्रत्यक्ष है.

इसके आगे किन किन वस्तुओंसे कहां तक पितर तृप्त रहते हैं सो जिकर है—जैसे—

" इविष्यान्नेन वै मासं, पायसेन तु वत्सरम् । मात्स्यद्दारिणकौरभ्र-शाक्रुन छागपार्षतैः ॥ २५८॥ रेणरौरववारादद्याशै—-माँसैर्यथाक्रमम् । मासद्वद्वचाभितृप्यन्ति, दत्तैरिह पितामद्दाः ॥ १५९॥" या-स्मृ-अ-१। ١

आवार्श्व-तिल जन उडद आदि हविष्य अत्रसे बाह्यणोंको भोजन करवावे तो गितरोंकी हृप्ति एक महिने तक रहती है. और क्षीरका मोजन करवानेसे एक वर्ष तक द्वाप्त रहती है. और मच्छ लाल-हरिण मीढा पक्षी वकरा विंदुओंवाला मृग रोझ जंगली-सूअर शशा इनके मांसोंसे यथाकमसे एक एक महिनेकी हदिके क्रमसे पितरोंकी हृप्ति रहती है. जैसे हार्विष्य अत्रस एक महिना मच्छके मांससे दो महिने लाल हरिणके सांससे तीन महिन, मींढाके मांससे चार महिने इसी कमसे जान लेना. ॥ २५८-२५९ ॥

" खद्गा मिषं महाशार्क, मधु मुन्यत्रमेव च । लोहामिषं महाशाकं, मांसां वार्द्धाणसस्य च ॥ २६० ॥ यद्ददाति गयास्थश्च, सर्वमानंत्यमश्चुते । तथा वर्षात्रयोदश्यां, मघासु च विशेषतः ॥ २१ ॥ "

या- सम्- अ-१।

आगे गणेञ्चजीकी भेटमें अग्रुक अग्रुक वस्तुएं धरनी. सो यह है—

"कताञ्कतॉस्तंडुळॉश्व, पल्रझेदनमेव स्। मत्स्यान पकॉस्तथेबामान, मांसमताबदेव तु ॥ १८ ॥ षुष्पं चित्रं सुगन्धं च, सुरां च त्रिविधामपि । मुल्टकं पूरिका पूपं, तथैवोंडेरकसजः ॥ २८८ ॥ दथ्यकं पायमं चैव, गुडपिष्टं समोदकम् । एतान सर्वान् समाहत्य, भूपो कृत्वा ततः शिरः ॥२८९॥ या-स्म-अ १ ।

भावार्थ--- पकाये हुए और विना पकाये हुए चावल तिल्ठोंकी पीठीमें मिला हुआ अत्र, मत्स्य, पके हुए मांस, कचे मांस, विचित्र प्रकारके पुष्प, सुगंध, तीनों प्रकारकी मदिरा, मूलि. पूरि, पूडे, फल्लोरियोंकी माला, दहि, भात, गुडसे मिली हुई खीर, लड्डु, इन सर्वोंको इकट्ठे कर गणेश जीकी भट दें गणेशजी की तथा पार्वतीकी स्तुति करें और पृथ्वीमें शिर नवायके प्रणाम करें ॥ २८७-२८८-२८९ ॥

इस प्रकारको भेटले तो यह बखूबी सिद्ध हो जाता है कि, स्वयंतो अपवित्र वस्तुके संयोगसे अष्ट बने सो बने; मगर अपने माने हुए गणेज्ञजीको भी अष्ट बना दिया. स्वार्थके बज्ञीभूत जनोंने अपने अधर्मकर्मको छोक निंदित न होने देनेके छिये ही यह अधर्म चलाया है. इनके स्वार्थका यद्यपि आगे अनेक बार उल्लेख किया गया है, फिर भी देखो याज्ञवल्वय स्मृतिसे भी इनके जीवनका परीचय कराया जाता है.

" ग्रह्मधान्याभयोपान-च्छत्रमाल्यानुलेपनम् ।

यानं हक्षं प्रियं ग्रय्यां, दत्त्वान्त्यन्तं सुखीभवेत् ॥ २११ ॥ या. स्मृ. अ. १ ।

भावाथ----घर धान्य अभय जूत्ति जोडा छत्री पुष्प चंदन स्वारी वृक्ष अपने आपको प्रिय वस्तु ज्ञय्या, इनका दान करने-वाळा अत्यंत सुखो होता है ॥ २११ ॥

जिस आदमी पर ग्रह हो उसको अम्रुक अम्रुक ग्रहमें अम्रुक अम्रुक ब्राह्मणको दान देना. इस विषयका जिकर नीचे मूजब है

" गुडौदनं पायसं च, इविष्यं क्षीरषाष्ठिकम् ।

दध्यौदनं इविश्रूणं, मांसं चित्रात्रमेव च ॥ ६०४ ॥ दद्यात् प्रहक्रमादेव, द्विजम्यो भोजनं द्विजः । शक्तितो वा यथाल्ठामं, सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥३०५॥"

भावार्थ- गुडसे मिछ। हुआ भोजन, खीर, घृतका भोजन, दुध, साठी चावल्ठ, दहि भात, घृत सहित ओदन, तिल्लोंकी पिठी सहित भोजन, मांस, अनेक प्रकारके भोजन, इस प्रकार यथा क्रमसे सूर्यादि नव प्रहोंकी प्रीतिके वास्ते बाह्मणोंको मोजन करावे. अथवा शक्तिके अनुसार जसा मिल्ले तैसा भोजन विधिपूर्वक सत्कार करके ब्राह्मणोंको जिमाना चाहिये ।। ३०४-३०५ ॥

इन प्रहोंकी मीतिके लिये अनुक्रमसे यह दक्षिणा लिखी 🖣 –

" घेतुः शंखस्तथानड्वान्, हेमवासो हयः क्रमात् । कृष्णा गौरायसं छाग, एता वै दक्षिणाःस्मृताः ॥३०६॥ " या-स्मृ-अ-१ ।

मावार्थ — दुध देनेवाली गौ १, शंख २, बैल २, सुवर्ण ४, पीला वस्त ५, घोटा ६, कॉली गौ ७, लोहा ८, वकरी ९, ये सब यथाक्रमसे सूर्य आदि नव प्रहोंकी दक्षिणा देनो चाहिये॥ ३०७॥

" भोगाँथ दत्त्वा विप्रेभ्यो, वसूनि विविधानि च । अक्षयोऽयं निधी राज्ञां, यद्विप्रेष्ट्रपपादितम् ॥३१५॥ " या-स्मृ-अ-१ ।

भावार्थ- बाह्मणोंको भोग सुख देवे, अनेक प्रकार के सुन्ना चाँदी आदि द्रव्योंका दान देवें. क्यों कि बाह्मणोंके अर्थ जो द्रव्य दिया जाता है वह राजाओंका अक्षय गुण खजाना हो जाता है ॥ ३१५॥

" नातः परतरो धम्मो नृपाणां यद्रणाजितम् ।

विप्रेम्यो दीयते द्रव्यं, प्रजाभ्यश्वाभयं सदा ॥ ३२३ ॥ या. स्मृ. अ. १ ।

भावार्थ--जो राजा युद्धमें द्रव्यको संचित करके बाह्य-णके अर्थ देता है और प्रजाके अर्थ जो अभय देता है; इससे अधिक राजाओंका परमधर्म नहीं है ॥ २२३ ॥

" राजा लब्ध्वा निधिंद्द्यात्, द्विजभ्योऽर्ध द्विजः पुनः । विद्वानशेषमादद्यात्, स सर्वस्य प्रश्चर्यतः ॥ ३३४ ॥ "

या-स्मू-अ २।

भावार्थ-राजाको कहीं दबा हुआ खजानाका धन मिछ जावे तो राजा उस धनमेंसे आधा धनको बाह्मणोंके वास्ते बांट देवे. और जो विद्वान बाह्मणको कहीं धन मिछ जावे तो उस संपूर्ण धनको आपही रखळेवे. क्यों कि यह बाह्मण सपूर्ण धनोंका प्रश्न है ॥ ३३४ ॥

इस मकार अनेक तरहसे दानका जिकर आता है. कहीं

कप्रिल गौके द्वानुसे उस पर जिन्तने रोम हैं उतने युग तक स्वर्गमें रहनेका लोभ दिया है तो कहीं कुछ कहीं जमीनका दान कर खत करवा देनेसे बढा लाभ वर्मन किया है. मतलब-स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये अनक तरहकी कोशिकें की गई हैं.

" नियुक्तस्तु यदा आद्धे, देवे वा मांसग्रुत्सृजेत् ।

यावन्ति पशुरोमाणि, तावन्नरकमुच्छति ॥ ३१ ॥ "

वज्ञिष्ट स्मृति-पृष्ठ- ४२ ।

भावार्थ—जब श्रादमें निमंत्रण स्वीकार करके यजमानके यहां मांस बनाया परोसा जाय और उसको त्याग देवे तो पद्युके शरीरमें रोम होवे उतने वर्षों तक नरकमें वसता है ॥३१॥ इस पाठसे तो बाह्मणोंका इत्याकांड पराकाष्टाको पाप्त हो गया.—आगे

इस वशिष्ट स्मृतिके पाठसे भी बाह्मण धर्मकी कछई खुळ जाती है.

१ यह अर्थ पंडित भीमसेन इटावानिवासीने किया है ऐसाही इसने यहाँ दिया है क्यों कि वशिष्टादि स्मृतिएं उन्हेंनि छपाई हैं सर्वत्र बासण पंडितों के किये हुए भाषार्थको ही हमने रजु किया है. ये छोग मांसादि स्निग्ध पदार्थके तो इतने छोभीये कि, भंगीके पात्रमेंसे भी छेनेमें दोष नहीं मानते थे.—देखिये !

" आई मांस घतं तैलं, स्नेदाश्च फल्संभवाः । अन्त्यभांडस्थितास्त्वेते, निष्क्रान्ताः शुद्धिमाप्नुयुः॥२४९॥"

अत्रि-स्मृति-पृष्ठ-४४।

भावाथ गीला मांस, घृत, तैल, फलसे उक्षत्र हुए तैलादि अन्त्यज भंगीके पात्रमें रक्खे भी हो; परंतु निकाल लेने पर शुद्ध हो जाते हैं ॥ २४९ ॥ देखा ! एक तो अपवित्र मांस फिर भंगीके पात्रका वाह ! धर्म ज्ञास्त्र ! तेरी खूबी क्या कहूं ?

" कतौ श्राद्धे नियुक्तो वा, अनश्चन् पततिद्विजः । मृगयोपार्जितं मांस-मम्यर्च्य पिंतृदेवताः ॥ ५६ ॥ "

व्यास-स्मृति-पृष्ठ २५।

इन लोगोंको मांस तो इतना पिय था कि, यज्ञमें नहीं देखते थे मनुष्यको और नहीं देखते थे गौको.

देखो ! मनुष्यके विषयमें—

मूल—(१) वाचे पुरुषमालभते।

(२) आशायै जामिम्।

(३) प्रतीक्षायै कुमारीम्।

पर्यंत मनुष्य विशेष रूप पशुओंका आछंभ वध किया जावे. अब कोई कहे कि 'आछंभ ' शब्दका अर्थ हिंसा है इस्में कोई भगाण है ? तो उसके उत्तरमें विदित होवे कि,-" आश्वलायनीय ग्रह्मसूत्र] गार्ग्य नारायणीय द्वत्ति ' के प्रष्ठ 24 वे में छिखा है कि---

इस ' पुरुषमेभपंचाइसोमयागमें ' बाह्माणादि कुमारी पर्यंत मनुष्य विशेष रूप पशुओंका आळंभ वध किया जावे.

योग्य न हो ऐसी र्स्नीका आर्छभ (वध) किया जाता है. (३) प्रतीक्षाके छिये कुमारी अर्थात जिसकी शादी न हुई हो ऐसी छडकीका आर्छभ-वघ किया जावे.

अर्थात् वध किया जाता है. (२) तृष्णाभिमानिनीदेवता—आज्ञा उसके छिये जामि अर्थात् ऋतुधर्म जिसका निटटा हुआ हो और भोग करनेके

सवनीयपशुभिः सम्रुचित्याऌव्धव्याः । 'पूनाका छपा हुआ कृष्णयजुर्वेदका तैत्तिरीय ब्राह्मण ' पृष्ठ-९७२-९७३ । भावार्थ---(१) वाग्देवताके छिये पुरूषका आऌंभ

ब्राह्मणादयः कुमार्यन्ताः प्रोक्ता मनुष्य विश्वेषरुपाः पश वोऽस्मिन् पुरुषमेधे पञ्चाहे सोमयागविशेषे मध्यमेऽहनि

(३) प्रतीक्षायै ऌब्धव्यस्य वस्तुनो छाभप्रतीक्षणा भिमानिन्यै कुमारोमनूढां कन्यामालभते ।

(२) आज्ञायै अलभ्यवस्तु विषय तृष्णाभिमानिमानिन्य-जामिं निवृत्तरजस्कां भोगायोग्यां- स्नियम् ।

(२) आज्ञायै अलभ्यवस्तु विषय तृष्णाभिमानिमानिन्य-

(१) वाग्देवताये पुरुषं पूरकं स्थूलगरोर मित्यर्थः ।

(सायण-भाष्य ।)

(386)

" यदि कारयिष्यन्मारयिष्यन् भवति तदाच दाताः ' आरुभेत ' एवं वदेत । '

इससे स्पष्ट हुआ कि जहां मारना हो वहां ' आल्लभेत ' यह पयोग किया जाता है

अनरकोष द्वितीय कांड क्षत्रवर्ग श्लोक ११२- तथा अभिधानर्द्धितागणि मर्त्त्यकांड श्लोक-३९ इन दो प्रसिद्ध कोन्नोंमें भी ' आल्रंभ ' ज्ञब्दका वध अर्थ किया हुआ है.

ऐतरेय ब्राह्मण पुष्ठ ८५१ तकमें ' शुनः क्षेप ' की कथा लिखी हुई है

वशिष्ठ विश्वामित्र जमदग्नि प्रभृति ऋषियों के अध्वयु होता ब्रह्मा आदि होते हुए अजीगर्त्तके द्वारा ' शुनः शेप ' स्तंभसे बंधवाया गया तथा तछवारके द्वारा काटनेका समय आया तब ' शुनः शेपने देखा कि, ब्राह्मण वशिष्ठादि ऋषि मारनेके छिये सम्मत है, अत एव वरुणकी पार्थना करने छगा. पीछे उसक बंधन तुटने छंगे इत्यादि.

यदि ' नरमेध-वेदं ' में न होता तो फिर वसिष्ठ जी जैस ब्रह्मर्षि यज्ञ करनेक लिये क्यों तैय्यार होते ?.

इसी तरह 'महाभारत 'के वनपर्वमें भी नरभेधका जिकर है.

अब गौके विषयमें देखिये !

" पुरुषस्य सयावरि वि ते प्राणमसिस्नसं, शरीरेण महीमिहि स्वथयेहि पितृनुप प्रजयाऽस्मानिहावह । "

। तैत्तिरीय-आरण्यक प्रपाठ ६ अनुवाक १ मंत्र-११)

पदार्थः- हे (पुरुषस्य) मृतपुरुषकी (सयावरी)

रोजगवीं अर्थीत् गा (ते) तेरे (प्राणम्) मार्गाकी (ध्यसि-ससम्) मैं शिथिल कर चुका हुं (श्वरीररेण) तूं अपने शरीरसे (महीं) पृथ्वीको (इहि) प्राप्त हो (स्वधया) अमृत अर्थात् हविः स्वरूपसे (पितृन्) पितरोंको (उपेहि) प्राप्तहो (इह) इस लोकमें (प्रजया) सन्तान समेत (अस्पान्) इम लोगोंको (आवह) कल्पाण प्राप्त कर ॥

यह पदार्थ सायण भाष्यके अनुसार छिला है विशेष सायणभाष्यसे जान छेना.

" अथ य इच्छेत्पुत्रो मे पण्डितो विजिगीतः समितिंगमः शुश्रूषितां वाचं भाषिता जायेत सर्वा वेदाननुबुवीत सर्वमायु-रियादिति मांसौदनं पाचयित्वा सर्पिष्पन्तमश्नीयातामीश्वरा जनयित वा औक्षेण वा ऋषमेण वा । "

(बृहदारण्यकोपनिषत्-अध्याय ८ ब्राह्मण ४ मन्त्र १८)

भावार्थ-जो पुरुष चाहता हो कि, मेरे ऐसा पुत्र उत्पन्न हो, जो कि पंडित विद्वान और संस्कृत वाणी बोलने-वाला तथा सर्ववेदोंका वन्ता और पूर्ण आयुवाला हो तो, वो पुरुष मांस मिश्रित चावलोंका भोजन पकवा कर और उसमें घृत डाल कर अपनी स्ती सहित खावे. मांस उक्ष अर्थात् बडे बैलका हो अथवा ऋषम अर्थात् उक्षके अधिक उम्र वाले बैलका हो ।

यह अर्थ 'दांकरभाष्य' के अनुसार किया है। आगे-" क्षालनं दर्भक्त्वेन, सर्वत्र स्रोतसां पंत्रोः । तूष्णीभिच्छा क्रमेण स्या-द्वपार्थे पाणदारूणि ॥ १ ॥

सप्त तावन्यू ईन्या-नि तथा स्तन चतुष्टयम् ।

नाभिः श्रीणिरपानं च, गोश्रोतांसि चतुर्दन्न ॥ २ ॥ क्षुरो मांसावदानार्थः, इत्स्ना स्विष्टकृदावृता । वपामादाय जुहुयात्, तत्र मन्त्रं समापयेत् ॥ ३ ॥ इजिहा क्रोडमस्थीनि, यकृद्वृकौ गुदंस्तनाः । श्रीणिस्कंघसटापार्श्व, पश्वंगानि प्रचक्षते ॥ ४ ॥ एकादद्यानामङ्गाना-मवदानानि संख्यया । पार्श्वस्य वृक्कसवध्नोश्च, द्वित्वादाहुश्चतुर्द्व्य ॥ ५ ॥ चरितार्था श्रुतिः कार्या, यस्मादप्यनु कल्पन्नः । अतोऽष्टर्चेन होमः स्या—च्छागपक्षे चरावपि ॥ ६ ॥ अवदानानि यावन्ति, क्रियेरन् प्रस्तरे पन्नोः । तावतः पायसान् पिण्डान्, पत्र्वभावेऽपि कार्र्यत् ॥ ७ ॥³⁷ (कत्यायन स्मृति पृष्ठ ७६)

ग्यारह अंगोंक 'अवदान ' नाम टुकडे छेखानुसार गिनती से होते हैं और पार्श्व-वृषण (अंडकोश) और-सविथ जांघ ये दो दो होते हैं. इससे पशुके चौदह अंग कहे हैं ॥ ५ ॥ पत्येक कल्पोक्त कामोर्ने श्रुतिको चरितार्थ करना चाहिये. इससे बकरा और चरू दोनों पक्षोंमें आठ ऋचाओं से होम करना चाहिये ॥ ६ ॥ यज्ञ पशुके अंगोंके जितने अवदान नाम टुकडे प्रस्तर नामक क्रुग्रों पर करके रक्खे जाय उत ही पायस नाम खीरके पिंड पशु न हो तब भी करावें ॥ ७ ॥

पंडित ' सत्यव्रत सामश्रमी ' की व्याख्यासे अलंकृत शत्रिय कुमार श्रीमदुदयनारायण वर्मा कृत भाषानुवाद सहित मधुपुरस्थ शास्त्र प्रकाश कार्यालय में संवत् १९६३ के वर्षमें छपे हुए सामवेद कौथुमी शाखा गृह्यकर्म प्रतिपादक गोभिल-गृह्य सूत्रके तिसरे प्रपाठकके दश्चवे खंडमें-पृष्ठ १६४ वे से भी पुरातन वैदिकोंकी दया रसातलमें प्रवेश कर गई थी इस बातका पता मिल्लता, है सो देखिये !---

"तैष्या ऊर्द्धम छम्यांगीः १४। * "

" ता×ँसंधिवेला समीपं पुरस्तादग्नेरवस्थाप्यो पस्थितायां जुहुयाद्यत्पद्मवः प्रध्यायतेति १५।"

* कलकत्ता ' वासिस्तमिषणयंत्र ' में ईस्ती सन् १८८० में. छपे हुए चन्द्रकान्ततर्कालंकारकृतभाष्यसे अलंकृत ' गोभिल-गृधस्त्र जो कि बडोदा सेंट्ल लायब्रेरीमें है उसमें इस सूत्रकी संख्या १८ लिखि है. इससे श सूत्रका फर्क आखिर तक है. महाराजश्रीने जिस पुस्तकसे पाठ लिखा है वो यहां पर न होनेसे निर्णय नहीं हो सका है. व्याख्या-तैष्याः पौषपौर्णमास्याः डार्द्धं परस्तात् अष्ट-

म्यां कृष्णपक्षीयायां गौः आलब्धव्येति ज्ञेषः ॥ १६ ॥

व्याख्या—संधिवेला समीपं सूर्योदयकालात् किंचित् पूर्वमेव तां गां अग्नेः पुरस्तात् अवस्थाप्य उपस्थितायां तस्यां संधिवेलायां सूर्योदयक्षणे इति यावत् यत् पज्ञवः प्रध्यायत मनसा हृदयेन च वाचा सहस्रगा यथा मयि बध्नामि वो ानः ॥ ८ ॥ म० ब्रा० २, २, ८) इति मंत्रेण तत्रैवाप्रौ जुहुयात् घृतमिति ॥ १५ ॥ ''

मावार्थ---पौष मासकी पूर्णिमाके पीछे अष्टमी तिथिको गोमांस द्वारा मांसाष्टका करे ॥ १४ ॥ संधिवेला (रात और दिनका संयोग समय) के कुछ्क पहिले अग्निके पूर्वभागमें उस गौको लाकर रक्ले. पीछे संधिवेला होने पर--" यत् पञ्चव प्रध्यायत " इस मंत्रसे घीकी आहुति देकर कार्यारंभ करे ॥ १५ ॥

" हुत्वा चानुमंत्रयेतानुत्वामाता मन्यतामिति ॥१६॥"

व्याख्या—हुत्वा कार्यारंभद्योतिकामाहुतिं पूर्वोक्तां च अपि तां गां अनुत्वा मातामन्यतामनुपितानु भ्रातानुसगभ्योंऽ-मुसखा सयूथ्यः । "॥ ९॥ (म. ब्रा. २। ३। ९॥ " इति मन्त्रेण अनुमन्त्रयेत संइपनार्थ निमंत्रयेदिति ॥ १६॥ "

भाषार्थ-कार्यके आरंभ सूचक पूर्वेक्त आहुति देवे-परं इस समय यव मिछा जछ, पवित्र छुरा, झाखा विझाखा बहिं इध्म आज्य-दो समिधा और स्तुव ये सब भी अपने पास आबक्यकतानुसार ठीक रक्खे. " अनुत्वा " इस मंत्रका पाठ करते हुए मौको मारनेके छिये निमंत्रण देवे ॥ १६ ॥ " यवमतीं भिरद्भिः प्रोक्षेद्घ्टकाये स्वा जुष्टां प्रोक्षामीति ॥ १७ ॥ "

व्याख्या—अष्टकाये अष्टकानां देवतायाः तुष्टचर्थ त्वा जुष्टां प्रीतिसेवनीयां गां प्रोक्षामि अहं इति मैत्रं पठन् यव-मतीभिः अद्भिः प्रोक्षेत् तामाल्रव्यव्यां गामिति ॥ १७ ॥

भाषार्थ--' अष्टका देवताकी प्रीतिके छिये प्रीतिपूर्वक सेवनीय तुम्हें धोता हूं. ' यह मंत्र पढते हुए उस वध्य गौको यवसे भीगा जलसे धोवे ॥ १७ ॥

"उल्मुकेन परिहरेत् परिवाजपतिः कविरिति॥१८॥' " अपः पानाय दयात् ॥ १९ ॥ "

च्याख्या- परिवाजपतिः कविः (छ. आ. १, १, १३, १०) इति मत्रं पठन् उल्युकेन प्रज्वलितींप्रिना परिहरेत् अदक्षिणीकुर्यीत् तौ गामिति ॥ १८ ॥ "

व्याख्या-तस्यै गवे इति शेषः ॥ १९ ॥

भावार्थ—''परिवाजपतिः" (छ. आ. १, १, १३, १०) इस मंत्रको पढ कर एक मुठी ख(ड)रजला कर उस जलते ख(ड)रसे उस गौकी पदक्षिणा करे ॥ १८॥ उस गौको एक पात्रमें जल पीनेको देवे॥ १९॥

" पीतशेषमधस्तात् पशोरवसिंचेदात्तं देवेभ्यो हविरिति ॥ २० ॥ "

च्याख्या-पीतशेषं पानावशिष्टग्रदकं आतं देवेभ्यो, इविः १० (म. जा. ९, ९, १०) इति मंत्रं पठन पशोः तस्यैव अधस्तात् सिंचेत् नीचैः सिंचनं कुर्वात ॥ २० ॥

(२०५)

भाषार्थ-पीनेसे जो पानी बचे उसमें "आचं देवेभ्यो इविः " इस मंत्रको पढ कर उस गौके अधो भागको सींचे ॥ २०॥

" अधैनामुद्युत्सृप्य संज्ञपयन्ति ॥ २१ ॥ "

" प्राकृ शिरससुदक्पदीं देवदेवत्ये ॥ २२ ॥ "

'' दक्षिणाशिरसं प्रत्यक्पदीं पितृदैवत्ये॥ २३॥" व्याख्या—अथ अनंतरं पनां गां उदक् अग्नेरुत्तरतः उत्सप्य जुत्सर्पणेन नीत्वा संइपयन्ति इन्युः शासितारः अत्तवज् इति ॥ २१॥

व्याख्या---तत्र च देवदैवत्ये कार्ये तां प्राक्शिरसं उदक-पदीं किन्तु पितृदैवत्ये कार्ये दक्षिणाशिरसं पत्यक्पदीं संज्ञपयेयुः इति ॥ २२--२३ ॥

भाषार्थ-अनंतर मारनेके लिये प्रस्तुत ऋत्विक् गण उस गाँको अग्निके उत्तर लाकर काट दाले ॥ २१ ॥

यदि देनकार्य निमित्त गौ मारी जावे तो पशुका मस्तक पूर्व दिशामें रक्खे और चारों पैर उत्तर ओर रक्खे ओर यदि पितृकार्यके लिये गौव्ध हो तो पशुका मस्तक दक्षिण दिशामें रक्खे और उसके पैर सब पश्चिम और रक्खें ॥ २२-२३ ॥ " संज्ञसायां जुहुयाद्यद्म शुर्मायुरकृतेति ॥ २४ ॥ "

(影响

" परनी चोदकमादाय पशोः सर्वाणि स्रोतांसि प्रक्षालयेत् ॥ २५ ॥ "

व्याख्या—च अपि सदवपत्नी यजमानस्य उदक आदाय पशोः संज्ञप्तस्य सर्वाणि स्रोतांसि चक्षुरिंद्रियादीनि पक्षालयेत् ॥ २५॥

भाषार्थ-एवं यजमानकी स्त्री जलसे उस कटे झिरवाली गौके नेत्र आदि इंद्रिय अच्छे प्रकार घोवे. 'माथेमें नेत्रादि साथ, चार स्तन, नाभि, कटीदेश, गुह्यदेश, ये चौदह स्थान हैं' ॥२५।

" अग्रेण नाभि पवित्रे अन्तर्धायानुलोममाकृत्य वपामुद्धरन्ति ॥ २६ ॥ "

व्यारूया—अग्रेण नाभि नामेरग्रतः नाभिसमीपे पवित्रे अंतर्धाय अनुलोमं यथास्यात्तथा आक्वत्य क्षुरेण निम्ना-भिगामि कर्त्तन क्रस्वा ततः वर्षां मेदसं उद्धरन्ति उद्धरेयुः ॥ २६ ॥

भाषार्थ नाभिके समोप पवित्र द्वय छीपा कर लोमानु-सरण कमसे छुरैसे निम्नगामिचालनसे काट कर उसमेंसे वपा (चरबी) निकाले ॥ २६ ॥

"ता×शासाविशासयोः काष्ठयोरवसञ्याभ्युक्ष्य अपयत्॥ २७॥"

" प्रश्च्युतितायां विशसथेति दूयात् ॥ २८ ॥ "

च्याख्या— ज्ञाखा विश्वाखयोः एतत्रामक पात्रयोः काष्ट्रयोः पलाज्ञ निर्मितयोः ऊद्धोो मुखीभावावस्थितयोः आवारा-च च्छादनयोः मध्ये तांवपां अवसज्य संस्थाप्प अम्युक्ष्य जलपातैः अपयेत् पचेदिति ॥ २७ ॥

च्याख्या— पश्च्युतितायां प्रक्षारितायां तस्यां वपायां विशसथ गां विगतचरमां कुरूथ इति बूयात् ॥ २८ ॥ भाषार्थ—और निकाली हुई वपाको शाखा विशाखा नामक पलाशकी लकडीका बनाया हुआ ढक्कनके आधार पर रख कर जलसे सामान्य रुपसे धोकर अग्निसे सिद्ध करे ॥ २७ ॥ इधर उस गौके नाभिके समीपसे काट कर मेद्र निकाल इस गौके चमडा निकालनेकी आज्ञा करे ॥ २८ ॥

" यथा न प्रागग्नेभूमि शोणितं गच्छेत् ॥ २९ ॥ " " यथा न प्रागग्नेभूमि शोणितं गच्छेत् ॥ २९ ॥ " " शृताम मिघः योदगुद्वास्य प्रत्यभिघारयेत्॥ ३०॥ " स्थाली पाकावृता वपामवदाय" स्विष्टकृदावृता

च.ऽष्टकाय स्वाहेति जुहोति ॥ ३१ ॥ '' व्याख्या—परंतत्र विश्वशने सातर्क्य भिद्मवलस्ब्यं अग्नेः

आक् पुरतः भूमिं शोणितं यथा न गच्छेत् इति ॥ २२ ॥

व्याख्या—चितां पकां वपां अमिघार्य घृतेन इदक् अग्ने इत्तरतः उद्वास्य संस्थाप्य प्रत्यभिघारयेत् पुर्नघृतेनैवाभिघारणं क्वर्यात् ॥ ३० ॥

व्याख्या-ततः श्रैत्येन कठीनीभूतां तांवपां स्थाछीपाक रीत्या स्विष्टकुटत्या वा अवदानेन अवदाय कर्त्तयित्वा कर्त्ति-तमंश गृहीत्वा '' अष्टकाये स्वाहा '' इति मन्त्रेण तत्र अग्नौ जुहोति जुहुयात् ॥ ३१ ॥ भाषार्थ-परन्तु चमडा छुडाते समय ऐसा न हो कि अग्निके आगे होकर रुधिर वह चले ॥ २९॥

इस वपाके तैय्यार होने पर उसमें घीका ढार देकर डुसे अग्निके उत्तर भागमें उतार कर रक्खे और पुनः उसमें घीका ढार देवे । ३० ॥

अनंतर उस आगमें पकी ववा जो ठंडेके कारण जुम जायगी उसे स्थालीपाककी रीतिसे या स्विष्टकृत् की रीतिसे चाकुरू काट कर उसमेंसे लेकर "अष्टकाये स्वाहा " इस मंत्रसे होम करे ॥ ३१ ॥

जिनके धर्मग्रंथ एसी बिभित्स बातोंसे भरे पढे हैं. जिनका शिक्षण अत्यज कियाके सदश चरम उधेडऩा, मांसके डुकडे करना, देखना, खून न बह चल्ठे ऐसा हो, उन ग्रंथों पर चल्जे-वाले तथा पवित्र न होने पर भी उन्हें पवित्र माननेवाले आत्म-कल्याणके मार्गमें हैं ऐसा कौन कह सकता है ? उचित है कि इन ग्रंथोंके माननेवाले एकांतमें इस विषयका विचार कर वीत-रागोक्त शास्त्रोंका मध्यस्थभावसे मनन कर निःसंकोवचासभे सत्यतत्त्वको स्वीकार करें.

स्रो—अब मैं मेरे इस निबंधसे जनताका भला हो ऐसी आज्ञा रख कर आज यहां पर ही रखता हू.

" ज्ञिवमस्तु सर्वजगतः, परहितनिरता अवन्तु भूतगणाः । दोषाः प्रयान्तु नाज्ञं, सर्वत्र सुखीभवन्तु ल्लोकाः ॥ १ ॥ "

उँ. शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।



चड़ौदा-(२६१) १,, में। झवेरी लीलाभाई रायचंद १,, दर

५१ झवेरी लीलामाई रायचंद **५१ झेवेरी लालमाई कल्याणमाई** २५ वैद्यराज हीरामाई दलपतमाई २५ झवेरी हीराचंद्र ईश्वरदास १५ झवेरी अंबालल नानाभाई २५ गांधी अमथालाल नानाभाई १५ शाह केशवलाल जीवचंद ११ मास्तर मगनलाल माणेकचंद ११ शाह मुनीलालजी चुनीलालजी ५ पटवा नाथामाई नानज्ञामाई ৬ શাह पुखराजजी १ म्हेता डाह्याभाई मोतीलल १ मास्तर मणिलाल रेवाशंकर अमदावाद-(१०१) १०० शाह शिवाभाई हरिलाल सत्यवादी १ शाह रुपचंद केसरीमलजी' • छाणते-(१०) १ शाह नगीनदास बापुळाळ १ ,, चुनीखल गरबडदास ,, केशवळाळ हरगोविंददास १ ,, कस्तुचंद हशिभाई

ł	হা.	नाथालाल नरोतमदास
Ş	शेठ	भाईलाल अमृतलाल
१		साकरचंद चुनीळाळ
X		नगीनदास मानचंद
2		मणीलाल बापाभाई
ł	হ্যা.	केशवलाल डाह्यामाई
१	भा.	ल्लुभाई अमीचंद
R	হা.	वीरचंद सोमचंद
Ş	मा.	सोमचंद धुर्छादास
१		आत्माराम सामल
१	भा.	डाह्याभाई लालचंद
१		छनुमाई रुछमाई
2		सं कर चंद बापुजी
2		
१	भा.	मगनलाल केवळदास
१	भा.	जेचंद मगनलाल
१		नानचंद मानचंद
۶	भा.	ईश्वर खुञ्चाल
१		भेरवदास गणपत
. 8	হা.	बापुआई रतनचंद
१	श्चा.	चंदुराल मनसुख
		हरीमाई गबड
		मथुर जगजीवन
		मगनराल वीठल
8	भा.	मोहोलाल बावाजी
Ł		मोहोलाल हीराचंद
ş	भा.	दांमोदर वीठल

१	शेठ मगनलाल कस्तुरचद
१	शा. जेठालाल गुलाबचंद
१	शा. भगुभाई चतुरसी
	पटेल मोतीलाल चतुरसी
१	शा. गोकळदास रणछोड
१	शा. बालामाई फतेचंद
	शा नाथालाल अमीचंद
	रोठ डाह्याभाई दामसी
१	शा. अमृतलाल नरोत्तम
१	शा. जेसंगभाई झवेर
8	शेठ साकरलाल मगनलाल
	पारण-(३५)
२५	शाह वाडीलाल हीराचंद
80	,, रतनचंद मूलचंद
	कपडवंज (५२)
२६	चुनीलाल माणकचंद दोशी
	चुनीलाल माणकचंद दोशी गीरधरलाल रतनजी तेली
ه	•
ه	गौरघरलाल रतनजी तेली
ير رو رو م.	गौरघरलाल रतनजी तेली शाह नाथालाल केवलदास
ير رو رو م.	गौरघरलाल रतनजी तेली शाह नाथालाल केवलदास ,, रतनचंद कुबेरदास
ي ج ج ع ہ	गौरघरलाल रतनजी तेली शाह नाथालाल केवलदास ,, रतनचंद कुबेरदास मीठाभाई गुलालचंदनो उपाश्रय
ي ج ج ع ہ	गौरधरलाल रतनजी तेली शाह नाथालाल केवलदास ,, रतनचंद कुबेरदास मीठाभाई गुलालचंदनो उपाश्रय शा शामळभाई शिवलाल
ي م م م	गौरधरलाल रतनजी तेली शाह नाथालाल केवलदास ,, रतनचंद कुबेरदास मीठाभाई गुलालचंदनो उपाश्रय शा शामळभाई शिवलाल गोधरा-(१) पालीताणा-(१०) सीवमल हकमचंद
ي م م م	गौरधरलाल रतनजी तेली शाह नाथालाल केवलदास ,, रतनचंद कुबेरदास मीठाभाई गुलालचंदनो उपाश्रय शा शामळभाई शिवलाल गोधरा-(१) पालीताणा-(१०) सीवमल हकमचंद
ي م م م	गौरधरलाल रतनजी तेली शाह नाथालाल केवलदास ,, रतनचंद कुबेरदास मीठाभाई गुलालचंदनो उपाश्रय शा शामळभाई शिवलाल गोधरा-(१) पालीताणा-(१०)

₹. ,, नाथालाल पटवा मेसाणा—(२) जैन श्रेयस्कर मंडल २ हा. शाह वेणीचंद सरचंद भीणोज—(१) १ शाह दुरुवचंद वखतचंद मुंबाई - (२२) १० शेठ सोमचंद ओतमचंद १० शेठ ओतमचंद हीरजी १ शाह मनरुपचंद जवानमलजी 🐧 शाह दानमलजी देवीचंदजी वहारी---(२) २ शाह मोटाजी गलालजी पेढी रांदेर—(१) १ शेठ भीखाभाई धर्मचंद र्लाच--(१) १ शीवलाल ताराचंद शाह बीका नेर--- (१०) १० शेठ सुमेरमलजी स्राणा जीरा---(५) १ लाला राधामलजी नाथुराम जैनी , लाजुमल मेलामल 2 🔍 👝 बसंवरमछ बनारसीदास ., शंकरदास खेतुराम १

१ श्रीजैनकुमार-समा सनखतरा-(५) ५ भावडा अनंतराम झंडीयाला—(५) ५ लाला खरायतिमल लक्ष्मणदास अंबाला---(१) १ लाला संतराम मंगतराम रतलाम--(२६) २५ रोठ ऋषभदेवजी केसरी---मलजी--जैनसंघ--पेढी १ उपा०--समितिसागरजी प्रतापगढ-(२) ३ घीयाजी लक्ष्मीचंदजी महेंदुपुर---(२६) ५ धूलजी गणेश्वजी ৬ দলাভাৰ্জ্জী হুঁৱবাৰ १ चुनीलाल्जी मालवी १ चांदमळजी संकलेचा १ माणेकलालजी वच्छावद १ केशरीमरुजी ख़ंकड १ नेमाजी ढुंकड १ सेतानमल्जी रुंडवाल १ केशरीमळजी भणशाला १ लखमीचंदजी नवल्खा १ टेकचंदजी नवल्ला

(え)

१ केसरीमल्जी मटेवरा १ हीरालालजी कोचर १ छोगमल्जी कोचर

१ जडावचंदजी असाडीवाला

१ मोतीलालजी मालवी

१ हरखचंदजी खीमसरा

पींडवाडा (१) १ साह भगवानजो तेजमलजी

धरमावरम (१) १ शाह चुनीलालजी भूरमलजो आदोनी (१) १ शाह जवानमलजी ताराचंद

अहमदनगर (१०२) २५ मणीयार. वाडीलाल लखमीचंद

११ वखारीया देवचंद मुळचंद ११ शाह रतनचंद जोबराज ११ नथमरू दर्हीचंद वोस

१२ माणेकचंद मोतीचंद मंडारी ७ वखारीया अरुपचंद धरमचंद ५ गांधी हीराढ़ाल कस्तुरचंद ९ शाह नथुराम झवेरचंद ५ शाह दल्लुसुराम मानचंद ६ वखारीया वाडीलाल देवचंद ५ शाह घेलामाई जेठीराम २ शाह लीलाचंद हाथीमाई

१ फत्तेचंदजी कोचर

२ मेता माधवलाल हकमचंद
गुजरांवाला (३०)
१० लाला नृसिंहदास बुटामल
५ लाला जगनाथ दिवानचंद
५ लाला पंत्रालाल हीरालाल
५ लाला नानकचंद हीरालाल
५ लाला चैतराम गौकलचंद
५ लाला चरनदास मकनलाल
४ लाला भोलाशाह ख जान-
ৰীতান্ত
२ लाला मथुरादास दीनानाथ
२ लाला गणपत रायेरलचंद
२ ळाळा गणेशदास प्याराळाळ
२ लाला मानकचंद रलाराम
२ लाला ठाकरदास सुंदरदाल
१ लाला दुनीचंद जमीतराय
१ बाबू दिवानचंद मनोहरलाल
१ बाबू हरमगवानदास मेहरचंद
१ लाला प्रभुदयाल पंजुमल
१ लाला नंदलाल चूनीलाल
१ लाला लालचंद भगवानदास
१ लाला भूपामल गंडुमल
१ लाला कोटु शा ह
१ लाला छजुमल अमरना थ
१ लाला जवंदामल मुंशीराम
१ लाला सुंदरदास वधावामल